पं० जवाहरलाल नेहरू

की

जीवनी और व्याख्यान

लेखक और संकलनकर्ता

पं० गोपीनाथ दीक्षित बी० ए०

प्रकाशक

दी नेशनल पब्लिशिंग हाउस,

प्रयाग

प्रथमावृत्ति] [मूल्य दो रुपये

समर्पण

माता के नौनिहालों को

जिनको लगी है लगन

स्वतंत्रता प्राप्ति की

और जिनके आदर्श

हैं आज पं०

जवाहरलाल

नेहरू।

"वे स्फटिक मणिवत् पवित्र हैं उनकी सत्यशीलता सन्देह से परे है, वे अहिंसक और अनिन्दनीय योधा है, राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है।"

मो० के० गांधी

इसी पुस्तक के लिये

ताजमहल होटल
बम्बई १८ नवम्बर

प्रिय

आपका निवेदन अंगीकार करने में मुझे प्रसन्नता होती। किन्तु मैं इस समय प्रवासी भारतीयों की ओर से अफ्रीका की आकस्मिक यात्रा के लिये शीघ्रता-पूर्ण तैयारी करने में व्यस्त हूं।

मुझे प्रसन्नता है कि आपने पं० जवाहरलाल नेहरू की जीवनी लिखी है। उनके लिये मेरे हृदय में अगाध आदर है और उस आदर के बराबर ही उनके प्रति मेरा स्नेह भी है। वे स्फटिक कुण्ड के उज्वल पुष्प हैं।

—सरोजिनी नायडू

"मेरी धारणा है कि पं० जवाहरलाल नेहरू आधुनिक समय में संसार के महान शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्तियों में से एक हैं। भारत के नवयुवक समाज में जिन नवीन विचारों की धारा प्रवाहित हो रही है, वे उनकी प्रतिमूर्ति हैं। आज से बीस साल पहले भारत के राष्ट्रीय नेतागण शासनसत्ता में भारत की

उन्नत जातियों के लिये कुछ भाग की याचना करके संतुष्ट हो जाते थे। दस साल पहले प्रधानतया महात्मा गांधी के प्रभाव के फल-स्वरूप वे पूर्ण राजनैतिक स्वतंत्रता मांगने लगे। जवाहरलाल जी की विशेषता यह है कि वे केवल राजनैतिक और सामाजिक स्वतंत्रता ही नहीं मांगते किन्तु साथ ही आर्थिक स्वतन्त्रता भी। वे नव-भारत को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं और साथ ही ब्रिटेन के साथ भारत की बराबरी का दावा कर रहे हैं। और विदेशी सरकार का साहस के साथ सामना कर रहे हैं। किन्तु इनके कार्य इससे भी बड़े हैं; भारत की ही उन बातों के विरुद्ध, जो कि भारत में फैल फूट फैला रही हैं; और प्राचीन अन्ध-विश्वासों और रीति-रीवाजों का दास बनाती हैं बग़ावत करने के लिये वे युवक भारत को आदेश दे रहे हैं। वे एक ऐसा सामूहिक संगठन खड़े करने की खोज में हैं जो सामाजिक और आर्थिक क्रांति कर सके और भारत के मज़दूर और किसानों को उनकी बेबसी और ग़रीबी से छुटकारा दिला सके। पश्चिम के कुछ ऐसे दिखौवे मात्र भी हैं जो भारत को पतित मान बैठे हैं; वे इस वास्तविकता के प्रति अंधे हैं कि भारत में महान परिवर्तन हो रहा है। मैं संसार में ऐसा कोई भी देश नहीं जानता जहां इतनी सारी शक्तियां राजनैतिक, सामाजिक और स्त्री पुरुष की समानता के लिये काम कर रही हों। पं० जवाहरलाल नेहरू उन शक्तियों की प्रतिमूर्ति हैं और इसीलिये मैं उन्हें नवीन भारत का अवतार मानता हूं, उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानने का मुझे सम्मान प्राप्त है और उनकी लगन और त्याग उस भावना का आदर्श है जो भारत में स्वाधीनता की स्थापना कर सकेगी।"

—ए० फेनर ब्रोकवे (मेम्बर पार्लियामेंट)

वक्तव्य

आधुनिक भारत की सारी आशायें पं० जवाहरलाल जी में केन्द्रीभूत हो रही हैं। वे इस परिवर्तन युग के आदर्श नेता हैं; साहस, अध्यवसाय, देश प्रेम और स्वार्थत्याग की तो वे साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। उनके जीवन में उन सारे गुणों का पूर्णतया समावेश है जो भारत की स्वतंत्रता के लिये प्रत्येक भारतीय में होना आवश्यक है। उनके एक एक व्याख्यान में देश प्रेम और क्रांति निवास करती है, और देश में राजनैतिक जागृति उत्पन्न करने के लिये उनके व्याख्यानों को भारत की प्रत्येक संतान के लिये सुलभ बनाना आवश्यक है। इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक लिखी गयी है। यदि इस उद्देश्य की थोड़ी भी पूर्ति हुई तो मैं अपने उद्योग को सफल समझूंगा।

जीवनी संबंधी मसाला जुटाने में श्रद्धेय पं० मोती लाल जी, श्रीमती उमा नेहरू, श्री सुन्दर लाल जी, पं० मोहनलालजी, मिस्टर मंजर अली सोख्ता, डाक्टर ख्वाजा, सैयदहैदर मेंहदी, पं० गौरीशंकर मिश्र, बाबू पुरुषोत्तम दास

टण्डन और बाबू गुरुनारायण खन्ना ने अपना अमूल्य समय देकर सहायता दी है इसके लिये मैं अतिशय अभारी हूँ।

श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा पार्लियामेंट के मेम्बर श्रीयुत ए. फैनर ब्रोकवे ने पं० जवाहरलाल जी के सम्बन्ध में मेरी पुस्तक के लिये अपने सन्देश लिख भेजने की कृपा की है, इसके लिये मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ।

पुस्तक के लिखने और सम्पादन में पं० रामाज्ञा जी द्विवेदी, पं० अयोध्याप्रसाद चतुर्वेदी, श्री सुरेन्द्र शर्मा, श्री सत्यभक्त जी ने जब तब सहायता देकर मुझे अनुगृहीत किया है।

गोपीनाथ दीक्षित

बिषय सूची
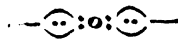
तसबीरें

लेखक के दो शब्द

सोने में सुगंध नहीं होती। धन और मानव-प्रेम कोसों दूर की वस्तुएं हैं। वैभवराशि में बैठ कर झोपड़ी में रहने वाले ग़रीब की बेबसी और तंगी का ध्यान किसे होता है। किन्तु प्रकृति के भण्डार में किसी नमूने का टोटा नहीं। संसार के इतिहास में जब कभी ऐसे बावले भी अपनी झलक दिखला जाते हैं जो अपने सुखों पर लात मार कर असंख्य दुःखियों के लिये अपना तन मन धन उत्सर्ग कर देते हैं। प्राचीन-काल में उत्तरी भारत की तराई ने एक ऐसे ही पगले राजकुमार को जन्म दिया था। राजवैभव, स्त्री प्रेम और भोग विलास में उसे शांति न मिली और अन्त में मिली, तो कहां—भिक्षु के भेष में, ग़रीबों की झोपड़ियों में, प्रकृति की गोद में और प्राणी मात्र के दुःख दूर करने में। चौथाई शताब्दी नहीं हुई, रूस में भी एक ऐसा ही सनकी उपदेश देता था। ईश्वर ने उसे माना था, राजघराने में जन्म पाकर जीवन के सभी भौतिक सुख और विशेष अधिकार उसे सुलभ थे। किन्तु उसे नासमझी सूझी और उसने अपने श्रेणी के

लोगों के ख़िलाफ़ ही बग़ावत शुरू का। किनके लिये—झोपड़ी में रहने वाले, दिन रात .ख़ून सुखाकर और एढ़ी से चोटी तक पसीना बहाकर धनिकों के धनागार भरने के लिये फेक्टरियों और खेतों में काम करने वाले, अधपेटे ग़रीब किसानों और मज़दूरों के लिये। यह था शासक सत्ता और सम्पतिवाद से मोर्चा लेने वाला राजकुमार 'क्रोपाटकिन'।

भारत में आज फिर से एक ऐसे ही बावले की आवाज़ सुनाई दे रही है। सभी सांसारिक सुख उसे प्राप्त और भोग बिलास की सभी बस्तुएं सुलभ थीं। वैभव के चमचमाते प्रकाश में वह भटका भी किन्तु उसे शान्ति न मिली। उसका हृदय कहता था यह मार्ग ठीक नहीं है। अस्तु उसने दूसरा पथ पकड़ा और अपने सोने से शरीर की चिन्ता भुलाकर भुखमरों की भूख मिटाने की धुन में लवलीन होगया, रह रह कर उसकी अन्त-रात्मा से प्रतिध्वनि उठती थी कि "मुझे इन ग़रीबों से विशेष सुख भोगने का क्या अधिकार है, यह उचित नहीं कि मैं आराम से रहूँ जब कि मेरे असंख्य दुखी भाइयों को सूखी रोटी भी नसीब नहीं"। बैठे बैठाए बावले ने यह बला अपने सर बांधली। वह कहता है "मुझे मोक्ष नहीं चाहिए जब तक कि मनुष्य मात्र मेरे

साथ मोक्ष न पावें।" मानव-प्रेम की लहर उसकी अन्तरात्मा तक प्रवेश कर गयी है।

जब से धुन लगी है, न खाने का ध्यान है न पीने का, यदि ध्यान है तो भारत की ग़रीबी और साँसारिक अन्याय का। भारत में और संसार में आदर्श समाज की स्थापना करना ही उसका ध्येय है। वह लड़कपन का बाग़ी है और भारत के युवक समुदाय को भी उसने बाग़ी बना दिया है। राष्ट्र ने उसे अपना कर्णधार बनाया है और नवीन भारत की सारी आशाएं उसी पर अवलम्बित हैं।

इसी अनोखे बावले की जीवनी देश भाइयों के सन्मुख उपस्थित है। परमात्मा करे वे भी इस बावले की सनक में सन जांय और उसी के साथ देश के दुख सुख में रोना और हंसना सीखें। भारत का भविष्य युवकों के हाथ है।

——

पं० जवाहरलाल नेहरू

प्रथम अध्याय

प्रारम्भिक जीवन

'आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणे कुतः ?'

हमारे चरित्रनायक युवकशिरोमणि पंडित जवाहरलाल जी प्रयाग के सुविख्यात नेहरू वंश के उज्ज्वल रत्न हैं। नेहरू-वंश काश्मीरी ब्राह्मण की एक प्रशाखा है और अन्य काश्मीरी कुलों की नाईं इस वंश के पूर्व-पुरुष भी काश्मीर में ही रहते थे। मुसलमानी काल में ऐश्वर्यशाली भारतीय-मुग़लसाम्राज्य की अगाध धनराशि-सम्पूर्ण राजधानी की ओर आकृष्ट होकर बहुत से काश्मीरी लोग दिल्ली चले आये। इन्हीं उद्योगी पुरुषों में से एक हमारे चरित्रनायक के पूर्वज पं० राजकौल भी थे। राजकौल जी शाही फ़र्मान से बादशाह फ़र्रुख़सियर को शिक्षा देने के

वंश-परिचय

लिये बुलाये गये थे। उसी समय से यह वंश आकर दिल्ली में बस गया और अब तक कुछ अंशों में वहीं बसा हुआ है। कई पीढ़ियां गुज़र जाने के बाद पं० जवाहरलाल के पितामह पं० गंगाधर जी इस वंश में उत्पन्न हुए। वे प्रतिभा सम्पन्न पुरुष थे और बहुत काल तक दिल्ली के कोतवाल रहे। उनके तीन पुत्र हुए। जिस समय गंगाधर जी का देहावसान हुआ उस समय उनके दो पुत्र पं० नंदलाल और पं० बंशीधर व्यवसाय में लग चुके थे किन्तु तीसरे पुत्र का अभी जन्म भी नहीं हुआ था। कौन जानता था कि पिता के आश्रय से वंचित यह बालक ही वंश की मर्यादा को उन्नति के शिखर पर पहुँचावेगा और एक दिन भारत का भाग्य विधायक बन कर अपना नाम संसार के इतिहास में अमर करेगा।

पिता की मृत्यु के चार महीने बाद हमारे चरित्रनायक के पिता पं० मोतीलाल जी का जन्म हुआ। आपके पालन पोषण और शिक्षा में किसी तरह की कमी नहीं की गयी ; माता जी और भाइयों के अनन्य प्रेम ने कभी पिता का अभाव अनुभव न होने दिया। बी० ए० तक पढ़

पं० मोतीलाल

कर आपने प्रयाग हाईकोर्ट से वकालत की परीक्षा सस-म्मान पास की और कानपुर में वकालत करने लगे। अभी आप संभलने भी न पाये थे कि नन्दलाल जी जो उन दिनों प्रयाग हाईकोर्ट में वकील थे दुर्भाग्यवश असमय में ही परलोकवासी हुए और कुटुम्ब का सारा भार आपके सिर पर आ पड़ा। भाई की मृत्यु के बाद आप प्रयाग चले आये और बड़े भाई के सारे मुक़द्दमों को अपने हाथ में ले लिया। कुछ ही दिनों में पं० जी की वकालत चमक उठी और प्रयाग हाईकोर्ट के प्रमुख एडवोकेटों में गिने जाने लगे। प्रयाग हाईकोर्ट में आपके वाक्य चातुर्य की धाक जम गई और आमदनी का कुछ अन्दाज़ा न रहा। आपके ठाठ बाट और शान-शौकत की लोग चारों ओर चर्चा किया करते थे। जब तक पंडित जी ने वकालत की तब तक उनकी सानी का कोई भी वकील प्रयाग हाईकोर्ट में न था और न उनकी सी आमदनी ही किसी को थी। राजनैतिक क्षेत्र में सब से पहले आपने सन् १९०७ में पदार्पण किया। जब कि आप प्रान्तीय कान्फ्रेंस के सभापति बनाये गये थे और तब से राजनीति और कांग्रेस आपके जीवन के ख़ास अंग बन गये हैं। सन् १९१९ में आप भार-

तीय कांग्रेस के सभापति हुए थे। असहयोग आन्दोलन में आपने २५०००) मासिक की जमी हुई प्रेक्टिस पर लात मार कर वकालत छोड़ी, देश के लिये फ़कीरी बाना लिया और सत्यमार्ग पर लड़ते हुए जेल गये। देश के लिये आपकी सेवाएं महान हैं। असहयोग प्रोग्राम के ढंडे होने के बाद आपने स्वर्गीय श्रीयुत चितरञ्जन दास जी के साथ कांग्रेस में स्वराज्य-पार्टी की रचना की और तब से आजतक लेजिस्लेटिव एसेम्बली में स्वराज्यपार्टी के अग्रणी होकर सरकार का विरोध कर रहे हैं। 'नेहरू-रिपोर्ट'—भारतीय स्वराज्यका मसविदा—की तैयारी का सबसे बड़ा श्रेय आप ही को है और कलकत्ता कांग्रेस में सभापति की हैसियत से जिस बुद्धिमत्ता और धैर्यशीलता का परिचय आपने दिया था वह सराहनीय है।

त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल जी का व्यक्तित्व महान है, उनकी तार्किक शैली अकाट्य है और ईश्वर ने दिमाग़ तो उनको गज़ब ही का दिया है। वे बज्र की नाईं दृढ़ हैं, ख़ूब सोच विचार कर अपना पथ निश्चित करते हैं और फिर उसपर डटे रहते हैं। वे हमारे राष्ट्र के परम पटु एवं दक्ष सेना नायक हैं।

हिन्दू परम्परा के अनुसार पं० जी का विवाह छोटी अवस्था ही में कर दिया गया था। इस विवाह से उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु दैववश अल्पकाल में ही मां और बेटे दोनों ने इहलीला संवरण की। पहली पत्नी की मृत्यु के तीन चार वर्ष पीछे आपका विवाह रावलपिंडी निवासी पं० प्रेमनाथ जी की बहिन श्रीमती स्वरूप रानी से हुआ, जो कि हमारे चरित्र-नायक की जननी हैं। पण्डित प्रेमनाथ जी एन० डबल्यू रेलवे में एकाउन्टस के चीफ़ एग्जामिनर थे। जवाहरलाल जी से पहले दम्पति को एक पुत्र का लाभ और हुआ किन्तु वह भी पिता माता को कुछ दिनों मृगतृष्णा दिखाकर चलता बना। आदरणीय पं० जी के हृदय पर चोट पर चोट बैठी। एक पत्नी और दो पुत्र खोकर उनकी दृष्टि में सन्तान का मूल्य बहुत बढ़ गया। पुत्रोत्पत्ति और चिरंजीवी पुत्र की उत्पत्ति की कामना उनके हृदय में बलवती हो उठी। ईश्वर ने उन्हें माना, उनकी मनोकामना पूर्ण की और उनकी गोद में जवाहर सा जवाहर दे दिया।

पं० जवाहरलाल के दो छोटी बहिन भी हैं जिनका नाम स्वरूपकुमारी और कृष्णकुमारी है। श्रीमती स्वरूपकुमारी का विवाह प्रयाग के सुप्रसिद्ध

बैरिस्टर आर० एस० पण्डित के साथ हुआ है। श्रीमती कृष्णा कुमारी अभी कुमारी हैं। आप प्रयाग युवक संघ की प्रमुख कार्यकर्ताओं में हैं।

बाल जीवन

पं० जवाहरलाल का जन्म ता० १४ नवम्बर सन् १८८९ के दिन प्रयाग नगर में नेहरू बंश के उन दिनों के निवास स्थान मुहल्ला मीरगंज के एक मकान में हुआ था। उपरोक्त परिस्थिति में प्राप्त पुत्र की ओर माता पिता की ममता का अन्दाजा नहीं किया जा सकता। वही तो उनका जीवन सर्वस्व, और अंधे की आँख था। पं० मोतीलाल जी को कानपुर से प्रयाग आये अभी तीन ही वर्ष हुए थे किन्तु इस बीच में उनकी वकालत खूब चमकने लगी थी। अस्तु बालक के लालन पालन का अच्छे से अच्छा प्रबंध किया गया और जो सुविधाएँ किसी भी राजघराने अथवा धनवान और शिक्षित कुटुम्ब में मिलना सम्भव हो सकती थीं वे सभी सुचारु रूप में जवाहरलाल के लिये जुटाई गईं। बचपन में आप का प्यार का नाम नन्हा था। नन्हा की तोतली बोली सुनकर घर वालों की हृदय कली उल्लास से खिल जाती थी। नन्हा की एक आदत तो लोगों के विशेष

माता पिता और पण्डित जवाहर लाल

विनोद की वस्तु थी। बालक को रोते और मचलते देर ही न लगती थी, जब रोने की उमंग आती तो वे बात रोने लगता और जब कोई पूछता कि भाई क्यों रोते हो तो फिर और ज़ोर-ज़ोर से पूछने वाले का नाम लेकर रोता और कहता 'हमें इसने मारा है'। जैसे ही पूछने वाले बदलते जाते वैसे ही मारने वाले का नाम भी बदलता जाता और लोग क़हक़हा लगा कर हंसते।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। बचपन में ही धुंधले रूप में बालक में वे सब गुण उपस्थित थे जिनका विकास आज हम कांग्रेस के सभापति और भारत के नेता जवाहरलाल में देखते हैं। अंग्रेज़ी कहावत है (Child is father of the man) अर्थात जो गुण बालक में होते हैं वैसे ही बड़े होने पर मनुष्य में विकसित रूप में पाये जाते हैं। बचपन में वे शांत और गम्भीर थे, मिजाज़ सीधा साधा था, भोलापन चेहरे से टपकता था और नटखटपन तो छू भी न गया था। गम्भीर दृष्टि से प्रत्येक बात को देखना ही उन्हें आता था। उनकी कर्तृत्वशक्ति का परिचय बालपन में ही पाया जाता था। जो बात एक बार ठीक जँच जाती फिर उसे करने में न चूकते। प्रभाव भी उन पर शीघ्र पड़ता

था; उनकी ग्राह्य शक्ति प्रखर थी और परम्परा से बग़ावत करने की बान लड़कपन से ही अंकुरित हो चली थी।

सन् १८६६ में, जब जवाहरलाल १० वर्ष के थे, पं० मोतीलाल जीने आनन्द भवन ख़रीद लिया और सकुटुम्ब वहीं जाकर रहने लगे। पं० जवाहरलाल की जीवनचर्या अंग्रेज बालकों के ढङ्ग पर ही होती थी, बंगले से बाहर वे बहुत कम जाने पाते थे। पढ़ना लिखना, खेलना कूदना सभी कुछ घर पर ही होता था। घोड़े पर चढ़ना फ़ुटबाल खेलना और घर के छोटे से तालाब में तैरना उनके नित्य के मनोविनोद थे। टेनिस खेलना भी उन्हें प्रिय हो चला था।

जवाहरलाल की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। भारत के किसी भी स्कूल में आप एक दिन के लिये भी नहीं पढ़े। शिक्षा का श्रीगणेश ५ वर्ष की अवस्थासे ही करा दिया गया और पढ़ाने के लिये अङ्गरेज़ अध्यापिकाएँ नियुक्त की गईं। नेहरू-कुटुम्ब में उन दिनों हमजोलियों की कमी न थी। बालकों से घर भरा पूरा था और कौटुम्बिक सहवास भी बालक के लिये एक

शिक्षा

प्रकार की शिक्षा ही थी। हिन्दी पढ़ने का भी प्रबन्ध किया गया और बाद में संस्कृत की भी प्रारम्भिक शिक्षा उन्हें दी गयी।

अच्छा गुरु भी भाग्य से ही मिलता है। जब जवाहरलाल जी ११ वर्ष के थे, आपके लिए एक ऐसे अध्यापक नियुक्त किये गये जिन्हें एक प्रकार आप के उच्च पथ का निर्माता कहा जा सकता है और जिन्होंने आपके भीतर एक नवीन ज्योति जगमगा दी, एक नये जीवन का संचार कर दिया। हमारे चरित्रनायक के इन शिक्षक का नाम मिस्टर एफ. टी. ब्रुक्स था। ब्रुक्स के आदर्श जीवन और उच्च विचारों ने जवाहरलाल की आत्मा पर सदा के लिये अपनी छाप लगा दी। शिक्षक महोदय थे तो अङ्गरेज़ लेकिन अङ्गरेज़ियत उनमें नाम मात्र को भी न थी। वे थियोसो-फ़िस्ट सम्प्रदाय के सच्चे अनुगामी थे। ईश्वर के अस्तित्व में उन्हें अगाध विश्वास था और आध्यात्मिक मनन में ही वे तन्मय रहा करते थे। उनका जीवन सरल और निष्कपट था। मांस मदिरा और प्रत्येक प्रकार के व्यसन से उन्हें अरुचि थी। हिन्दुओं के से उनके विचार थे और हिन्दुओं का सा रहन-सहन। धोती

एफ़. टी. ब्रुक्स

और कुर्ता ही उनका पहनावा था। 'सादा जीवन और उच्च विचार' ही उनका सिद्धांत था। पुस्तकों के तो वे कीड़े ही थे, एक कोने में बैठ कर स्वाध्याय करना ही उनका व्यसन था, इसी में उन्हें मज़ा आता था।

पं० मोतीलाल जी के से ऐश्वर्यशाली, वैभवप्रिय, और पाश्चात्य ढंग में पगे हुए कुटुम्ब में उनका प्रवेश एक बेमेल सी बात थी। किन्तु दैव को यही मन्जूर था। देश की और मनुष्य जाति की सेवा हेतु एक साहसी वीर की रचना करने के लिये यह बेमेल जोड़ जुड़ना आवश्यक था।

सन् १९०० में ब्रुक्स साहिब आकर जवाहरलाल के शिक्षण का कार्य करने लगे। आनन्दभवन में ही उनके रहने के लिये एक ख़ास कमरा दे दिया गया और उनके खाने पीने आदि का प्रबन्ध भी वहीं हो गया। वे एक घरके व्यक्ति की भांति ही आनन्दभवन में रहने लगे। जवाहरलाल अपने शिक्षक के पास ही ज़्यादातर समय बिताते थे। पिता जी का ऐसा ही प्रबन्ध था। मिस्टर ब्रुक्स उन शिक्षकों में से न थे जो विद्यार्थी को केवल साहित्यिक ज्ञान देना ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। उनकी दृष्टि में उनका कर्तव्य था जवाहरलाल को मनुष्य बनाना

और अपने दृष्टिकोण के अनुसार आदर्श मनुष्य बनाना। धार्मिक और सदाचार संबंन्धी शिक्षा देना उनकी दृष्टि में अनिवार्य्य था। वे स्वयं थियोसोफ़िस्ट थे और उन्हीं भावों का प्रवेश अपने शिष्य की विचार धारा में भी किया करते थे। एक ऐसे कुटुम्ब में जहां धर्म का नाम लेना भी एक विचित्र बात समझी जाती थी, वहीं एकान्त में ये शिक्षक महोदय अपने शिष्य को मानव-धर्म की दीक्षा दिया करते थे। थियोसोफ़िस्ट सम्प्रदाय में कुछ सीधे सादे आदर्श वाक्यों का प्रचार है। मिस्टर ब्रुक्स इन्हीं आदर्श वाक्यों को अपने शिष्य से लिखवा लिखवा कर कमरे में टँगवाया करते थे। एक दिन अध्यापक महोदय ने बतलाया कि मांस खाना पाप है, शिष्य ने तुरन्त उसे हृदयांगमकर लिया और खाने के समय मांस खाने से इनकार करते हुए कहा कि मास्टर साहिब कहते हैं कि मांस खाना पाप है, इसलिये मैं न खाऊँगा। घर वालों को यह बात कुछ खटक सी गयी। कुछ दिन बाद गुरु के आदेश पर उन्होंने थियेटर, सिनेमा जाना छोड़ दिया। घर वालों को यह बात और भी खली। भला यह कैसे हो सकता था कि सारा घर जावे और पिता का प्यारा दुलारा जवाहर अकेला साधू बना घर में ही बैठा रहे।

पं० मोतीलाल जी ने देखा कि उनका प्रिय पुत्र एक दूसरी ही धारा में बहा जा रहा है और उसके कर्णधार हैं ब्रुक्स महाशय। उन्होंने अनुभव किया कि जिस पथ पर वे अपने पुत्र को चलाना चाहते हैं उसके ठीक विपरीत दिशा में मिस्टर ब्रुक्स उसे ले जा रहे हैं। उन दिनों पं० मोतीलाल जी सार्वजनिक क्षेत्र में न उतरे थे, सादा जीवन उनसे कोसों दूर की चीज़ थी। वकालत खूब चमक रही थी और धन एकत्रित करके मौज से शान-शौकत के साथ जीवन व्यतीत करना ही उनका ध्येय था। वे अपने पुत्रको भी अपने ही साँचे में ढालना चाहते थे; ऐसी परिस्थिति में ब्रुक्स महाशय के तौर तरीक़े, शिक्षण क्रम और आदेश उन्हें न भाये और उन्होंने शिक्षक महोदय को अपने यहाँ से अलग कर दिया।

मिस्टर ब्रुक्स के जाने के बाद एक हिन्दू अध्यापक नियुक्त हुए जो जवाहरलाल को इंगलैंड जाने के समय तक पढ़ाते रहे। इस अवस्था में ही आपको अंग्रेज़ी की अच्छी ख़ासी योग्यता हो गयीथी और हिन्दी और संस्कृत की भी प्रारम्भिक शिक्षा आप पा चुके थे।

द्वितीय अध्याय

इङ्गलैंड में शिक्षा

वह समय था विलायत प्रेम का। शासका की प्रत्येक बात आदरणीय और अनुकरणीय समझी जाती थीं। उनके साथ २ उनके देश में शिक्षा पाना एक बड़े गौरव की बात थी। पं० जवाहरलाल को लड़कपन से ही इङ्गलैंड़ भेजने का विचार पक्का हो चुका था। अब वे १६ वीं वर्ष में पड़ चुके थे और अङ्गरेजी की योग्यता भी उन्हें अच्छी ख़ासी हो गयी थी। अस्तु सन् १६०५ के आरम्भ में पिता माता के साथ आपने इंग्लैण्ड के लिये प्रस्थान किया। मई महीने में आप लोग लन्दन पहुंच गये। ४-५ महीने पिता माता के साथ पर्यटन करने के बाद अक्टूबर में जब कि स्कूल का साल शुरू हुआ तो आप सुप्रसिद्ध हैरो स्कूल में भर्ती करा दिये गये और पिता माता मातृ भूमि को लौट आये।

हैरो स्कूल इंगलैंड का एक बहुत ही सुप्रसिद्ध पब्लिक स्कूल है। उच्च कोटि के धनाढ्य पुरुषों के सौभाग्यशाली बालकों को ही यहां स्थान

हैरो

दिया जाता है। भारतीय तो इने गिने ही वहां पहुँच पाते हैं। इस स्कूल की स्थापना महारानी एलिज़ाविथ ने सन् १६०० के लगभग की थी और तब से इस स्कूल ने इंगलैंड के इतिहास में सुप्रसिद्ध सैकड़ों महापुरुषों को रचना की है। स्पेन्सर पर्सीवेल, राबर्टपील, पामर्सटन और स्टेनली वाल्डविन प्रभृति ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधानमन्त्री इसी स्कूल की उपज हैं। इसी स्कूल के पढ़े हुए कई विद्यार्थी भारत के वायसराय हुए हैं, जिनमें से वेलेज़ली, डलहौज़ी लिटन और हार्डिंज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इंगलैंड के बहुत से राजनीतिज्ञों और सुलेखकों को भी इस स्कूल ने जन्म दिया है। हैरो स्कूल की स्थिति बड़ी ही रमणीय है। यह एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। यह अपने गानों के लिये प्रसिद्ध है।

स्कूल में पंडित जी औसत दर्जे के विद्यार्थी थे। बुद्धि प्रखर थी किन्तु रुचि और अध्यवसाय पूर्णतया किताबों की ओर न था। एक अंग्रेज लेखक के शब्दों में

आप 'जीवन की गुत्थियों का अध्ययन करते थे और संसारिक अनुभव प्राप्त करते थे'। परीक्षा ध्येय न होकर आपका लक्ष्य था जीवन। खेलों में क्रिकेट और फुटबाल आप को विशेष प्रिय थे। स्कूल की वालंटियर कोर के भी आप सदस्य थे जो कि बाद में लार्ड हाल्डेन की स्कीम के अनुसार नई टैरीटोरियल सेना की आफीसर ट्रेनिंग कोर का एक भाग बना दी गयी थी। हैरो में एक वर्ष रह कर सन् १६०६ में आप गर्मी की छुट्टियों में एक महीने के लिये लौट कर भारत आये थे। जब आप स्कूल में पढ़ते थे, उस समय लाला हरदयाल आक्सफर्ड यूनीवर्सिटी में अध्ययन कर रहे थे। पं० जी को कई बार उनसे मिलने का अवसर मिला था। वहाँ गायकवाड़ के स्वर्गीय राजकुमार और कपूर्थला के राजकुमार जो कि आज कल टीका साहिब (युवराज) हैं आपके सहपाठी थे।

सन् १६०७ में हैरो स्कूल से एन्ट्रेंस परीक्षा पास कर पं० जवाहरलाल ट्रिनिटी कालिज केम्ब्रिज में भरती हुए।

केम्ब्रिज

केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी ब्रिटिश साम्राज्य के सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में से एक है। प्रयाग यूनिवर्सिटी की नाईं यह निवासी और शिक्षक विश्वविद्यालय है। भिन्न-भिन्न

कालेज यूनिवर्सिटी के ही अंग हैं जहां विद्यार्थीगण रहते और यूनीवर्सिटी शिक्षा के अतिरिक्त विद्यानुराग के लिए अध्ययन करते हैं। ये कालेज एक प्रकार के छात्रावास हैं जहां प्रत्येक विषय के विशेषज्ञ अध्यापक भी पढ़ाने के लिये रहते हैं।

केम्ब्रिज आकर आपको नौका खेने से विशेष प्रेम हो गया था। वैसे तो टेनिस, क्रिकेट आदि खेल खेलते ही थे किन्तु आपकी सबसे विशेष अभिरुचि इसी ओर थी। केम्ब्रिज में भारतीय विद्यार्थियों ने 'इंडियन मजलिस' नाम की एक संस्था खोल रखी थी। पं० जी उसके प्रमुख सदस्य थे। डाक्टर सैफुद्दीन किचलू, टी० ए० के० शेरवानी, डाक्टर सय्यद महमूद, मिस्टर के० एम० ख्वाजा और सर शाहमुहम्मद सुलेमान आपके समकालीन थे। जिस वर्ष आप केम्ब्रिज पहुंचे उसी वर्ष श्रीयुत जे० एम० सेन गुप्ता केम्ब्रिज में अपना अन्तिम वर्ष समाप्त कर चुके थे। सन् १९०८ की गर्मी की छुट्टियों में पं० जी एक बार फिर भारत आये थे।

पं० जवाहरलाल लड़कपन से ही साहसी रहे हैं, जोखिम उठाने में उन्हें मज़ा आता है। सन् १९०९ में आप कुछ मित्रों के साथ पर्यटन करने के लिये नार्वे गये।

एक दिन ग्लेशियर में नहाने की ठहरी। झरना बड़ी तीव्र गति से बह रहा था। आप औरों से दो क़दम आगे थे; किसी चट्टान पर पैर फिसल गया और आप धारा के प्रवाह में पड़ गये और बड़ी तीव्रता से चट्टानों और एक बहुत ऊंचे जल प्रपात की ओर बहने लगे। सौभाग्य से एक अंग्रेज़ मित्र ने आपको खींच लिया और इस प्रकार आप इस दुर्घटना से बाल-बाल बच गये।

मनुष्य पर समाज का प्रभाव बिना पड़े नहीं रहता। पिता माता के शासन और लाड़ प्यार में रहकर पं० जवाहरलाल अभी तक स्वावलम्बी न बन पाये थे। उन्हीं के दिखाये हुए मार्ग पर वे चल रहे थे। सहसा वे इंगलैंड के स्वच्छंद समाज में स्वतंत्र छोड़ दिये गये और अपने पथ निर्णय का सारा उत्तरदायित्व उन्हीं के सिर आपड़ा। ऐसी परिस्थिति में जो स्वाभाविक था वही हुआ। वे पाश्चात्य रहन सहन की प्रबल धारा में शीघ्रता के साथ बह चले। उनकी सारी जीवन-चर्या—वेष भूषा और आदतें सभी—अंग्रेज़ियत के ढांचे में ढल गयीं। ख़र्च बहुत बढ़ गये और साथ ही मानवी आवश्यकताओं का आदर्श भी ऊंचा हो चला। पिता जी के पत्र से अपने एक कुटुम्बी के ५००) मासिक

पर नौकर होने की सूचना पाकर आपने लिखा था (It is enough for his bread and butter) अर्थात् यह उनकी दाल के रोटी लिये काफ़ी है ! उस समय किसे ध्यान हो सकता था कि यही नवयुवक एक दिन दुःखी दीनों की सेवा का व्रत लेकर कहेगा कि (Eight annas a dav are sfficient for a man tc live) आठ आने रोज एक आदमी के निर्वाह के लिये बहुत हैं।

जून सन् १६१० में पं० जवाहरलाल ने विज्ञान विभाग की परीक्षा में द्वितीय श्रेणी को आनर्स (प्रतिष्ठा) प्राप्त की और बैरिस्टरी पढ़ने के लिये लंदन चले आये।

पं० जवाहरलाल बैरिस्टरी पढ़ने के लिये 'इनर टेम्पिल' में भर्ती हुए। अध्ययन के अतिरिक्त और किसी विशेष ओर आपकी रुचि नहीं थी। यद्यपि पं० जी ने

लंदन

वहां राजनीति में कोई भाग नहीं लिया किन्तु वहां से वे राजनीति की चाट अपने साथ ले आये। लंदन राजनीति का केन्द्र है, वहां का वायु मंडल सदा राजनैतिक विचारों से ही परिपूर्ण रहता है। राजनीति वहां के लोगों का एक व्यसन है और खाते पीते, सोते जागते, उठते-बैठते उसकी चर्चा में ही वहां लोगों

को आनन्द आता है। ख़ासकर उन दिनों सोशलिज्म की लहर प्रचंड रूप से उठ रही थी, सफ्रिजिट आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। पं० जी इन सब बवंडरों से पृथक रहे अवश्य, किन्तु इस स्वाधीन और राजनीति-प्रधान देश में इतने दिन रहकर भला उनके ऐसे भावुक नवयुवक इसकी छाप से कैसे बचे रह सकते थे। अतएव सन् १९१२ के जून में जब वे बैरिस्टरी पास करके भारत के लिए रवाना हुए तो उनके शारीरिक परिधान का बाह्य स्वरूप तो विदेशी अवश्य था पर भीतर हृदय में भारतीयता की चिनगारी बुझने नहीं पाई थी। यही चिनगारी यहां लौटने पर विशाल स्वदेशप्रेम की अग्नि के रूप में प्रज्वलित हो उठी, जिसका विस्तृत विवरण पाठक अगले अध्याय में पायेंगे।

बैरिस्टर

तृतीय अध्याय

वकालत और सार्वजनिक सेवा

पं० जवाहरलाल जिस समय इंगलैंड से भारत आये उस समय एड़ी से चोटी तक पाश्चात्य रंग में रंग चुके थे। वेष भूषा, रहन सहन और जीवन चर्या सभी में वे एकदम साहब बहादुर ही थे। मार्च सन् १६२२ में अदालत के सामने बयान देते हुए आपने स्वयं कहा था "दस साल से कम हुए जब कि इंगलैंड में बहुत दिन रहने के पश्चात् मैं भारत वापिस आया मैंने वहाँ पब्लिक स्कूल और विश्वविद्यालय में साधारण ढंग पर ही शिक्षा पायी थी, हैरो और केम्बिज के पक्ष-पात मुझमें ख़ूब आ गये थे और अपनी पसन्दगी और नापसन्दगी में मैं शायद हिन्दुस्तानी से अंगरेज़ ज़्यादा था। मैं संसार को लगभग एक अङ्गरेज़ की दृष्टि से देखता था और इसीलिये मैं इंग्लैंड और अङ्गरेजों का इतना पक्षपाती होकर भारत को वापिस आया जितना

किसी भारतवासी के लिये सम्भव हो सकता था।"
भारत में आकर उन्हें परदेश सा ज्ञात होता था और
बहुधा उनके हृदय में इंग्लैंड लौट जाने का विचार उठा
करता था। उनके पाश्चात्य भाव की अति देखकर अनु-
भवी लोग अनुमान करते थे कि शीघ्र ही ऐसा दिन
आवेगा जब कि उन्हें इस जीवन से अरुचि हो जावेगी
और वही हुआ भी।

हाईकोर्ट में

पं० जी अगस्त सन् १९१२ में भारत आये और उसी
वर्ष से प्रयाग हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। बुद्धि
प्रखर थी, सामयिक सूझ निराली थी
और वाक्यचातुर्य भी कम न था और
इस पर भी सबसे बड़ा सुभीता था पिता
की जमी हुई प्रेक्टिस और सुविख्यात नाम। किन्तु
इन सब सुलभ साधनों के रहते हुए भी हाईकोर्ट
में आप विशेष ख्याति न कमा सके। वकालत की
ओर आपकी रुचि न थी और होती भी कैसे? गार्हस्थ
उत्तरदायित्व तो सिर पर था नहीं और न पैसा कमाकर
अपूर्ण वांछाओं की पूर्ति करने की साध ही शेष थी। फिर
इस नीरस व्यवसाय में उनका मन कैसे लगता, पैसे के
लिये वे अपने जीवन को कैसे बेचते?

पं० मोतीलाल जी की सदा यही चेष्टा रहती थी कि वे किसी प्रकार जवाहरलाल को अपनी टक्कर का वकील बना सकें। लगातार अपनी मातहती में काम लेना, नज़ीरें खोजवाना और तनकीहें तैयार कराना उनका नियम था। जवाहरलाल जी जब कभी एकाकी भी मुक़द्दमें लड़ते थे किन्तु ज़्यादातर वे पिता जी के सहकारी ही रहते थे। लखना राज के बड़े मुकद्दमें में कुछ दिनों तक आप पिता जी के सहकारी रहे थे। यह ज़रूर था कि पं० जी हाईकोर्ट जाते थे किन्तु उनका ज़्यादातर समय मित्रगोष्टी, राजनैतिक वादविवाद, और सार्वजनिक सेवा में ही व्यतीत हुआ करता था। सन् १६१८ से उन्होंने हाईकोर्ट जाना भी कम कर दिया था और अन्त में सन् १६२० में तो वकालत से सदा के लिये बिदा मांग ही ली।

जवाहरलाल जी जब से इङ्गलैण्ड से वापिस आये तभी से कहा करते थे कि मैं आधा समय वकालत में दूंगा और आधा राजनीति में।

राजनीति की चाट

उस समय वे राजनीति को वास्तविक गंम्भीर दृष्टि से न देखते थे, अंग्रेजों की नाईं राजनीति उनके मनोविनोद

की वस्तु थी। मित्रों और कुटुम्बियों के साथ राज-नैतिक मसलों पर वादविवाद करने में उन्हें मानसिक आनन्द आता था। इङ्गलैंड से लौटने की साल ही सन् १९१२ में आप दर्शक की हैसियत से बांकीपुर कांग्रेस गये। इसके पहले बचपन में भी एक बार आप कांग्रेस के उस अधिवेशन को देख आये थे जिसकी बैठक बम्बई में सर हेनरी काटन के सभापतित्व में हुई थी। सन् १९१३ में आप युक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य बन गये और उसी समय से प्रान्तीय कांग्रेस के कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। उन दिनों कांग्रेस का संगठन, कार्यक्रम और रूप आज कल का सा नहीं था; चन्द धनाढ्य और शिक्षित लोग ही इसके सदस्य होते थे।

इन्हीं दिनों अफ्रीका में भारतीयों के साथ अनाचार किये जा रहे थे, काले और गोरे का भेद जोर पकड़ रहा था और भारतीय सरकार प्रवासी भारतीयों के हितों की रक्षा करने में अन्यमनस्कता दिखा रही थी। महामना गोखले ने भारत के नौनिहालों से अपने अफ़रीकन भाइयों की सहायता के लिये धन की अपील की। इस अपील के अनुसार चन्दा एकत्रित करने के लिये प्रयाग में

जो समिति बनी थी, जवाहरलाल जी उसके मंत्री थे। इस कार्य में आपने प्रमुख भाग लिया था। इसके बाद ही फ़िज़ी में भारतीय मज़दूरों को अनुचित इक़रार नामे लिखवा कर ले जाने के विरुद्ध जो आन्दोलन देश में उठा था, उस सम्बन्ध में प्रयाग में जितनी हलचल मची थी उसमें जवाहरलाल जी का विशेष हाथ था। महामना गोखले की मृत्यु पर शोक जुलूस संगठित करने में आप ही ने बड़ी दौड़ धूप की था।

पं० जवाहरलाल जी की राजनैतिक चाट दिनों दिन बढ़ रही थी और साथ ही साथ उनकी पाश्चात्य जीवन-चर्य्या भी अपनी पहली रफ़्तार पर

विवाह

ही जा रही थी। इसी समय पिता माता के सामने उनके सम्बन्ध में एक गहन प्रश्न उपस्थित था और वह था उनके जीवन का महान्-संस्कार विवाह। यह अवश्य था कि पं० जी पाश्चात्य प्रेमी थे और प्रेम विवाह उनकी दृष्टि में एक उच्च वस्तु रही होगी। किन्तु काश्मीरी समाज उन दिनों इतना उन्नत न था और इस संबंध में आत्म-निर्णय का मार्ग सर्वथा अविरुद्ध था। अस्तु हिन्दू परम्परा के अनु-सार ही पं० जवाहरलाल का विवाह दिल्ली के व्यवसायी

श्रीयुत जवाहरमल कौल की सुपुत्री कमला कौल के साथ पक्का हुआ। विवाह के दो वर्ष पहले जवाहरलाल जी प्रथम वार मसूरी में कमला जी से मिले थे और उसके बाद तो कई बार मिलने का सावका पड़ा। काश्मीरी कुटुम्बों में पर्दा अवश्य नहीं है किन्तु साथ ही अंग्रेज़ों की नाईं लड़के लड़कियों के मिलने जुलने की स्वतंत्रता भी नहीं है। अस्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इस विवाह सम्बन्ध पर उनके मिलाप का प्रभाव कहां तक पड़ा। विवाह का निर्णय तो पिता ने ही किया था किन्तु जवाहरलाल की सम्मति भी ली गयी थी। विवाह पक्के होने के बाद कुछ दिनों तक कुमारी कमला कौल प्रयाग में अपने एक सम्बन्धी के यहां रहीं थीं जहां कुमारी नेहरू को पढ़ाने वाली अध्यापिकाएं ही उन्हें शिक्षा दिया करती थीं। सन् १९१६ के फरवरी मास में बड़ी धूमधाम से हिंदू रीति के अनुसार पं० जी का विवाह हुआ और युगल दम्पत्ति जीवन भर के लिये प्रेमरज्जु में बंध गये।

कमला जी के सबसे छोटे भाई कैलाशनाथ कौल एक देश सेवी युवक हैं। असहयोग के दिनों में स्कूल छोड़कर उन्होंने पं० जी का साथ दिया था और पिछली

वर्ष लखनऊ के दंगे में पं० जी के कंधे से कंधा भिड़ाकर चोटें खायीं थीं।

कमला जी सुयोग्य भार्या और आदर्श महिला हैं। वे रमणी रत्न हैं और युवक-हृदय जवाहरलाल के उपयुक्त सहचरी हैं। जवाहरलाल की हृदय झंकार उनके हृदय में भी बज रही है, देश और दुःखियों का उन्हें भी उतना ही ध्यान है और स्वामी का अनुकरण कर उन्होंने भी देशसेवा का व्रत लिया है।

बचपन से ही उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है और बहुधा उन्हें रोग शय्या पर ही रहना पड़ता है। इसपर भी कांग्रेस का कार्य करने के लिये न जाने उनमें कहां से बल आ जाता है सन् १६२६ में जवाहरलाल जी उन्हीं का इलाज कराने के लिये यूरोप गये थे।

कमला जी की गोद में इस समय एक पुत्री रत्न है जिसकी अवस्था ११ वर्ष की है।

राष्ट्रीय महा सभा का अधिवेशन दिसम्बर सन् १६१५ में लार्ड सिन्हा के सभापतित्व में बम्बई में हुआ था। यहां श्रीमती एनी बेसेन्ट ने नेताओं

होम रूल लीग

की समिति के सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि एक "होमरूल लीग"

अर्थात् "स्वराज्य समिति" बनाई जावे जो कांग्रेस के साथ ही साथ स्वराज्य के लिये प्रयत्न करने के अतिरिक्त सर्व साधारण को कांग्रेस के उद्देश्य और कार्यों से परिचित करे। यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका क्योंकि बहुत से लोगों का विचार था कि यह कार्य कांग्रेस स्वयं कर सकती है। पं० जवाहरलाल भी इस कांग्रेस में उपस्थित थे और उनकी सहानुभूति श्रीमती वेसेंट की ओर ही थी।

कांग्रेस में सफल न होने पर देवी बेसेन्ट ने कांग्रेस से भिन्न 'होमरूल लीग' का संगठन करना निश्चय किया और अथक परिश्रम करने के बाद मद्रास में पहले पहल 'होमरूल लीग' की स्थापना की। थोड़े ही समय में भारत वर्ष के सब प्रसिद्ध नगरों में इसकी शाखाएं खुल गयीं। प्रयाग भी इस कार्य में पोछे न रहा। पं० जवाहरलाल और श्री मन्जरअली सोख़्ता के अथक परिश्रम और पं मोती-लाल, सर सप्रू, श्री चिन्तामणि और बाबू ईश्वरसरन के आश्वासन के कारण प्रयाग होमरूल ने बड़ा ज़ोर बांधा। सभाएं प्रायः होती थीं जिनमें हजारों की तादाद में श्रोतागण एकत्रित होते थे। पुरुषोत्तमदास पार्क के उत्तर ओर वाला बड़ा बंगला लीग का दफ़्तर था

और उसका लम्बा चौड़ा मैदान सभा-स्थल। पं० जी प्रयाग लीग के संयुक्त मंत्री थे। धन एकत्रित करने और सभा संगठित करने का विशेष भार उन्हीं के बाँट पड़ता था और उसे वे बड़ी ख़ूबी के साथ पूरा करते थे। पं० जी के प्रयत्न से लीग के बंगले में एक राजनैतिक पुस्तकालय भी खोला गया था जिसका उद्देश्य था राजनैतिक भावों का लोगों में प्रचार करना। राजनैतिक जागृति उत्पन्न हुए बिना स्वराज्य पाने की सच्ची शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती और जागृति का साधन है पुस्तकें। इसी समय से पं० जी का राजनैतिक अध्ययन के प्रति प्रेम विशेष रूप से बढ़ा।

देश भर में होमरूल लीग का प्रबल प्रचार देख कर ब्रिटिश सरकार घबड़ा उठी, दमन नीति काम में लायी गयी और आन्दोलन की प्रमुख नेत्री देवी बेसेंट और उनके साथी मिस्टर अरंडेल और बी० पी० वाडिया नज़रबन्द कर दिये गये। देश भर में इस अन्याय के प्रति क्रोध और घृणा प्रकट की गयी। प्रयाग में भी बड़ा ज़बर्दस्त आन्दोलन हुआ। जेल से छुट कर जब देवी बेसेंट अपने साथियों के साथ प्रयाग आयीं तो जनता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। जवाहरलाल जी ने इस अवसर

को सफल बनाने में कुछ उठा न रखा। आनन्द भवन में सभी नेतागण एकत्रित थे। लोकमान्य तिलक, देवी सरोजिनी, श्री मजूमदार और बाबू मोतीलाल घोष भी आये थे। इस अवसर पर नेताओं का जो चित्र लिया गया था उसमें आज के जवाहरलाल की पहली झलक दिखलायी देती है। कुर्ता और टोपी ही उनका परिधान है।

सन् १९१४ में यूरोपीय महासमर छिड़ गया। ब्रिटेन ने प्रजातंत्र की रक्षा के नाम पर सहायता की याचना की और भारत ने तन मन धन से ब्रिटेन

राजनैतिक लगन

का हाथ बटाया। स्वराज्य की भावी आशाएँ लेकर माता के लाखों लाल लड़ाई के मैदान में उतरे और मित्रराष्ट्रों की विजय के लिये जीवन की बाजी लगा दी। किन्तु युद्ध में विजयी हो कर इसके फलस्वरूप उन्हें मिला क्या? सहृदय मांटेगू की अनन्त चेष्टाओं के बाद एक अधूरा और अनर्थक शासन-विधान और उसके बाद ही रौलेट एक्ट और मार्शल ला। मार्च सन् १९१९ में काला क़ानून घोषत हुआ और सारे देश में भीषण तहलका मच गया। रौलेट एक्ट का विरोध करने के लिये गांधी जी ने

कानून भंग करने की ठान ली। सत्याग्रह सभा में लोग दनादन भरती होने लगे। इस परिस्थिति में जवाहरलाल जी कब पीछे रहने वाले थे, उन्हों ने तुरन्त ही अपने को सत्याग्रह के पक्ष में घोषित कर दिया। इस प्रश्न को लेकर पिता पुत्र में हफ़्तों तक नोंक झोंक की बहस होती रही। जवाहरलाल जी के जीवन पर इस घटना का जितना बड़ा प्रभाव पड़ा उसका अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। यह अवसर उनके जीवन मार्ग के परिवर्तन का अवसर था। वे सदा के लिये गरम दल की ओर झुक गये और देश सेवा का बीड़ा उठा लिया। जलियांवालाबाग़ के हत्याकांड और मार्शल ला की चोटें खाकर पंजाब छटपटा रहा था, दुखी स्थानों में नेताओं को प्रवेश करने की आज्ञा नहीं थी और ज़ुल्म पर राख डाली जा रही थी। अगस्त के महीने में मार्शल ला प्रायः उठा दिया गया और सरकार ने मामले की तहक़ीक़ात करने के लिये हन्टर कमेटी नियुक्त की।

किन्तु दुःखियों के दुःख सुख में रोने और हंसने वाले नेतागण, हंटर कमेटी के भरोसे बैठे न रह सके और प्रयाग से पं० मोतीलाल जी, पं० जवाहरलाल जी, बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन और महामना मालवीय जी

पंजाब जा पहुंचे। महात्मा गांधी भी उस समय पञ्जाब में उपस्थित थे। महात्मा जी के साथ मामले की छानबीन करने, दुःखियों की दर्दनाक कहानी सुनने और उनको आश्वासन देने में पं० जवाहरलाल ने अथक परिश्रम किया। दुःखियों की आहें उनके भावुक हृदय में प्रवेश कर गयीं और उन्होंने ठान लिया कि उनके जीवन का एक मात्र ध्येय होगा उस शासक सत्ता के ढङ्ग को कि जिसकी मातहती में ऐसे नारकी क्रूर कर्म किये जा सकते हैं सदा के लिये मिटा देना।

पंजाब से लौट कर पं० जी बैठे न रहे। प्रांतीय कांग्रेस के संगठन और किसान आन्दोलन में उन्होंने जो भाग लिया उसे पाठक गण आगे पावेंगे। सरकार की क्रूर दृष्टि पं० जी पर पड़ चुकी थी और वह उनके ऊपर दमन चक्र चलाने की घात में थी।

मसूरी में

सन् १९२० की गर्मियों में पं० जी मां, पत्नी और बहिन के साथ मसूरी में सेवाय होटल में ठहरे हुए थे। उन्हीं दिनों अफ़गान प्रतिनिधि भी जो कि ब्रिटिश प्रतिनिधियों से संधि की शर्तों पर बहस कर रहे थे, वहीं ठहरे हुए थे। ज़िले के अधिकारी पं० जी की उपस्थिति से भयभीत हुए और उन्होंने पं० जी से यह वादा करने के

लिये कहा कि वे अफ़गानों से किसी प्रकार की बात चीत न करेंगे। पं० जी ने इसका उत्तर देते हुए कहा था कि उन्होंने अफ़गानों को दूर से भी नहीं देखा है और न वे उनमें से एक से भी परिचित हैं। किन्तु बचन बद्ध होने से उन्होंने एक दम इन्कार कर दिया। वे अपने सिद्धान्त पर दृढ़ थे और सिद्धान्ततः वे इस प्रकार की आज्ञा को अनुचित समझते थे।

फल यह हुआ कि उन्हें २४ घंटे के अन्दर मसूरी ख़ाली कर जाने की आज्ञा मिली और उन्हें माता, पत्नी और बहिन को बीमारी की दशा में छोड़कर मसूरी से चला जाना पड़ा। कुछ दिनों उपरान्त सरकार को सूचना दी गयी कि चाहे आज्ञा स्थगित हो वा न हो पं० जवाहर-लाल माता जी की बीमारी के कारण मसूरी वापिस जाने से न रुकेंगे। इस पर हुक्म वापिस ले लिया गया और पं० जी मसूरी पहुंच गये।

इस घटना से पं० जी के सिद्धान्त-प्रेम, स्वातंत्र्य-प्रियता और आत्म-सम्मान का परिचय मिलता है।

संयुक्त प्रान्त में स्पष्टवक्ता और निर्भीक पत्र की कमी देख कर ५ फ़रवरी सन् १९१९ को बसन्त पञ्चमी

इन्डिपेन्डेन्ट अखबार

के शुभ दिन प्रयाग से इन्डिपेन्डेन्ट नामक अंगरेज़ी दैनिक पत्र प्रकाशित किया गया। इसके संचालक पं० मोतीलाल जी, पं० जवाहरलाल जी, राजा साहिब महमूदाबाद और सैयद हैदर मेंहदी प्रभृति थे। इस पत्र के प्रारम्भ करने और संचालन करने में पं० जवाहरलाल का ही प्रधान हाथ था। संचालकों की समिति को बुलाना और देख रेख रखना उन्हीं का काम था। प्रायः उनके लेख भी पत्र में निकला करते थे। इस पत्र की बिक्री उन दिनों भारत के सभी दैनिक पत्रों से ऊंची निकल गयी थी। सरकार की कोप दृष्टि का सामना पत्र को लगातार करना पड़ा, बहुत दिन तक हस्त लिखित प्रतियों में निकला और अन्त में स्थगित होगया। हार्नीमैन, सैयद हुसैन, रंगा आयर और जोजेफ़ इस पत्र के सम्पादक रहे थे।

—※—

चतुर्थ अध्याय

किसान आन्दोलन

"भारत का भविष्य किसानों के हाथ है"

—जवाहरलाल

भारत विशेषतया कृषक देश है। भारत की ७५ प्रति सैकड़ा जन-संख्या खेतिहर है और शेष चौथाई जन-संख्या भी उन्हीं के आश्रित है। जवाहरलाल जी के शब्दों में "सरकार की सारी मशीन किसानों के पैसे से ही चल रही है, फ़ौज व्यय में और वायसराय, गवर्नरों और दूसरे हुक्कामों की लम्बी चौड़ी तनख्वाहों में जो रुपया खर्च किया जाता है वह कहाँ से आता है? भारत के दरिद्रता पूर्ण देहातों से। हमारे शहर भी देहातों के व्यय पर ही गुजर बसर करते हैं" अस्तु भारत के किसानों के उद्धार और भारत के उद्धार का अर्थ एक ही है। इसी उद्देश्य को लेकर संयुक्तप्रान्त और विशेषतया अवध के किसानों को उन्नतिशील बनाने के लिये महामना

जवाहरलाल

मालवीय जी के प्रयत्न से सन् १६१५ में किसान-सभा स्थापित हुई थी। आरम्भ में सभा का उद्देश्य था किसानों को खेती बारी के आधुनिक ढंग बतलाना, कोपरेटिव सोसाइटियों द्वारा कम सूद पर पूंजी सुलभ बनाना और ज़मींदारों के आतंक और ज़ुल्म का सामना करने के लिये उनमें संगठन का बीज बोना। पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी बाबा रामचन्द्र, बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन और पं० गौरी शङ्कर मिश्र ने इस कार्य्य में आगे बढ़ कर हाथ बढ़ाया और किसान आन्दोलन में जान फूंक दी। पं० जवाहरलाल सब से पहिले किसान आन्दोलन की ओर सन् १६१८ में आकृष्ट हुए और उसी वर्ष वे किसान-सभा के उप-सभापति बना दिये गये।

किसान समस्या के सम्पर्क में आते ही इन भुखमरों से उन्हें स्वाभाविक प्रेम हो गया। उनकी दरिद्र दशा का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर उनका हृदय रो दिया। राजप्रसाद में रह कर और सुखों की गोद में पल कर उन्होंने कभी न सोचा था कि हमारे ही देश में हमारे अगणित भाई ऐसे भी हैं जिन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता और गर्मी और सर्दी में चिथड़े लगाए हुए झोपड़ियों में रहते हैं। दिन रात परिश्रम करके मनुष्यमात्र का उदर भरने वाले किसानों की

इस दशा को देख कर वे सिहर उठे। समाज, पूंजीवाद और आधुनिक सरकार से उन्हें घृणा हो गयी।

सन् १९१९ से २१ तक किसान आन्दोलन ने जो उग्र रूप धारण किया था उसका सबसे बड़ा श्रेय पं० जवाहरलाल को ही था। सारे अवध में और विशेषतया प्रतापगढ़ ज़िले में रात दिन भ्रमण करना, उपदेश देना और किसानों को संगठित बनाना ही उनका काम था। जो सदा राजप्रसाद में राजसी ठाट बाट से रहे, वे ही दुःखित कृषकों के प्रेम में बंध कर बहुधा किसानों की झोपड़ियों में कम्बल के उढ़ौने बिछौने पर सोते थे। पाश्चात्य वेष भूषा से उन्हें घृणा हो गयी थी और देहाती परिधान में ही वे देहातों में जाते थे। अच्छे से अच्छे होटलों में भोजन खाकर जो आनन्द न मिला था वह किसानों की मोटी रोटियों और साग पात में मिलता था। घर से बाहर, जो कभी पैदल न निकलते थे वे ही जवाहरलाल अरहर के खेतों में पानी में और देहात की गलियों में धोती चढ़ाये सैकड़ों मील पैदल चलते थे। कितना बड़ा परिवर्तन था। पूर्व परिचित लोग इस परिवर्तन को देख कर दांतों तले अँगुली दबाते थे।

इस अथक परिश्रम का फल जो हुआ उसे वे ही

जानते हैं जो उन दिनों अवध में रहे हों। सारे अवध में एक बवंडर सा आ गया था, किसानों के अटूट संगठन को देख कर सरकार और ताल्लुकेदारों को पानी नहीं पचता था। ४ दिन के भीतर अवध का सारा किसान किसी भी स्थान पर एकत्रित हो सकता था। सभा की सूचनाएं एक दिन के भीतर कान से कान में इस तरह से पहुंचती थीं जैसे बेतार का तार लगा हो। गाँव गाँव में पंचायतें स्थापित हो गयी थीं और प्रत्येक गाँव में पंचायत का निर्णय मानना अनिवार्य था। जो लोग पंचायत का न्याय नहीं मानतेथे उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था, नाई बाल न बनाता था, धोबी कपड़ा नहीं धोता था और यहाँ तक कि प्रत्येक पुरुष उससे दूर रहना चाहता था। पंचायत का न्याय न मानने वाले का जीवन दूभर हो जाता था और मज़बूरन उसे दण्ड देकर और क्षमा माँग कर पंचायत के न्याय के समाने सर झुकाना पड़ता था। बहुत से ताल्लुकेदार नौकर न मिलने पर अपने इलाक़े छोड़ छोड़ कर लखनऊ चले गये थे। खेतों की बेदखली न होती थी और न इजाफ़ा होने पाता था क्योंकि ये दोनों बातें तभी होती हैं जब कि एक खेत के दो उम्मेदवार हों। किन्तु पंचायत के शासन में यह

बन्दर का न्याय न होने पाता था। किसानों में उत्साह था और शक्ति थी, नेताओं के संकेत करने पर वे बड़े से बड़ा त्याग कर सकते थे। उनके सामने एक स्पष्ट कार्य-क्रम उपस्थित था जिसमें उनका हित उनकी मोटी समझ में भी खूब आ जाता था, यही कारण था कि यह आन्दो-लन इतना संगठित हो सका।

सन् १६१६ में अवध के किसानों का सम्मेलन ऊँचाहार ज़िला रायबरेली में होना निश्चित हुआ। किसानों को सूचना दी गयी कि प्रत्येक घर से एक एक आदमी आवे। बस गांव से गांव में बेतार का तार पहुँच गया और निश्चित तिथि के चार दिन पहले से लोगों का आना आरम्भ होगया। ऊँचाहार का दृश्य भी देखने योग्य था। तहसील के किसानों ने अपने २ घर से लाकर आटे का पहाड़ लगा दिया था और इसी प्रकार खाने की प्रत्येक वस्तु जुटाई गयी थी। प्रत्येक पुरुष भोजन की सामिग्री अपने लिये लाता था और एक भाई के लिये और। किसानों के इस सामूहिक संगठन को देखकर सरकार घबड़ा गयी। रायबरेली ज़िले में १४४ धारा लगा कर सभा के मुंह पर ताला जड़ दिया गया और सशस्त्र फ़ौज और पुलिस ऊँचाहार में तैनात की गयी। गर्म

ख़बर थी कि ऊँचाहार में सरकार गोली चलाये बिना न रहेगी। लाखों किसान सारे अवध से एकत्रित थे और पण्डित जवाहरलाल जी और पण्डित गौरीशङ्कर मिश्र ही इसके अगुआ थे। बाबा रामचन्द्र रोगग्रस्त रहने के कारण उपस्थित न हो सके थे। नेताओं की राय हुई कि निहत्थे किसानों की हत्या बचाने के लिये इस समय सर-कार की आज्ञा का विरोध न कर सभा भङ्ग कर देना विशेष उचित होगा। इस समय ऊँचाहार में पचास-साठ हजार किसान पहुंच चुके थे और इससे कुछ ही कम राय-बरेली के स्टेशन और शहर में पड़े हुए थे। गौरीशङ्कर जी ऊंचाहार लोगों को शान्त करने और वापस करने के लिये गये और पण्डित जवाहरलाल जी रायबरेली से लोगों को वापिस करने के लिये रह गये। लौटने की प्रार्थना करने पर किसान कहते थे कि नेहरू जी आवें या बाबा आवें तो हम मानें। नेहरू जी के कहने पर कि मैं ही नेहरू हूँ, बड़ी चेष्टाओं और प्रयत्न के बाद वे कहीं हटते थे। किसानों के सगठन का साहस दिखाकर और सामूहिक संगठन की दीक्षा देकर पण्डित जी ने उन्हें वापिस कर दिया और ऊंचाहार में गोली चलते चलते रह गयी।

रायबरेली का हत्याकांड भी किसान आन्दोलन की

एक महत्वपूर्ण घटना है। अवध के एक ताल्लुके के राजा साहिब विलासी थे और रानी को कष्ट देते थे। रानी ने गांव की पंचायत से अपील की और पंचों ने रानी के पक्ष में फ़ैसला देकर राजा को पञ्चायती न्याय मानने के लिये मज़बूर किया। राजा उस समय मान गये, किन्तु बाद में पुलिस में रिपोर्ट कर दी और पञ्च गिरफ्तार कर लिये गये। अफ़वाह उड़ गयी कि बाबा रामचन्द्र गिरफ्तार होगये। जिस किसान ने सुना वही रायबरेली की ओर दौड़ा और रायबरेली में नदी के पुल के उस पार किसानों की भीड़ बढ़ती ही गयी। सरकार भी बेसुध न थी किसानों को तुला हुआ देखकर उसे बलवा होने का पूरा भय था। सशस्त्र पुलिस और फ़ौज पुल के इस पार तैनात की गयी। किसान चिल्लाते थे कि बाबा रामचन्द्र और पंचों को छोड़ दो। पुलिस कहती थी भाग जाओ अन्यथा नुकसान उठावोगे। जवाहरलाल जी को तार दे दिया गया था। जिस समय पण्डित जी राय-बरेली पहुंचे उस समय नदी के इस पार सशस्त्र पुलिस थी और उस ओर निहत्थे किसान। आपने उस पार जाने की बहुत चेष्टा की किन्तु वे बलपूर्वक रोक दिये गये। जिस समय गोली चली, पण्डित जी का हृदय टूट गया,

प्रत्येक गोली जो किसानों के लगी थी उनके हृदय में सदा के लिये बैठ गयी, वे उस पार जाने के लिये बहुत छटपटाये किन्तु रोक दिये गये। ५ मिनट तक गोली चली, न जाने कितने मरे और कितने घायल हुए। पंडित जी २ दिन तक आहतों की सहायता के लिये रायबरेली ठहरे और किसानोंको सांत्वना दी, बादमें विशेष आवश्यक राजनैतिक कार्य के कारण उन्हें प्रयाग चला आना पड़ा किन्तु यहाँ भी वे पीड़ित किसानों को न भूले और बहुत सा रुपया उनकी सहायतार्थ भेजा।

असहयोग के दिनों में भारतीय स्वातंत्र्य के महत्तर प्रश्न की ओर आकृष्ट होकर वे किसान-आन्दोलन से विशेष सम्पर्क न रख सके। किसानों से अब भी पंडित जी को उतना ही प्रेम है और उनको स्वराजी प्रोग्राम में किसानों के हिताहित का सबसे पहले ध्यान रहता है।

—❀—

पंचम अध्याय

असहयोग आन्दोलन

अमृतसर की खूंरेज़ी ने देश में असन्तोष की आग फूंक दी थी। रौलट एक्ट और मार्शल ला लोगों के हृदयों में विषबाण की तरह चुभ गये थे। ज़लियांवाले बाग़ के हत्यारों को उचित दण्ड न दे कर ब्रिटिश सरकार ने प्रत्येक स्वाभिमानी भारतवासी को अपना शत्रु बना लिया था। मुसलमान ख़िलाफ़त के प्रश्न को लेकर ब्रिटिश सरकार पर बिगड़ रहे थे। भारतीय जनता मांटेगू चेम्सफ़ोर्ड सुधारों से सन्तुष्ट न होकर राजनैतिक समस्याओं का उचित निबटारा कर लेने पर तुली हुई थी।

इन गुत्थियों को सुलझाने के लिये महात्मा गाँधी ने देश के सामने असहयोग कार्यक्रम उपस्थित किया और उस कार्यक्रम पर विचार करने के लिये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बनारस में बैठी। कमेटीने कार्यक्रम स्वीकार करते हुए पुनर्विचार के लिये महासभा कांग्रेस का विशेष

असहयोग कार्यक्रम

अधिवेशन कलकत्ते में बुलाना तै किया। लाला लाजपतराय जी के सभापतित्व में विशेष काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। महात्मा जी ने कहा कि जब तक पंजाब में अत्याचार करने वालों को उचित दण्ड न मिले, खिलाफत के प्रश्न का निपटारा न हो और भारत में स्वराज्य स्थापित न हो, तब तक भारत के हिन्दू और मुसलमान तथा अन्य सभी जातियां सरकार से असहयोग कर दें। शासन यंत्र के संचालन में देश का एक बच्चा भी सरकार का साथ न दे। सरकारी नौकर नौकरी छोड़ दें, वकील वकालत छोड़ दें और विद्यार्थीगण गुलामी सिखलाने वाले शिक्षा-क्रम से नाता तोड़ दें। प्रत्येक विदेशी वस्तु और ख़ासकर ब्रिटिश वस्त्र का बहिष्कार किया जावे और खद्दर अपनाया जावे। सरकारी अदालतों के स्थान पर 'पंचायतें' न्याय करें। अभिप्राय यह कि आधुनिक सरकार से किसी भी प्रकार का सरोकार न रखा जावे। पं० जवाहरलाल ने सन् १९२३ में संयुक्त प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेंस के सभापति की हैसियत से असहयोग आन्दोलन की बड़ी सुन्दर मीमांसा की थी। उन्होंने कहा था "असहयोग का अभिप्राय काफ़ी सीधा सादा है और भोंड़ी से भोंड़ी अक्ल वाले के लिये भी स्पष्ट है ; किन्तु इस पर भी, बंग

भंग के दिनों को कुछ हद तक छोड़ कर शायद ही हम में किसी ने इसे उस समय तक समझा था जब तक कि महात्मा जी ने अपनी रण भेरी नहीं बजाई थी। पाप केवल इसीलिये फलता फूलता है क्योंकि हम उसे सह लेते हैं या उसकी सहायता करते हैं ; कुत्सित से कुत्सित स्वच्छंद और अन्यायी सरकार भी केवल इसीलिये स्थित रह सकती है क्योंकि वे लोग जिनके ऊपर यह शासन करती है स्वयं ही उसकी आज्ञा मानते हैं। इङ्गलैंड भारत को दासता की बेड़ियों में जकड़े हुए है क्योंकि भारत-वासी अंग्रेजों के साथ सहयोग करते हैं और इस प्रकार ब्रिटिश राज्य को दृढ़ बनाते हैं। सहयोग से हाथ खींच लो और विदेशी शासन का गढ़ धूल में मिल जाय। यह परिणाम स्वाभाविक ही है और इसके लिये किसी प्रमाण की अवाश्यकता नहीं है"।

कलकत्ता विशेष अधिवेशन ने बड़ी सरगरम बहस और लम्बी खींचातानी के बाद महात्मा जी के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। विपिनचन्द्र पाल, मालवीय जी प्रभृति नेता इस कार्यक्रम से दूर रहे। नागपुर कांग्रेस ने दिसम्बर सन् २० में इस अद्भुत कार्यक्रम पर अपनी अंतिम और शानदार छाप लगा दी। सारा

देश असहयोग के लिये प्रस्तुत था। गांधी जी के नेतृत्व में देश में संगठन आरम्भ हुआ और काश्मीर से कन्या-कुमारी तक असहयोग की आग भभक उठी।

पं जवाहरलाल पिता जी के साथ २ आरम्भ से ही असहयोग के पक्ष में थे। कांग्रेस को आज्ञा पाकर उन्होंने हाईकोर्ट में त्याग पत्र भेज दिया और अपना सारा समय और सारी शक्ति महा-सभा की सेवा में लगा दी। पं० जवाहर-लाल उन दिनों युक्तप्रान्तीय कांग्रेस के महा-मंत्री थे। प्रान्त के सारे संगठन का भार उन्हीं के कंधों पर था। कांग्रेस कमेटियों का स्थापित करना, प्रांतीय दफ्तर का सारा कार्य निपटाना और प्रांत में घूम कर प्रचार करना उनका नित्य का काम था। प्रातः ५ बजे से लेकर रात को ११ बजे तक वे निरत परिश्रम करते थे। उनका अविश्रान्त परिश्रम उनके हृदय का अगाध देश प्रेम, उनकी तेजी, फुर्ती और गम्भीरता देख कर सह-कारियों का हृदय बल्लियों उछल जाता था। उनकी उपस्थिति उनमें संजीदगी और उत्साह फूंक देती थी। खादी प्रचार, नशा निषेध, पंचायतों की स्थापना, अहिंसा-त्मक आज्ञा भंग की तैयारी और कर न देने की व्यवस्था—

रचनात्मक कार्य

सभी ओर उनका ध्यान था और जनता का अभूतपूर्व सहयोग पाकर वे सफलता की सीढ़ियां लांघते अपने लक्ष्य को ओर चले जा रहे थे। सारे देश में एक बवंडर सा आया था, आधुनिक शासक सत्ता के प्रति लोगों के हृदयों में अविश्वास और घृणा के भाव भर गये थे और भारत का बच्चा बच्चा अपने जीवन को बलि देने के लिये प्रस्तुत हो रहा था। वह युग भी एक देखने की वस्तु थी। नेतागण देश-प्रेम में सारे संसार को भूल कर विह्वल हो रहे थे और एक सिरे से दूसरे सिरे तक भारतीय जनता माता की दासत्व शृंखला मुक्त करने के लिये पागल हो रही थी।

दमन

इस अभूतपूर्व संगठन और बाग़ी वायुमंडल को देख कर सरकार काँप उठो। यद्यपि आन्दोलन अहिंसात्मक था, किन्तु था तो शासन सत्ता को मिटाने के लिये ही। अस्तु सरकार ने दमन का सहारा पकड़ा, वह दण्ड देकर देश-प्रेम की आग बुझाने में संलग्न हो गयी। मौ० मोहम्मद अली प्रभृति नेता गिरफ्तार हो गये, जनता में बड़ी सनसनी फैली और कार्य दूनी लगन से होने लगा।

पं० जी भी सरकार की बक्र दृष्टि से बचे न रहे। वे इन दिनों कांग्रेस के रचनात्मक कार्य्य के अतिरिक्त 'इन्डिपेन्डेन्ट अख़बार' में भी ख़ासा सहयोग दिया करते थे। जैसा पहले कहा जा चुका है, वे इस पत्र के प्रमुख डाइरेक्टर थे और उनके लेख भी इस पत्र में निकला करते थे। श्री जोजेफ़ और श्री रंगा आयर पत्र के सम्पादक थे। सरकार ने इन तीनों युवक देश प्रेमियों को नोटिस दिया कि अपने कुछ राजद्रोहात्मक लेखों और व्याख्यानों के लिये माफ़ी मांगे। किन्तु इन वीरों के लिये यह श्रृगाल भभकी मात्र थी। परिस्थिति विपरीत देख कर सरकार इस समय जवाहरलाल जी के ऊपर दमन चक्र चलाने से रुक गयी और केवल रंगा आयर को ही १ वर्ष की कड़ी सज़ा देकर शांत होगयी।

इसी अवसर पर युवराज 'प्रिंस आफ़ वेल्स' का भारत में आगमन हुआ। देश विदेशी सरकार से पूर्णतया असहयोग कर रहा था, अस्तु युवराज का वहिष्कार होना भी आवश्यम्भावी था। युवराज जब भारत में आये तो इने गिने सरकारी पिट्ठुओं को छोड़ कर उनके स्वागत में कोई भी स्वाभिमानी भारतवासी शामिल नहीं

युवराज का वहिष्कार

हुआ। जहाँ युवराज जाते थे वहीं भीषण हड़ताल होती थी और शोक दिवस मनाया जाता था। सरकार भी ख़ाली न बैठी थी। उसने कांग्रेस के संगठन को मटियामेंट करने की ठान ली और कांग्रेस वालंटियर कोर को राजद्रोही क़रार दे दिया। इसके प्रतिवाद स्वरूप कांग्रेस कार्यकारिणी ने यह निश्चित किया कि प्रत्येक कांग्रेस कमेटी अपनी वालंटियर कोर संगठित करे और प्रत्येक कांग्रेस मेन इस कोर में नाम लिखावे। कांग्रेस की आज्ञा पाकर सहस्रों देशभक्त कोर में नाम लिखाने के लिये उमड़ पड़े। पंडित जवाहरलाल स्वयं वालंटियर बन गये और प्रांत भर से वालन्टियर भर्ती करने लगे। कुछ ही दिन पहले लखनऊ में उन्होंने युवराज के वहिष्कार करने के लिये पर्चे बँटवाये थे।

सरकार के लिये यह सब असह्य होगया और इन कार्यों में उसे विद्रोह की बू आने लगी। ६ दिसम्बर सन् १९२१ के दिन प्रयाग में गिरफ़्तारियों की धूम मच गयी और चुन चुन कर प्रांत के सभी प्रमुख कार्यकर्ता पकड़ लिये गये।

जेल में

पंडित मोतीलाल, पण्डित जवाहरलाल, बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्री मोहनलाल नेहरू, श्री श्यामलाल

नेहरू, पण्डित गौरीशङ्कर मिश्र, श्री कुंवर बिहारी माथुर, श्री रणेन्द्र नाथ बसु प्रभृति कार्यकर्ता दमन चक्र के पञ्जे में कसे गये। उन दिनों प्रान्तीय कांग्रेस का दफ़्तर हीवेट रोड पर और अखिल भारतीय कांग्रेस का दफ्तर आनन्द भवन में था। पिता और पुत्र क्रमशः भारतीय और प्रान्तीय कांग्रेस के महामन्त्री थे। पण्डित जवाहरलाल उस दिन ६ बजे तक प्रान्तीय कांग्रेस में ही थे। सायङ्काल को घर पहुँचने के थोड़ी देर बाद ही पुलिस कोतवाल ने उन्हें गिरफ़्तारी का वारन्ट दिखलाया। उनका वारन्ट लखनऊ में युवराज का बहिष्कार करने के लिये पर्चा बांटने के सम्बन्ध में था, और शेष लोगों की गिरफ़्तारी वालन्टियर होने के कारण हुई थी। पण्डित जवाहरलाल जी को जब यह ख़बर मालूम हुई कि पुलिस उनकी गिरफ्तारी के लिये आगयी है, तो उन्होंने उस समय, जो दो चार मिनट मिले, उसमें यह उचित समझा कि उनके पास कुछ कार्यकर्ताओं ने जो दो चार पत्र भेजे थे उनका जवाब लिख डालें। गिरफ्तारी के समय चेहरे पर शिकन आना तो बड़ी बात है, मालूम होता था गोया आने वाले कष्टों की ओर उनका ध्यान ही नहीं है। वे प्रसन्न चित्त और शान्त दीख पड़ते थे।

सूचना मिलते ही आनन्दभवन की ओर नगरनिवासियों का तांता लग गया। नेताओं की जय बोल कर जनता प्रमत्त हो रही थी। पंडित जी ने जनता को शान्त करते हुए सन्देश दिया था "हम बहुत खुशी से जेल जा रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि इससे हमारे काम को फ़ायदा होगा और हमारी विजय निकट आवेगी। याद रखिये १२ तारीख को हड़ताल है और याद रखिये कि प्रत्येक व्यक्ति का काम है कि वह स्वयं सेवक बने। और सबसे बड़ी बात यह है कि आप लोग शान्त रहें। आपके हाथ में इलाहाबाद की इज़्ज़त है।"

इसके पश्चात पण्डित जवाहरलाल लखनऊ भेज दिये गये और पण्डित मोतीलाल जी प्रभृति नेता प्रयाग में रखे गये। अभी पण्डित जवाहरलाल का मुक़द्दमा भी नहीं हुआ था कि प्रयाग से सब लोग सज़ा पाकर उनके पास ही लखनऊ पहुँच गये। मुक़द्दमे में किसी भी तरह की सफ़ाई पेश नहीं की गयी और आपको युवराज के बहिष्कार करने के लिये पर्चे बाँटने के अपराध में ६ महीने की सादी क़ैद की सजा दे दी गयी। कुटुम्बियों और अन्य सहकारी कार्यकर्ताओं के साथ आप लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जेल के सिविल वार्ड में रखे गये।

जेल में आप लोगों के साथ ख़ास राजनैतिक कैदियों की तरह व्यवहार होता था। खाने पीने के लिये रुचि के अनुसार वस्तुएँ मिल सकती थीं, किताबें और अख़बार पढ़ने की सुविधा थी और मित्र गोष्ठी प्राप्य थी। चर्खा चलाना और भजन करना नित्य की बात थी। आप लोगों को देखने के लिये जेल में पांच २ छः २ सौ तक आदमी रोज़ आते थे, दर्शकों का ताँता लगा रहता था। एक दिन जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट से खटपट हो जाने पर आप लोगों ने अपना पाखाना स्वयं साफ़ किया। बाद को उसके माफ़ी मांगने पर सन्तुष्ट होगये। जेल में जवाहरलाल जी प्रायः नंगे पैर ही घूमा करते थे और उनकी दशा देखकर प्यारे पिता को कभी कभी बड़ा दुःख हुआ करता था।

अभी जेल गये तीन महीने भी न हुए थे, कि पुनर्विचार करने के लिये अदालत बैठी और जवाहरलाल जी रिहा कर दिये गये।

जेल से छूटते ही पंडित जवाहरलाल महात्मा जी से मिलने के लिये अहमदाबाद के लिये रवाना हो गये। किन्तु उनके पहुँचने के पहले ही महात्मा जी गिरफ्तार हो

असहयोग की आग में

चुके थे। महात्मा जी के मुक़द्दमे भर वे अहमदाबाद ही रहे। जेल के अनुभव और महात्मा जी के कारागार दण्ड ने उनको शासक सत्ता का और भी बड़ा शत्रु बना दिया। वे महात्मा जी के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये दूनी शक्ति के साथ जुट गये। सारे प्रान्त में और विशेषतया प्रयाग नगर में उन्होंने विदेशी वस्त्र बहिष्कार की धूम मचा दी। प्रयाग में कपड़े के व्यौपारियों ने एक सभा बनायी और उसका नाम व्यापारी मंडल रखा। मंडल के सभी सदस्यों ने यह इक़रार किया कि वे सन् १९२२ के अन्त तक विदेशी वस्त्र न ख़रीदेंगे। मंडल ने सबसे पहले यह निश्चित किया कि जो व्यापारी विदेशी वस्त्र मंगावें उन पर जुर्माना किया जावे और यदि वे जुर्माना देना अस्वीकार करें तो उनकी दुकानों पर धरना दिया जावे। इस निश्चय के अनुसार कई बार धरना देने की आवश्यकता पड़ी और विशेषतया धरना सफल ही हुआ। धरना नितान्त शान्तिमय होता था और कभी भी प्रार्थना करने के अतिरिक्त किसी भी वालन्टियर को एक भी कड़ा शब्द कहते नहीं सुना गया। विदेशी वस्त्र बहिष्कार की इस सफलता को देखकर सर-

कार भयभीत होगयी और बहुत से कार्यकर्ताओं के साथ पंडित जवाहरलाल जी फिर से गिरफ्तार कर लिये गये। धमकी देने और बलपूर्वक अपहरण करने के अपराध उन पर लगाये गये, कहा गया कि उन्होंने धमकी देकर बजाज़ों से जुर्माने के नाम पर रुपया ऐंठा है। सरकार अन्धी हो रही थी और १७ मई के दिन पंडित जवाहरलाल को इन्हीं अपराधों पर १॥ वर्ष का कारावास दण्ड सुना दिया गया। पंडित जी की ओर से किसी भी प्रकार की सफ़ाई पेश नहीं की गयी, केवल अदालत के सामने उन्होंने अपना लिखित बयान पेश किया था। पण्डित जी ने अपने वक्तव्य में सरकार की पोल खोलते हुए अन्याय और अदालतों के दुरुपयोग का चित्र खींचा था। जो अन्तिम उद्गार उन्होंने उस समय प्रकट किये थे वे सर्वथा उन्हीं के योग्य हैं :—

"स्वराज्य की लड़ाई में भारत की सेवा करना काफ़ी सम्मान है, महात्मा गाँधी ऐसे नेता के आधीन होकर देश की सेवा करना दूना सौभाग्य है। ओह! प्यारे देश के लिये कष्ट झेलना इससे और कौन बड़ा सौभाग्य एक भारतवासी को प्राप्त हो सकता है। हां! यह और ही बात होगी कि इस ध्येय के लिये ान काम में

आजावे या वह शानदार स्वप्न ही पूर्णरूप से प्राप्त हो जाय"।

जवाहरलाल जी पुनः प्रसन्नता पूर्वक जेल गये। उन्हें 'जेल के बाहर एक प्रकार से अकेला और सुनसान सा ज्ञात होता था और स्वार्थ फिर वहीं वापिस जाने के लिये प्रेरित करता था।' इस बार भी वे लखनऊ ही भेजे गये और वहां सहकारियों में जा मिले जो कि अभी जेल ही में थे।

जनवरी सन् १९२३ के अन्तिम दिनों में केवल ८ महीने के कारावास के बाद वे बहुत से राजनैतिक कैदियों के साथ छोड़ दिये गये।

जेल से आकर पण्डित जवाहरलाल प्रान्तीय कांग्रेस के मन्त्री बनाये गये। और वे पुनः राजनैतिक क्षेत्र में संलग्न हो गये।

षष्ठम अध्याय

राजनैतिक जीवन

जिस समय पं० जवाहरलाल जेल से बाहर आये उस समय राजनैतिक वायुमन्डल बदल चुका था। उचित नेतृत्व की अनुपस्थिति में जनता संग्राम से विरक्त हो गयी थी और असहयोग आन्दोलन शिथिल हो चला था कांग्रेस कैम्प में ही दो दल हो गये थे और दोनों ही कांग्रेस और देश को अपने पथ पर ले जाने की चिन्ता में व्यस्त थे। स्वर्गीय श्री चितरञ्जन दास ने पं० मोतीलाल जी के सहयोग से भावी स्वराजिस्ट पार्टी की रचना में हाथ लगा दिया था। दास बाबू के सभापतित्व में गया कांग्रेस हो चुकी थी और कौंसिल प्रवेश का इच्छुक दल पराजित हो गया था। किन्तु इस पर भी स्वराजिस्ट चुप न हो गये थे और राजनैतिक शतरंजी चालें चली जा रही थीं पं० जवाहरलाल जी ने सन् १९२३ में युक्त प्राँतीय राजनैतिक काँग्रेस के सामने इस परिस्थिति की बड़ी सुन्दर मीमाँसा की थी। "इसके पीछे लड़ाई झगड़ा, बहस

मुबाहिसा और आपस की चोंच बाजी का एक साल आया और हमारी शक्ति कुछ ही दिन पहले के साथियों से, जो कि अब विरोधी दल में थे, लड़ने भिड़ने और शतरंजी चाल चलने में लग गयी। परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों में लात घूंसा चलने लगा और औसत दर्जे का अपरिवर्तनवादी भी अहिंसा और उदारता के मूल पाठ को भूल जाने में और अपने से भिन्न विचार रखने वाले लोगों के ऊपर भद्दे से भद्दे दोष लगाने में पीछे न था। पर इस प्रकार धीरे धीरे अहिंसात्मक असहयोग के मूल गुणों का पतन होने लगा और बहुत से लोगों की दृष्टि में यह केवल बिना सत का छिलका रह गया।"

पंडित जवाहरलाल जी इस परिस्थिति को देखकर किंकर्तव्य विमूढ़ होगये। देश सेवियों की आपस की तूं तूं मैं मैं देखकर उनका हृदय लज्जा और खेद से भर गया। उनके सामने दो ही मार्ग थे, या तो वे भी धर्मान्ध की नाईं इनमें से ही किसी गुट में मिल जांय अन्यथा एकाएकी रहकर दोनों दलों में शान्ति का बीज बोने की चेष्टा करें। अन्त में उन्हें दूसरा पथ ही श्रेयस्कर प्रतीत हुआ और उसी के अनुसार वे कार्य में संलग्न होगये।

दिसम्बर सन् १९२२ में राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन स्वर्गीय देशबन्धु सी० आर० दास के सभापतित्व में गया में हुआ। स्वर्गीय दास कौंसिल प्रवेश के पक्ष में थे और अपने मतव्य को कांग्रेस की नीति बनाना चाहते थे। किन्तु उनका विरोधी दल बहुत प्रभावशाली था और कांग्रेस का बहुमत अपरिवर्तन वादी था। अस्तु महासभा ने कौंसिल बहिष्कार संबन्धी एक प्रस्ताव पास करके वोटरों से अपील की कि वे न तो कौंसिलों के चुनाव में खड़े हों और न उन उम्मेदवारों को, जा कि इस अपील की अवहेलना करते हुए खड़े हों, वोट ही दें। महासभा की नीति स्पष्ट थी और उसकी दृष्टि में कौंसिलें विदेशी शासकसत्ता की पुष्टि की साधन मात्र थीं। दास बाबू इस प्रस्ताव के साथ सहयोग न कर सके और उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। इसपर काँग्रेस कैम्प में खलबली पड़ गयी और समझौता करने के लिये इलाहाबाद में अ० भा० काँग्रेस कमेटी की बैठक ता० २७ फर्वरी को बैठी। पंडित जवाहरलाल उस समय जेल से छूट आये थे। पंडित जवाहरलाल और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के प्रयत्न से कुछ काल के लिये यह तू तू मैं मैं बन्द हो गयी और अप्रैल

तक दोनों ओर से कौंसिल आन्दोलन स्थगित कर देने की शर्त पर सामयिक समझौता होगया। कमेटी ने एक प्रस्ताव द्वारा पंडित जी और मौलाना साहिब को इस कार्य के लिये बधाई दी।

प्रयाग के समझौते से दोनों गिरोहों में स्थायी संधि न हो सकी थी और दोनों दल समय की गति देख रहे थे। इन्हीं दिनों कांग्रेस में कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों का एक ऐसा गुट बन रहा था जो इन दलों में किसी प्रकार शांति स्थापित कराना चाहता था। इन्हें लोग मंझपती (Centralists) कहते थे। इन लोगों की दृष्टि में दोनों ही माननीय ढंग के और दोनों के पृष्ठपोषक कुशल विचारवान थे। इसलिये ये लोग कांग्रेस का कार्यक्रम स्थित रखते हुए ऐसा मार्ग ढूंढ़ रहे थे कि जिसमें दोनों दलों को कार्य करने की सुविधा हो। पंडित जवाहर-लाल भी इसी गुट के सदस्य थे।

ता० २५ से २८ मई तक बम्बई में अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी परिस्थिति पर विचार करने के लिये बैठी और मंझपती दल द्वारा पेश किया गया निम्न लिखित प्रस्ताव कौंसिल प्रवेश संबन्ध में बहुमत से स्वीकृति होगया।

"यह दृष्टि में रखते हुए कि काँग्रेस के बहुत से प्रभावशाली सदस्यों का विचार सरकारी कौन्सिल प्रवेश के पक्ष में है और काँग्रेस का आधुनिक मतभेद इसके प्रभाव को कम रहा है, यह कमेटी कांग्रेसमैनों का संगठन और एकता आवश्यक समझती है और इसलिये निश्चित करती है कि गया प्रस्ताव के अनुसार कौन्सिलों के बहिष्कार के लिये कोई विशेष आन्दोलन न किया जावे।"

इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने पर कार्यकारिणी ने त्यागपत्र दे दिया। उनके विचार से यह प्रस्ताव उनके सिद्धान्तों के प्रतिकूल था और इसलिये इस प्रस्ताव की उपस्थिति में वे कार्य न कर सकते थे। पंडित जवाहरलाल के प्रस्ताव पर कमेटी ने कार्यकारिणी से प्रार्थना की कि वे त्यागपत्र वापिस ले लें। किन्तु कार्यकारिणी ने त्यागपत्र वापिस न लिया और नवीन कार्यकारिणी की रचना हुई। इस कार्यकारिणी के सभापति डाक्टर अन्सारी और वर्किङ्ग महामंत्री पंडित जवाहरलाल बनाये गये।

यह प्रस्ताव स्वीकृत अवश्य होगया किन्तु कई प्रान्तों में, जहां अपरिवर्तनवादी अपनी ही खींचने की धुन में थे, बम्बई प्रस्ताव के विपरीत कार्यवाहियां होती रहीं।

इस दशा पर विचार करने के लिये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक ८-१० जुलाई को नागपुर में बैठी। कार्यकारिणी ने बाग़ी प्रान्तों के कार्य की निन्दा और दण्ड का एक प्रस्ताव उपस्थित किया जो कि २ वोट से गिर गया। फल स्वरूप पंडित जवाहरलाल जी ने सहकारियों के साथ प्रधान मंत्रित्व से त्यागपत्र दे दिया और अपरिवर्तनवादी पुनः कार्यकारिणी में पहुँच गये।

सितम्बर के महीने में राष्ट्रीय महासभा का विशेष अधिवेशन दिल्ली में हुआ और इस अधिवेशन में स्वराजिस्टों को कौंसिलों के लिये खड़े होने को आज्ञा मिल गयी और दोनों दलों में समझौता होगया। दिल्ली अधिवेशन में महासभा ने शासनविधान सुधार के लिए एक समिति तैनात की और पंडित जवाहरलाल जी संचालक नियुक्त हुए। आप सत्याग्रह सभा और अकाली परिस्थिति के संबन्ध में नियुक्त की गयीं समितियों के भी सदस्य थे।

दिल्ली कांग्रेस समाप्त होने पर पं० जवाहरलाल नाभा राज के पीड़ित अकालियों की दुःख गाथा सुनने जेतो ग्राम की ओर चल पड़े। प्रोफ़ेसर क्रिपलानी और श्री के० सन्तानम भी आप के साथ थे ज़िले की नौकरशाही द्वारा

नाभा में

नियुक्त अधिकारी वर्ग उन दिनों नाभाराज में शासन कर रहे थे और जेतो ग्राम में अकालियों के साथ क्रूर व्यवहार किया जा रहा था। जैतो पहुंचते ही अधिकारी वर्ग के पेट में पानी हो गया और भयभीत होकर उन्होंने इन तीनों वीरों को तुरन्त ही राज खाली कर जाने की आज्ञा दी। किन्तु शेर शृगालों की भभकियों में नहीं आते; हमारे सिद्धान्त प्रेमी वीरों को यह आज्ञा सर्वथा अनुचित प्रतीत हुई और उन्होंने आज्ञा पालन करना अस्वीकार कर दिया। फलतः वे गिरफ्तार कर लिये गये और हथकड़ी डाल कर नाभा ले जाये गये। उनके विरुद्ध दो अभियोग लगाये गये—एक आज्ञा भंग का और दूसरा षडयंत्र का। थोड़े दिनों में ही उन्हें पहले अपराध में ६ मास की और दूसरे अपराध में १८ मास के कारावास की सज़ा सुना दी गयी। किन्तु सज़ा सुनाने के दिन ही अकस्मात उन्हें सूचना मिली कि शासक की आज्ञा से उनकी सजाएं स्थगित करदी गयी हैं और इस लिये वे छोड़े जाते हैं। साथ ही उनसे यह भी कहा गया कि भविष्य में वे शासक की लिखित आज्ञा के बिना नाभा की सीमा के भीतर प्रवेश न करें। नाभा राज्य की दृष्टि में यह आज्ञा अब भी काम में लायी जा सकती है।

जेल की गंदी दशा के कारण तीनों को ही खाट पकड़नी पड़ी। पं० जवाहरलाल जी को घर आकर भयङ्कर जूड़ी आयी और हफ़्तों कष्ट उठाना पड़ा।

जब पं० जी नाभा में थे उसी समय एक मित्र ने एक दिन सूचना दी थी कि आप यू० पी० काँग्रेस के सभापति मनोनीति हुए हैं। दुर्भाग्यवश काँग्रेस

प्राँतीय कांग्रेस

के दिनों में पं० जी बीमार पड़ गये और आप की अनुपस्थिति में ही आपका भाषण पढ़ कर सुनाया गया।

इसके पहले, जेल से आने के बाद से पं० जी प्राँतीय कांग्रेस के मन्त्री पद पर कार्य कर रहे थे। इन दोनों पदों पर रह कर पं० जी ने प्राँतीय कांग्रेस को शिथिलता से बचाने और सुसंगठित बनाये रखने में काफ़ी चेष्टा की थी।

दिसम्बर सन् १९२३ में मौः मुहम्मद अली के सभापतित्व में राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन कोकोनाडा में हुआ। अपरिवर्तनवादियों ने अपनी सारी

कोकोनाडा कांग्रेस

शक्ति संगठित करके एक बार पुनः देश को पुराने कार्यक्रम पर बनाये रखने की चेष्टा की। किन्तु वे विफल हुए और विजय स्व-

राजिस्टों के हाथ रहो। पं० जी बहुत दिनों से कांग्रेस में सैनिक शक्ति का अभाव अनुभव करते थे और इसीलिये आपने इस अधिवेशन के सामने वालंटियर संगठन का प्रस्ताव उपस्थित किया जो कि बहुमत से मान लिया गया। इस अधिवेशन में अखिल भारतीय वालंटियर कान्फ्रेंस भी हुई थी कि जिसमें सभापति का आसन आपही ने ग्रहण किया था। पुरस्कार स्वरूप आप ही हिन्दुस्तानी सेवादल आल इन्डिया बोर्ड के प्रथम सभापति बनाये गये। कांग्रेस ने अपना अगाध विश्वास दिखलाते हुए आपको प्रधान मंत्री निर्वाचित किया और शासन की बागडोर आपके हाथों में सौंप दी।

यूरोप यात्रा के दो वर्ष सन् २६ और २७ को छोड़ कर वे तब से आज तक कांग्रेस के प्रधान मंत्री रहे हैं इस पद पर रह कर उन्हों ने कांग्रेस प्रधान मन्त्रित्व आफ़िस को एक जीती जागती वस्तु बना दिया है। प्रयाग में रहने के दिनों में वे सदा ११ से ५ तक कांग्रेस अफ़िस में उपस्थित रहते हैं। वे स्वयं निरंतर परिश्रम करते हैं और अपने मातहतों से भी उसी प्रकार काम लेना जानते हैं। जितना उनका शासन कड़ा है उतना ही वे अपने सहकारियों से प्रेम भी करते हैं।

देश भर की राजनीति में भाग लेते हुए भी जिस सफलता के साथ उन्होंने अ० भा० कां० कमेटी के कार्य का संचालन किया है उसकी सराहना नहीं की जा सकती। सन् १९२४ में महात्मा गांधी ने पं० जवाहरलाल जी को उपयुक्त सहकारी समझ कर अपने सहयोग के लिये प्रधान मंत्री बनाया था और फिर उन्हीं महात्मा ने राष्ट्रपति बना कर देश को मुकुट पहनाया है।

पं जवाहरलाल अद्भुत साहसी हैं। जोखिम उठाने में उन्हें मज़ा आता है और यदि कहीं वह जोखिम सार्वजनिक सेवा के मार्ग में हो तो फिर क्या पूछना? Live Dangerously अर्थात् 'ख़तरे में रहो' उनका आदर्श वाक्य है। वे हथेली पर जान रख कर सदा आग के साथ खेलते हैं और कबीर के शब्दों में 'शीश उतारैं भुंइ धरै तापै राखै पाँव' उनकी बान है। सन् १९२४ के कुम्भी मेले में आपने इसी साहस का परिचय दिया था।

कुम्भी मेला

तीर्थराज प्रयाग में ६ साल बाद कुम्भी का महान माघ-स्नान पड़ा था। देश भर से धर्मप्राण हिन्दू गंगा यमुना संगम में स्नान करने के लिये आये थे। किन्तु सरकार ने अद्भुत कारण लगा कर उनकी सारी साधों

पर पानी फेर दिया। त्रिवेणी में सदा से विशेष गहराई थी और सरकारी मेला-प्रबंधक-कमेटी ने बालू डालकर समथल करने का कष्ट उठाना निरर्थक समझा और आसान मार्ग ग्रहण किया। त्रिवेणी में स्थान करना रोक दिया गया, रोक के लिये तख़्ते गाड़ दिये गये और सशस्त्र और घुड़सवार पुलिस इस प्रतिबन्ध की रक्षा के लिये तैनात की गयी। महामना मालवीय जी इस मेले में उपस्थित थे और इस सम्बन्ध में सरकार से वे बहुत कुछ लिखा पढ़ी भी कर रहे थे किन्तु कुछ फल न होता था। पं० जवाहरलाल जी को भी सूचना मिली और वे भी कुछ कांग्रेस स्वयं-सेवकों के साथ घटना स्थल पर जा पहुंचे। मालवीय जी ने उन्हें शान्त रहने के लिये कहा और एक बार फिर समझौता करने की चेष्टा की किन्तु फिर वही ढाक के तीन पात मिले। साधू लोग दूर से तमाशा देखते थे किन्तु अपने धर्म पर, जिसकी वे ध्वजा कहलाते हैं, सरकारी आक्रमण देख कर भी उनके किये कुछ न होता था। कांग्रेसमैन सत्याग्रह के लिये तुले हुए प्रतिबन्ध के पास ही डटे हुए थे और अनुशासन पाते ही तख़्ते उखाड़ने के लिये प्रस्तुत थे। मालवीय जी चाहते थे कि समस्या साधारणतया ही सुलझ जाय और इधर युवक-हृदय

जवाहरलाल का रक्त उबाल खा रहा था। बैठे बैठे ४ घंटे हो गये थे और अब रुकना उनके लिये असम्भव हो रहा था। तेज़ी के साथ वे उछल कर स्लीपर की दीवार पर बात की बात में तिरंगा झंडा लेकर चढ़ गये घुड़सवारों ने लाख चेष्टा की किन्तु वे उन्हें न पा सके। नेतृत्व की देर थी कि स्वयंसेवकों ने उनका अनुकरण करना प्रारम्भ किया और तनिक सी देर में बहुत से लोग त्रिवेणी में जा पहुंचे। पं० जी ने त्रिवेणी की ओर कूद कर बलपूर्वक तख्ते को उखाड़ दिया और नहाने के लिये मार्ग कर दिया। सरकारी नौकर और पुलिस ठगी हुई सी देखती रह गयी और सारे मेले में पं० जी के असीम साहस की चर्चा फैल गयी। भीड़ की भीड़ दर्शन के लिये दौड़ पड़ी। सरकार घबड़ा गयी और उसी दिन त्रिवेणी में बालू पड़ने लगी। मेले के यात्रियों को संगम में नहाने की सुविधा मिल गयी।

प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्ड

सन् १९२३ में जेल से छूटने के कुछ दिन बाद ही पं जवाहरलाल प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्ड के चैयरमेन चुन लिये गये। उन दिनों साम्प्रदायिक वैमनस्य ज़ोर पकड़ रहा था और हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे को

संदिग्ध दृष्टि से देखते थे। ऐसी परिस्थिति में ऐसे व्यक्ति की खोज थी जिस पर दोनों जातियों का विश्वास हो और जो साम्प्रदायिक पक्षपात से परे हो। प्रयाग निवासियों को पं० जवाहरलाल में उनका अभिलिषित व्यक्ति मिल गया और हिन्दू और मुसलमान दोनों ने एक मत होकर म्यूनिसिपल शासन की बागडोर उन्हें थमा दी। पं० जी ने अविश्रान्त परिश्रम और बुद्धिमत्ता के साथ बोर्ड की परिस्थिति को संभालने में हाथ लगाया। पिछले कांग्रेसी चेयरमैन बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने नौकरशाही से जो लड़ाई छेड़ी थी पं० जी ने उसे पूरा कर दिखाया। जहां तक सम्भव था सरकार से असहयोग किया गया और कई बार संजीदा प्रश्नों पर अधिकारी वर्ग से टक्करें लीं। पं० जी की ख्याति दफ़्तर शासन की निपुणता के लिये तो है ही; वे स्वयं परिश्रम करते हैं और अपने मातहतों से भी कड़ा काम लेना जानते हैं। उनके मारे आलसी और कामचोर क्लर्कों की जान आफ़त में रहती थी और घूंस का नाम लेना भी कठिन था। पं० जी चाहते थे कि जहां तक हो गरीबों से टैक्स न लिया जाय। अज्ञात टैक्स और चुंगी सर्वथा हटा दी जावे। किन्तु वे सरकारी विरोध के कारण इस ओर पूर्णतया सफल न हो

सके। नौकरों और विद्यार्थियों में खद्दर और चर्ख़े के प्रति चाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया। अनिवार्य शिक्षा की भी नींव डाली और रात्रिस्कूल भी खुलवाये। स्त्री शिक्षा की ओर आपका विशेष ध्यान था। महिला विद्यापीठ को कई बार आपने काफ़ी सहायता दी थी। साधारण रूप में चारों ओर प्रत्येक विभाग की उन्नति ही दिखलाई देती थी और यह प्रतीत होता था कि जैसे स्वराज्य आगया हो। सरकार ने भी अपनी रिपोर्ट में इनके म्यूनिसिपल चेयरमैनी के समय की कार्य कुशलता की बड़ी बड़ाई की है। सन् १९२६ के प्रारम्भ में पत्नी के इलाज के लिये आपने यूरोप यात्रा की और उसी समय से प्रयाग म्युनिसिपल बोर्ड से प्रथक हो गये।

स्विटज़रलैंड में

सप्तम अध्याय

यूरोप यात्रा

सन् १६२६ के आरम्भ में श्रीमती नेहरू का स्वास्थ्य बिगड़ गया और उनकी रुग्णावस्था संदेहात्मक हो गयी। स्थानीय डाक्टरों की सम्मति हुई कि इनका इलाज स्विटज़रलैंड में कराया जावे। अस्तु मार्च के महीने में पं० जी ने सपत्नीक यूरोप के लिये प्रस्थान किया और महीने के अंत तक वेनिस पहुँच गये। श्रीमती कमला जी का औषधोपचार विशेषतया जैनेवा और मोन्टाना में हुआ। पं० जी इन दिनों भी भारतीय परिस्थिति पर विचार करने और स्वाध्याय करने में तन्मय रहा करते थे। प्रायः भिन्न २ विषयों पर लेख भी लिखा करते थे, जो कि यूरोपीय और भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। स्विटज़रलैंड में रहते हुए कई बार पं० जी को संसार प्रसिद्ध विद्वान रोमेरोलां से साक्षात करने का अवसर मिला। रोमेरोलां उच्चकोटि के आदर्शवादी हैं। वे भारत के सच्चे शुभाकांक्षी हैं और असहयोग आन्दो-

लन और उसके जन्मदाता महात्मा गांधी में उन्हें असीम भक्ति है।

पं० जी इटली में भी बहुत दिन तक रहे और वहां आपने बहुत से फासिस्ट नेताओं से साक्षात किया। कमला जी का स्वास्थ्य संभलने पर आप यूरोप के भिन्न २ देशों का पर्यटन करने के लिये चल पड़े। फ्रांस, हालैंड, जर्मनी, इग्लैंड, बेलजियम और रूस सभी देशों में आप गये और वहां के भिन्न २ राजनैतिक नेताओं से भेंट की! यूरोपीय महाद्वीप में भ्रमण करते समय पं० जी बहुत से देश-निर्वासित भारतीयों से भी मिले उनमें निम्न लिखित नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, राजा महेन्द्रप्रताप, स्वर्गीय मौलवी बरकतुल्ला, मौलवी उबेदुल्ला, चम्पक रामन पिल्ले और श्याम जी कृष्ण वर्मा।

इन्हीं दिनों पं० जी को राष्ट्रीय महासभा की ओर से सूचना मिली कि वे आगामी फ़र्वरी में ब्रूसेल्स में होने

ब्रूसेल्स में

वाली साम्राज्य विरोधनी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस के लिये महासभा के प्रतिनिधि नियुक्त हुए हैं। अस्तु महासभा की आज्ञा पाकर पं० जी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित होने

के लिये चल पड़े। अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में सारे संसार से दलित और आधीन राष्ट्रों और मज़दूर संस्थाओं के प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे। और इस सम्मेलन का उद्देश्य साम्राज्यवाद को निर्मूल कर देना था। पं० जी ने पहले से पहुंच कर अंतरंग गोष्ठियों और विषय निर्धारिणी समिति में भाग लिया और प्रेस प्रतिनिधियों के भेंट करने पर एक वक्तव्य भी दिया। भारतीय राष्ट्रीय महासभा के प्रतिनिधि होने के कारण वहां पर आपको प्रत्येक रूप में सम्मानित करने की चेष्टा की गयी। विषय निधारिणी समिति के तो आप सदस्य थे ही, साथ ही नियमानुसार एक बैठक में आप सभापति भी बनाये गये थे। अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस के पांच सम्मानित सभापति नियुक्त हुए जिनमें एक पं० जी भी थे; शेष चार सभापति थे ईस्टीन, रौमेरौलां, मेडम सनयात सेन और जार्ज लेन्सबरी। यह भी प्रस्ताव किया गया था कि पं० जी तीन मंत्रियों में से भी चुने जावें किन्तु आपने स्वयं अपनी असमर्थता दिखलाते हुए अस्वीकार कर दिया। अन्त में पं० जी के मना करने पर भी आप कार्यकारिणी के सदस्य निर्वाचित कर लिये गये।

पं० जवाहरलाल ने इस कांग्रेस के मंच से भारत की

सच्ची अवस्था का परिचय कराने और दलित राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करने में भरसक प्रयत्न किया। आपने भारतीय दोहन और लूटखसोट के सम्बन्ध में भाषण देने के अतिरिक्त भारत से सम्बन्ध रखने वाले कई प्रस्ताव उपस्थित किये जिनकी पूरी रिपोर्ट आपने भारत लौटकर महासभा को समर्पित की थी। भारत की स्वाधीन होने की चेष्टा के प्रति सांसारिक सहानुभूति प्राप्त करने, साम्राज्यवाद का विरोध करने और भारत और चीन के बीच मैत्री स्थापित करने के सम्बन्ध में भी कई प्रस्ताव पास हुए।

इस कांग्रेस के झंडा कैम्प में भारत का तिरंगा झंडा भी लहराता था। पं० जी ने महान दूरदर्शिता और विद्वत्ता के साथ दलित राष्ट्रों की गोष्ठी में भारतीय प्रेम का बीज बो दिया और उन्हें समझा दिया कि भारत की मुक्ति में ही संसार की मुक्ति है। भारत ही साम्राज्य-वाद का सब से बड़ा अड्डा है और जब तक भारत से इसका नाश नहीं होता संसार के बहुत भागों को चीन की नाई साम्राज्यवाद के कडुवे फल चखने पड़ेंगे।

पं० जी जर्मनी प्रभृति देशों में पर्यटन करने के लिये गये। इसी बीच आपको सोवियट रूस की विदेशों के

रूस में — साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध रखने वाला सभा की ओर से दसवीं वर्ष गांठ के अवसर पर नवम्बर के आरम्भ में। आने का निमंत्रण मिला। रूस देखने को वैसे भी इच्छा थी ही निमंत्रण पाकर वे लोभ संवरण न कर सके और पत्नी और बहिन के साथ मज़दूर और किसानों के रूस को चल दिये। रूस में उनका सब प्रकार आदर सत्कार किया गया और वे राष्ट्र के अतिथियों की नाईं रखे गये। मास्को पहुंच कर पण्डित जी ने सोवियट रूस के महान परिवर्तन को देखा। ज़ार के गगनचुम्बी राजप्रासादों में मज़दूर संघ और भोजनालय खुल गये थे। मास्को के सब से बड़े गिरजे के सामने दीवाल पर लिखा हुआ था "धर्म मनुष्यों के लिये अफ़ीम है"। बड़े से बड़े सरकारी कर्मचारियों और मजदूरों और किसानों में कोई बड़ा भेद न था। सभी एक दूसरे को Towarish 'संगी' कह कर सम्बोधित करते थे। बड़ी फैक्टरियां और दूकानें सोवियट सरकार की ओर से थीं और मज़दूरों की परिस्थिति बहुत संभली हुई थी। प्रत्येक स्त्री और पुरुष हथौड़ा और हंसिया का चिन्ह अपने कपड़ों में लगाने में गौरव समझता था। रूस की दशा देख कर पं० जी

विस्मित रह गये। थोड़े ही काल में रूस ने जितनी उन्नति की थी, उसे देख कर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती थी। बायस्कोप भी राजनैतिक शिक्षा के साधन थे और उनमें ज़ार के पतन और लेनिन की विजय के दृश्य दिखलाये जाते थे।

पं० जी को मास्को की जेल देखने का भी अवसर मिला था। रूस में कारागार का उद्देश्य एकान्त में सुधार करने का है, दण्ड देने का नहीं। ऐसी कोई बात नहीं की जाती जिससे मानवी भावों का संहार होने की सम्भावना हो।

रूस में पं० जी विशेष दिन न रह सके। राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन समीप आ गया था और उसमें सम्मिलित होना उनके लिये आवश्यक था। अस्तु कुछ ही दिन ठहर कर आप को मद्रास के लिये चल देना पड़ा।

—:*:—

देश सेवक

अष्टम अध्याय

पथ-प्रदर्शन

रूस का प्रभाव

सोवियट प्रजातंत्र का आतिथ्य कुछ दिन स्वीकार कर नवम्बर के अन्तिम दिनों में पं० जी ने सकुटुम्ब स्वदेश के लिये प्रस्थान किया। पं० जी ने साम्यवाद और समष्टिवाद का स्वाध्याय और मनन किया था, किन्तु अभी तक उन्हें इस कार्यक्रम की क्रियात्मक शक्ति में विश्वास न था। वे इसे केवल एक उच्च आदर्श ही समझते थे। रूस में जाकर जो कुछ उन्होंने देखा उसने उनके विचार-जगत में विचित्र क्रान्ति उत्पन्न कर दी और जब वे भारत को लौटे तो साम्यवाद के पक्के हामी हो गये थे। म़जदूर और किसान और उनके संगठन उनकी दृष्टि में देश हित के लिये अब विशेष मूल्यवान हो गये थे। मशीन से घृणा न रह गयी थी और वे साम्यवाद संचालित फैक्टरियों में मशीन के उपयोग को लाभकारी मानते थे। 'मशीन औज़ार है भले और

बुरे दोनों के लिये प्रयोग किया जा सकता है।' विदेशों में घूम कर और दलित राष्ट्रों के प्रतिनिधियों और राजनीति शास्त्र के दिग्गज विद्वानों से मिल कर उनका अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव विस्तृत हो गया था और अब वे प्रत्येक प्रश्न को दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे थे। उनके दृष्टि कोण से अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति प्राप्त करने के लिये कांग्रेस का उद्देश्य पूर्ण-स्वतंत्रता होना आवश्यक था और साथ ही जन समुदाय की सम्मति और शक्ति, प्राप्त करने के लिये यह भी आवश्यक था कि स्वराजी कार्यक्रम में मज़दूरों और किसानों का बहुत बड़ा हाथ हो। अस्तु, देश में विशेष अच्छे और सुखी समाज की स्थापना करने का उद्देश्य लेकर पं० जवाहरलाल भारत आये और मातृभूमि पर पैर रखते ही उसी कार्यक्रम की पूर्ति में संलग्न हो गये।

मद्रास कांग्रेस

मद्रास अ० भा० कां० कमेटी के सामने आपने दो मार्के के प्रस्ताव उपस्थित किये—एक युद्ध भय पर और दूसरा कांग्रेस का ध्येय पूर्ण-स्वतंत्रता घोषित करने के संम्बन्ध में, राष्ट्रीय महासभा के सामने ही आप ही ने इन दोनों प्रस्तावों को पेश किया। इन दोनों प्रस्तावों को

उपस्थित करते हुए पं० जी ने बड़ी मार्मिक और स्पष्ट वक्तृताएं दी थीं। मद्रास कांग्रेस ने बहुमत से आपका नेतृत्व मान लिया और महासभा का ध्येय पूर्ण स्वतंत्रता घोषित कर दिया गया। इन दो प्रस्तावों ने देश के कार्यकर्ताओं का ध्यान आपकी ओर आकर्षित किया और सारा देश आपका मुंहचिता हो गया। 'लीडर' प्रभृति पत्रों ने लिखा था कि मद्रास कांग्रेस में ही पंडित जवाहरलाल ने सर्वप्रथम सर्वभारतीय ख्याति प्राप्ति की और वे सर्वभारतीय नेताओं की पंक्ति में आ गये। राष्ट्रीय महासभा के अवसर पर मद्रास में सर्वभारतीय रिपब्लिकन कांग्रेस और हिन्दुस्तानी सेवादल के वार्षिक अधिवेशन भी हुए थे और पंडित जी ही दोनों अधिवेशनों के मनोनीत सभापति थे। मद्रास काँग्रेस ने पुनः आपकी संयोजक शक्ति पर भरोसा करके पं० जी को अ० भा० कां० कमेटी का प्रधान मन्त्री नियुक्त किया और कांग्रेस यंत्र का संचालन आपके सुरक्षित हाथों में सौंप दिया।

मद्रास कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास करके कार्यकारिणी को आज्ञा दी कि वह भिन्न भिन्न दलों के प्रतिनिधियों से परामर्श करके मौलिक अधिकारों

सर्व दल सम्मेलन की घोषणा के आधार पर एक स्वराजी शासन विधान तैयार करे और मार्च के महीने तक सर्वदल कन्वेशन की बैठक दिल्ली में बुलाकर अपने कार्य को उसके सामने उपस्थित करे।

इसी प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणित करने के लिये पं० जी ने तुरन्त ही भिन्न भिन्न राजनैतिक, साम्प्रदायिक, मज़दूर और व्यवसायी संस्थाओं से लिखापढ़ी प्रारम्भ कर दी। जो कार्यभार कार्यकारिणी पर छोड़ा गया था विशेषतया उसका उत्तरदायित्व प्रधानमन्त्री के कंधे पर ही था। बहुत सी संस्थाओं ने कांग्रेस के निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया और सर्वदल सम्मेलन की प्रथम बैठक १२ फ़र्वरी से २८ फ़र्वरी तक दिल्ली में हुई। कार्यकारिणी के सदस्य और प्रधान मन्त्री की हैसियत से पं० जी ने सम्मेलन को सफल बनाने के लिये बड़ा परिश्रम किया और लगातार बैठकों में उपस्थित रहे। इसी समय मुस्लिम लीग ने ५ शर्तें पास कीं और किसी भी समझौते पर विचार करने के पहले उन शर्तों को इक़रार करने का प्रस्ताव पास किया। दिल्ली के अधिवेशन में सफलता मिलते न देखकर मुस्लिम मांगों के आधार पर

दो समितियां सिन्ध विच्छेद और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के प्रश्नों पर विचार करने के लिये नियुक्त की गयीं। मई के महीने में सम्मेलन की बैठक फिर से बुलाई गई। इस बीच में हिन्दू सभा मुस्लिम मांगों के विरोध में कई प्रस्ताव पास कर चुकी थी और परिस्थिति पहले से कहीं विशेष उलझ गयी थी, साथ ही नियुक्त समितियों ने भी कोई रिपोर्ट पेश नहीं की थी। अस्तु, सम्मेलन ने बम्बई में कुछ भिन्न भिन्न दलों के प्रतिनिधियों की एक कमेटी प्रत्येक प्रकार के मसलों और खासकर शासन-विधानात्मक साम्प्रदायिक मसलों पर विचार करने के लिये नियुक्त की और यह कमेटी पं० मोतीलाल नेहरू के सभापति नियुक्त किये जाने के कारण नेहरू कमेटी कहलायी। नेहरू कमेटी के कार्य को सफल बनाने के लिये पं० जवाहरलाल ने जितना उद्योग किया, उसका उल्लेख स्वयं कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में किया है।

यह सब होते हुए भी पं० जी नेहरू रिपोर्ट से पूर्णतया सहयोग न कर सके। जहां तक साम्प्रदायिक समस्याओं से सम्बन्ध था, वे रिपोर्ट के साथ थे किन्तु उनकी दृष्टि में देश के हित के विचार से औपनिवेशिक स्वराज्य को

इन्डिपेन्डेन्ट लीग

शासन विधान का आधार बनाना सर्वथा अनुचित था। उनकी धारणा थी कि सामयिक नीति और वास्तविकता के अनुसार भी पूर्ण स्वतंत्रता ही देश का लक्ष होना चाहिए। इसी धारणा के अनुसार पं० जी ने लखनऊ सर्वदल सम्मेलन में मालवीय जी के प्रस्ताव का विरोध करते हुए बड़ा ज़ोरदार और निर्भीक भाषण दिया और पूर्ण स्वतन्त्रता वादियों की ओर से सर्वदल सम्मेलन के सामने वक्तव्य उपस्थित किया कि हम लोग इस प्रश्न पर सम्मेलन की कार्यवाहियों से प्रथक रहेंगे।

इसी पूर्ण स्वतंत्रता वादियों की समिति का नाम 'इन्डिपेन्डेन्स लीग' पड़ गया। लीग ने ३ और ४ नवम्बर को दिल्ली की बैठकों में अपना विधान निर्माण किया और देश भर में पूर्ण स्वतंत्रता का आन्दोलन करने का कार्यक्रम बनाया। श्रीनिवास आयंगर लीग के सभापति थे और पं० जवाहरलाल जी मंत्री। दिसम्बर सन् १९२८ में राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन पं० मोतीलाल जी के सभापतित्व में कलकत्ता में हुआ पं० जवाहरलाल जी इस समय भी सिद्धान्त पर अटल रहे और पिता के विरुद्ध खड़े हुए। महात्मा जी ने जिस समय कलकत्ता कांग्रेस के सामने नेहरू रिपोर्ट पर अपना

प्रसिद्ध प्रस्ताव रखा था उस समय पं० जी अनुपस्थित थे। यद्यपि प्रस्ताव पर उनके दल ने सम्मति दे दी थी किन्तु उनका हृदय दुःखता ही रहा था। महात्मा जी ने स्वयं आपकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि पं० जवाहरलाल का हृदय देश की तंगी और अमीरों द्वारा गरीबों की लूटखसोट देख कर पक गया है और वे शीघ्र से शीघ्र परिस्थिति को सुधारने के लिये आतुर हैं। देश के हित की दृष्टि से पिता की परिस्थिति को चिन्ता न करते हुए भी आज उन्होंने महान आदर्श उपस्थित किया है।

अन्त में कांग्रेस ने घोषित कर दिया कि यदि ३१ दिसम्बर सन् १९२९ तक ब्रिटिश सरकार ने नेहरू रिपोर्ट के आधार पर औपनिवेशिक स्वराज्य देने का बचन न दिया तो कांग्रेस देश में पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर देगी। और टैक्स न देने का आन्दोलन करेगी और उस समय तक कांग्रेस देश को आने वाली लड़ाई के लिये तैयार करेगी।

मद्रास कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा साइमन कमीशन का बहिष्कार करना निश्चित किया था। प्रस्ताव में कहा

कमीशन का बहिष्कार

गया था कि यह दृष्टि में रखते हुए कि ब्रिटिश सरकार ने भारत के आत्मनिर्णय के अधिकार की अवहेलना करके एक कमीशन नियुक्त की है, यह कांग्रेस निश्चित करती है कि इस परिस्थिति में भारत के लिये केवल एक ही मार्ग शेष है और वह है प्रत्येक समय और प्रत्येक रूप में कमीशन का बहिष्कार करना। पं० जी ने इस कार्य में तुरन्त ही हाथ लगाया और ३ फरवरी की हड़ताल के लिये प्रयाग और प्रान्त को तैयार करना प्रारम्भ कर दिया। साइमन कमीशन के भारत पर पैर रखने के दिन प्रयाग में पं० जी के उद्योग से अभूत पूर्व हड़ताल मनायी गयी और पानी बरसते रहने पर भी सार्वजनिक सभा में हज़ारों की भीड़ उपस्थित थी। सम्भवतः यही देख कर साइमन कमीशन का प्रयाग आने का साहस न पड़ा था पं० जी का कार्य-क्रम इस सम्बन्ध में यहीं तक परिमित न था, प्रान्त के भिन्न २ नगरों में बहिष्कार सफल बनाने में भी आपको पूरा सहयोग देना पड़ता था।

कमीशन के बहिष्कार में ही आपको लखनऊ में डंडों और लाठियों का शिकार होना पड़ा था। सरकार की

लखनऊ की घटना

धारणा थी कि लखनऊ में बहिष्कार सफल न हो सकेगा और स्थानीय नेता-गण अपनी शक्ति संगठित कर रहे थे। ता० २६ नवम्बर के अपरिमित जुलूस ने अधिकारी वर्ग की धारणा पर राख डाल दी और उन्होंने २८ ता० के जुलूस में जनता को भय दिखा कर निरुत्साह करने की ठान ली। ताः २८ को पुलिस ने डंडों और लाठियों का प्रयोग किया और बहुतों के चोटें आयीं। परिस्थिति नाज़ुक देखकर पं० जी को टेलीफोन द्वारा सूचना मिली और वे सहकारियों का सन्देशा पाकर तुरन्त ही रवाना हो गये।

ताः २९ के दिन दो सभाएं होना निश्चित हुई थीं। बड़ी सभा अमीनुदौला पार्क में और दूसरी मुहल्ला नरही की छोटी सभा हज़रतगंज के पास। पं० जी कई सहकारियों के साथ मुहल्ला सभा में उपस्थित थे। सभा समाप्त होने पर निश्चित हुआ कि १२-१२ आदमियों की टोली बना कर एकान्त सड़कों पर हो कर बड़ी सभा के लिये चला जाय। पहली टोली में स्वयं पंडित जी और श्री गोविन्द बल्लभ पंथ थे। आप लोग अभी कठि-नता से ५० क़दम चले होंगे कि पुलिस ने सामने आकर

रोक लिया और डंडों से मारना प्रारम्भ किया। कुछ मिनट तक पुलिस के डंडे का आधिपत्य रहा पश्चात् डिप्टी कमिश्नर साहब तशरीफ़ लाये। डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि यदि पं० जी उससे लिखित आज्ञा मांगे तो उनका मार्ग खोल दिया जावे किन्तु पं० जी ने उत्तर दिया कि पुलिस का व्यवहार दो बार देख चुकने के बाद वे इसके लिये तैयार नहीं हैं। डिप्टी कमिश्नर ने उनसे ज़बानी कहलाना चाहा और यहां तक कहा कि वह उनकी बात चीत को भी ज़बानी प्रार्थना मान लेने के लिये तैयार है यदि वे भी उसे इसी रूप में मानें। किन्तु पं० जी अपने स्थान से तिल भर भी न हटे और किसी भी रूप में निवेदन करना अस्वीकार कर दिया। इसी समय चारों ओर से भीड़ एकत्रित होने लगी थी और बड़ी सभा से भी कुछ लोग समाचार जानने के लिये चले आये थे। घंटे भर तक खड़े रखने के बाद पुलिस ने न ज्ञात भीड़ से डरकर या बुद्धि से काम लेकर उन्हें जाने की अनुमति दे दी।

बात यहीं तक न रही। ता० ३० को पुलिस ने इससे भी विशेष उग्र रूप धारण किया। ५०००० से ऊपर भीड़ स्टेशन के पास एकत्रित थी और अधिकारीवर्ग उन्हें

कमीशन के मार्ग से दो फ़र्लांग दूर रखना चाहते थे। अस्तु डंडे, लाठी और पत्थर का प्रयोग किया गया और पं० जी को इस बार भी पुलिस की लाठियों का शिकार होना पड़ा।

सरकार के निरंकुश दमन से बहिष्कार को जितनी सहायता मिली उसका प्रत्यक्ष प्रमाण लखनऊ का ज़ुल्म ही था। पं० जी को डंडों का शिकार बनाकर सरकार ने बहिष्कार आन्दोलन को लोगों की दृष्टि में दूना ऊँचा कर दिया और देश में अपने प्रति विरोध बढ़ा लिया।

जब से पंडित जी यूरोप से लौट कर आये हैं तभी से देश के विभिन्न प्रान्तों ने उन्हें अपनी कान्फ्रेंसों में सभापति बनाकर सम्मानित किया है। प्रांतीय कान्फ्रेंसें गतवर्ष पंजाब, दिल्ली, केरल और संयुक्त प्रान्त में और इस वर्ष काठियावाड़ में आप ही सभापति पद पर आसीन हुए थे। सभापति के पद से जो भाषण आपने दिये थे वे इसी पुस्तक में संकलित हैं।

जब से पं० जी रूस से लौटकर आये हैं तभी से मज़दूरों के संगठन की ओर आप का विशेष ध्यान है। वे अपने

ही शब्दों में पूर्ण साम्यवादी हैं और उसी

मज़दूर आन्दोलन दृष्टि से स्वतंत्र भारत में मज़दूरों को

विशेष स्थान देने के हामी हैं। झरिया में

सन् १९२८ में आप सर्व भारतीय मज़दूर संघ के सभापति निर्वाचित हुए थे और पहली नवम्बर १९२९ को नागपुर में संघ का वार्षिक अधिवेशन आप ही के सभापतित्व में हुआ है। लगभग दो महीने पहले पं० जी के सभापतित्व में ही संयुक्त प्रांतीय मजदूर संघ की बैठक कानपुर में हुई थी। इस समय मज़दूर संघ आपही के नेतृत्व का मुंह देख रहा है।

विगत दो वर्षों से पं० जी ने युवक आन्दोलन में विशेष भाग लिया है और कम से कम युक्तप्रान्त के युवक

आन्दोलन के निर्माणकर्ता आप ही हैं?

युवक आन्दोलन यूरोप में और विशेषतया यूरोप में युवकों

की शक्ति और कर्तृत्वशक्ति को देख कर

आपको विश्वासहो गया है कि देश की आज़ादी युवकों के हाथों ही स्थापित हो सकती है। युवक ही आदर्श के नाम पर बड़े से बड़ा त्याग कर सकते हैं, जीवन की बलि दे सकते हैं। संसार में जो कुछ किया है युवकों ने ही किया है। पं० जी ने गत वर्ष सोशलिष्ट युवक कान्फ्रेंस,

बंगाल विद्यार्थी परिषद् और बम्बई प्रान्तीय युवक संघ के वार्षिक अधिवेशनों में सभापति के पद पर आसीन होकर भारत के युवकों को अपना सन्देशा पहुँचाया है और उनके सामने एक अनुपम कार्यक्रम उपस्थित कर दिया है। प्रयाग युवक संघ को पं० जी के सभापति होने का सम्मान प्राप्त है।

पं० जवाहरलाल इस प्रकार कलकत्ता कांग्रेस के निश्चय के अनुसार देश को युद्ध के लिये प्रत्येक ओर से प्रस्तुत करने में लगे हुए थे और साथ ही

कांग्रेस का सभापतित्व

कांग्रेस की आज्ञानुसार सदस्यों की संख्या वृद्धि करने और खद्दर प्रचार में यथा साध्य उद्योग कर रहे थे। इसी समय देश और कांग्रेस के सामने एक गुरुतर प्रश्न उपस्थित था। ऐसे संकटकाल में—राष्ट्र की विषमपरीक्षा के समय—देश का मुकुट कौन पहने? राष्ट्र के नेतृत्व की बागडोर किन हाथों में दी जावे? प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों ने महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू और श्रीयुत बल्लभभाई पटेल की सिफ़ारिशें की थीं। देश और कांग्रेस का बहुमत महात्मा जी को राष्ट्रपति बनाना चाहता था। किन्तु प्रारम्भ से ही वे अस्वीकार कर रहे थे। वे चाहते थे कि इस अवसर पर यह

काटे का सिहरा ऐसे व्यक्ति के सिर पर बाधा जावे जिस पर देश के जन समुदाय और सभी दलों का विश्वास हो। महात्मा जो की दृष्टि में जवाहरलाल जी से बढ़ कर इस कसौटी पर कसे जाने वाला कोई नहीं था। अस्तु उन्होंने कांग्रेस से कई बार इस विषय में अनुरोध किया। जवाहरलाल जी पर महात्मा जी का विश्वास अगाध है, उनकी दृष्टि में वे देश भक्ति के उज्वलित आदर्श हैं और इसीलिये उन्होंने कई बार पं० जी की लगन और देश प्रेम की प्रशंसा की है। संयुक्त प्रांत का भ्रमण समाप्त करते समय प्रान्त के युवकों को यही आदेश दिया था कि उनमें से प्रत्येक जवाहरलाल बने।

महात्मा जी की अस्वीकृति पर विचार करने के लिये आ० भा० कां० कमेटी की बैठक २८ सितम्बर को लखनऊ में बैठी। प्रायः सभी नेताओं ने व्यक्तिगत रूप और सम्मिलित रूप में महात्मा जी से अनुरोध किया किन्तु वे टस से मस न हुए। अन्त में पं० जवाहरलाल जी अवि-रोध सभापति चुन लिये गये। इस अवसर पर गांधी जी ने पं० जवाहरलाल की प्रशंसा करते हुए लिखा था।

"वे स्फटिक मणि वत् पवित्र हैं, उनकी सत्यशीलता

सन्देह से परे है, वे अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा हैं राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है।"

देश के प्रत्येक दल की आशाएं आप में एकत्रित हैं। युवक, मजदूर, किसान और देशसेवी सभी आपके नेतृत्व की बाट जोहते हैं और हिन्दू, मुसलमान, परिवर्तनवादी अपरिवर्तनवादी सभी का पं० जी में एकसा विश्वास है, पहली दिसम्बर को जिस धैर्य शीलता और गम्भीरता के साथ पं० जी ने अखिल भारतीय मजदूर संघ का कार्य संचालन किया था उसकी नरम और गरम दोनों दलवालों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। दीवान चम्मन-लाल ने कहा है "पं० जवाहरलाल जी साहस, चातुर्य्य और लावण्य की प्रतिमूर्ति जान पड़ते थे। कोई भी संस्था इससे बढ़कर सभापति पाने की आशा नहीं कर सकती और कोई भी कार्यवाहियां इतनी योग्यता से सम्पादित नहीं हो सकता।"

भारत के भाग्य निर्णय का अवसर इने गिने दिन बाद आ रहा है और उसका संचालन और नेतृत्व हमारे चरित्र नायक के हाथों में है। कलकत्ता कांग्रेस के प्रस्ताव की दृष्टि से इस कांग्रेस का महत्व देश के लिये जीवन मरण का प्रश्न है। इस समय पं० जवाहरलाल जी के

व्यक्तित्व में ही देशकी आशाएं केन्द्रीभूत हो रही हैं नेतृत्व युवकों के हाथ आया है और यदि चीन जापान आयर्लैंड इजिप्ट और रूस की नाईं हमारे देश का युवक समाज भी इस अवसर का सदुपयोग करेगा तो हमें आशा है कि राष्ट्र की नौका युवक शिरोमणि पं० जवाहरलाल जी कैसे कर्णधार की संरक्षा में सर्वथा निष्कंटक हो कर स्वराज के घाट पर जा लगेगी।

डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट की अदालत इलाहाबाद

१७ वीं मई १६२२

अदालत में बयान

"किसी निश्चित पथ का अनुसरण या त्याग करने के लिये दूसरों को शिक्षा देने, विनय करने और सम्मति सुझाने का एक अधिकार है और इसको हम नहीं छोड़ेंगे चाहे सरकार कुछ ही क्यों न करे। इस देश में हमारे पास बहुत थोड़े अधिकार शेष रह गये हैं और इनको भी छीन लेने की चेष्टा की जा रही है। हमने संसार को दिखा दिया है कि सभा-सम्बन्धी स्वातंत्र्य के अधिकार का हम क्या मूल्य समझते हैं; सहस्रों गिरफ़्तारियों और सैकड़ों सरकारी विपरीत घोषणाओं के होते हुए भी हमने अपने स्वयंसेवक बनाये रखे हैं। हम अपने भाषण-स्वातंत्र्य पर न किसी रोक-टोक को मान सकते हैं और न मानेंगे।.... हम अपने भाषण स्वातंत्र्य के अधिकार को सुरक्षित रखेंगे चाहे कितना ही मूल्य क्यों न देना पड़े।"

—पं० जवाहर लाल नेहरू

अदालत में बयान

—❦—

(पं० जवाहर लाल नेहरू ने तारीख १७ मई सन् १९२२ को जब कि आपके ऊपर अनुचित दबाव और बलपूर्वक अपहरण करने के लिये उकसाने के अभियोग चलाये जा रहे थे, अदालत के सामने निम्न लिखित बयान दिया)

"इस बयान से मेरा यह तनिक भी अभिप्राय नहीं है कि मैं उन भिन्न भिन्न जुर्मों के विरुद्ध अपनी सफ़ाई दूँ जो कि मेरे ऊपर लगाये गये हैं बल्कि मैं चाहता हूँ कि साफ़ साफ़ बतला दूँ कि मेरी क्या परिस्थिति है और किन विचारों से प्रेरित होकर मैंने उस ढंग पर काम किया कि जैसा मैं कर चुका हूँ। अपराध को स्वीकार या अस्वीकार करने से मैंने इन्कार किया है और मैं नहीं चाहता कि गवाहों की जिरह या और किसी भी ढंग से इस अभियोग में भाग लूँ। मैंने ऐसा किया है क्योंकि मैं इस अदालत को ऐसा न्यायालय नहीं मानता कि जहां इन्साफ़ होता हो। न्यायाधीश का

अपमान करना मेरा अभिप्राय नहीं है जब कि मैं यह कहता हूँ कि जहाँ तक राजनैतिक मामलों का सम्बन्ध है, भारत की अदालतें केवल नौकरशाही की आज्ञाओं को ही दर्ज कर लेती हैं। आजकल इन अदालतों का प्रयोग पहले से कहीं बड़े रूप में एक ऐसी सरकार के ढांचे को संभालने के लिये किया जा रहा है, जो कि भारत में ज़रूरत से ज़्यादा दिन कुत्सित शासन कर चुकी है और जिसको अपने उस सम्मान को, जो कि इससे सदा के लिये बिदा हो गया है, वापिस लाने के लिये इन चालों की शरण लेनी पड़ती है।

"मेरे ऊपर अनुचित दबाव और बलपूर्वक अपहरण करने के लिये उकसाने के दो जुर्म लगाये गये हैं। मेरी गिरफ़ारी के वारण्ट पर प्रसिद्ध दफ़ा १२४ (अ) भी है, यद्यपि आज मेरे ऊपर इसका मामला नहीं चलाया जा रहा है। जो हो, मैं एक ही में पूरा बयान देने का विचार करता हूँ। मैं अपने को भिन्न भिन्न विभागों में बांट नहीं सकता, एक धरने के लिये, दूसरा राजद्रोह के लिये और फिर भी सम्भवतः एक और स्वयंसेवक होने के लिये। मेरी सारी चेष्टाओं का लक्ष्य केवल एक ही है और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये मैंने अपनी

पूरी शक्ति और बल के साथ जी जान से चेष्टा की है।

"दस साल से कम हुए जब कि इङ्गलैंड में बहुत दिन रहने के पश्चात मैं भारत वापिस आया। मैंने वहां सार्वजनिक स्कूल और विश्वविद्यालय में साधारण ढंग पर ही शिक्षा पायी थी, हैरो और केम्ब्रिज के पक्षपात मुझमें खूब आगये थे। और अपनी पसन्दगी और नापसन्दगी में मैं शायद हिन्दुस्तानी से अंग्रेज़ ज़्यादा था। मैं संसार को लगभग एक अंग्रेज़ की दृष्टि से देखता था। और अतएव मैं इंगलैंड और अंग्रेज़ों के पक्ष में इतना पक्षपाती बनकर भारत को वापिस आया कि जितना किसी भी भारतवासी के लिये सम्भव हो सकता था।

"आज, दस साल बाद, मैं एक पुराना क़ैदी जो कि राजनैतिक अपराध में एक बार जेल जा ही चुका हूँ और भारत की मौजूदा सरकार का विरोधी हूँ, यहाँ कठघरे में दो अपराधों का मुलज़िम बनाकर खड़ा किया गया हूँ। समय ने मुझमें यह परिवर्तन किया है। मेरे लिये यह आवश्यक नहीं है कि मैं इस परिवर्तन के कारणों का उल्लेख करूँ। प्रत्येक भारतीय उनसे

परिचित है और प्रत्येक भारतीय ने उनको अनुभव किया है और उनके कारण लज्जित होकर अपना सिर नीचा किया है। और यदि उसमें पुरानी आग की एक भी चिनगारी शेष है तो उसने भारत की स्वतन्त्रता के लिये अनवरत उद्योग करने का प्रण कर लिया है ताकि उसके देशवासी उन दुखों और अपमानों के कभी भी फिर शिकार न बन सकें जो कि एक गुलाम क़ौम के हिस्से में पड़ते हैं। आज, भारत की मौजूदा सरकार के विरुद्ध राजद्रोह करना भारत के लोगों का मज़हब हो गया है। और उस बुराई के विरुद्ध, जिसकी कि यह प्रतिनिधि है, घृणा का उपदेश देना और यह स्वयम् काम में लाना उनका मुख्य व्यवसाय हो गया है।

"मेरे ऊपर अनुचित दबाव और बलपूर्वक अपहरण करने की चेष्टा करने के दो अपराध लगाये गये हैं। मुझे अचम्भा है कि क्या ये अपराध मेरे विरुद्ध सचमुच गम्भीरता के साथ लाये गये हैं। ताज़ीरात की दफ़ायें जो कि यहां काम में लाई गई हैं, उन घटनाओं से भी सम्बन्ध नहीं रखतीं, जो कि सबूत के गवाहों से प्रकट हुए हैं। मैं अनुमान करता हूँ कि इलाहाबाद में हमारी चेष्टाओं की महान सफलता ने ही अफ़सरान को धरना देने वालों

के विरुद्ध अभियोग लाने के लिये प्रेरित किया। यदि उचित उद्देश्य के लिये शान्तिमय धरना देना जुर्म है तो निस्संदेह मैं इसकी सम्मति देने और इसमें सहायता पहुं-चाने का अपराधी हूँ। किन्तु मुझे अभी यह भी जानना है कि ब्रिटिश भारत के क़ानून से भी शान्तिमय धरना देना जुर्म हो गया है। धरना देने से हमारा यह अभिप्राय था कि बजाज़ लोग अपने उन प्रणों पर स्थिर रहें जिनको कि उन लोगों ने संगठित रूप में स्वीकार किया था। क्या कोई विश्वास कर सकता है कि अनुचित दबाव और बलपूर्वक अपहरण करनेसे हम इस कार्य्य में सफलता पा सकते थे; सारा संसार जानता है कि हमारी शक्ति हमारे लोगों की सहायता और हमारे देशवासियों की सदिच्छाओं पर ही निर्भर है। हमारे हथियार पहले समय की तरह दबाव और बला-त्कार के नहीं हैं। वे हथियार जिनको कि हमारे महान नेता ने हमारे हाथों में दिया है, प्रेम और स्वार्थ त्याग के हैं। हम स्वयं कष्ट उठाते हैं और अपने कष्टों के द्वारा अपने शत्रु को पलटना चाहते हैं।

"अनुचित दबाव" का अर्थ है किसी व्यक्ति या उसकी जायदाद को 'हानि' पहुंचाने की धमकी देना,

और हानि से अभिप्राय है उस नुक़सान से जो ग़ैरक़ानूनी ढंग पर पहुँचाया जाय। उसी प्रकार 'अपहरण' में सम्मिलित होना चाहिए किसी आदमी को 'हानि' पहुँचाने के लिये डराना और इस प्रकार "बेइमानी से" उसकी सम्पत्ति झपट लेने के लिये फुसलाना। यह जानने के लिये कि किस आधार पर ये अनोखे जुर्म निर्भर थे, मैंने सबूत के गवाहों को बड़ी दिलचस्पी के साथ सुना है। कौन सी हानि था, जिसकी धमकी किसी आदमी या सम्पत्ति को दी गयी थी? कौन सा नुक़सान था जो कि ग़ैर-क़ानूनो ढंग पर पहुंचाया गया? कहां पर हम में से किसी की भी बेईमानी थी? साबित होना तो दूर किनार, अब तक कोई भी ऐसा बयान मैंने नहीं सुना जो यह बतलाता कि हमने किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को हानि पहुंचायो, कोई नुक़सान नाजायज़ ढंग पर पहुं-चाया या बेईमानी से काम लिया। सबूत के एक भी गवाह ने, जिसमें कि पुलिस और ख़ुफ़िया पुलिस भी शामिल हैं; ऐसा बयान नहीं दिया है। सारे इलाहाबाद के हज़ारों आदमियों में से जिन्होंने कि धरना देखा होगा कोई भी आदमी ऐसा नहीं मिला कि जो हमारी ओर से बलपूर्वक दबाव या हमारे एक भी धरना देने वाले के

द्वारा एक भी कड़े शब्द का व्यवहार करने का इलज़ाम ला सकता। आप ही आप प्राप्त पुलिस और खुफ़िया पुलिस के इस प्रमाण से बढ़कर हमारी सफलता का और कोई बड़ा प्रमाण नहीं दिया जा सकता। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि हमारा धरना अपने ढंग का आदर्श हुआ है अर्थात् पूर्णतया शान्तिमय, नितान्त सभ्यतापूर्ण, और किसी प्रकार का ज़ोर या दबाव का इशारा भी न करके केवल विनय और शिक्षा के बल पर अवलम्बित। बजाज़ लोग, जिन पर कि दबाव डाले जाने के बयान दिये गये हैं, अनुमान से हानि सहे हुए दल माने जाते हैं। किन्तु उनमें से एक ने भी कोई शिकायत नहीं की है।

"दस महीने पहले इलाहाबाद के बजाज़ों ने सन् १६२२ के अन्त तक विलायती कपड़ा न ख़रीदने का संकल्प किया था। उन सब लोगों ने कि जिन्होंने इक़रारनामें पर हस्ताक्षर किये थे और जिसमें लगभग नगर का हर एक बजाज़ शामिल था अपनी एक सभा बनायी और उसका नाम "व्यापारी मण्डल" रखा और अपने पदाधिकारियों और एक समिति का चुनाव किया। "मंडल" का पहला काम था यह नियम बनाना कि कोई भी सदस्य जो अपने

संकल्प को तोड़े और विलायती कपड़ा ख़रीदे, एक निश्चित ज़ुर्माने का देनदार हो। और उस दशा में जब कि वह इसके देने से इन्कार करे तो धरना आरम्भ कर दिया जावे। हर एक मामले में यह निश्चित करना 'मंडल' की समिति का ही काम था कि कितना विलायती कपड़ा आया और क्या ज़ुर्माना होना चाहिए। कई अवसरों पर पिछले साल 'मंडल' की कमेटी ने ऐसे संकल्प के विरुद्धाचरणों पर विचार किया और अपने नियमों के अनुसार ज़ुर्माने किये और वसूल किये। समय समय पर उनके निवेदन करने पर धरना भी काम में लाया गया। दो महीने हुए कि इलाहाबाद के कुछ बज़ाज़ों ने विलायती कपड़ा एक बहुत बड़ी संख्या में ख़रीदा था। यह काम संकल्प के विरुद्ध था और इसलिये इन बजाज़ों की दूकान पर धरना दिया गया। बाद में व्यापारी मंडल की कमेटी ने जो कि नये ढंग से बनायी गयी थी, उन दूकानदारों पर कि जिन्होंने इक़रार तोड़ा था, ज़ुर्माना निश्चित किया और स्वयं ही उस रुपये को इकट्ठा किया जो कि मंडल के पास है। जहाँ तक मैं जानता हूँ दो आदमी कि जिन्होंने इस मामले में सबूत की गवाही दी है मंडल को समिति के सदस्य हैं

और ऐसी परिस्थिति में उन्होंने स्वयं ही .जुर्माने के निर्णय और वसूल करने में सहायता दी होगी।

"इलाहाबाद के धरने से सम्बन्ध रखने वाली ये ही घटनाएँ हैं। बिना किसी सन्देह के यह स्पष्ट बात है कि न तो दबाव दिया गया और न ज़बर्दस्ती बलपूर्वक अपहरण करने की चेष्टा की गयी। मौजूदा अभियोग असलियत में दबाव और अपहरण के जामे के भीतर क़ानूनी और शान्तिमय धरने को दबाने की चेष्टा है। कई महीने से सारे भारत मे धरना दिया जा रहा है। इस प्रान्त में कई नगरों और बाज़ारों में यह हो चुका है। इस इलाहाबाद नगर में ही हम लोगों ने इससे बार बार काम लिया है। और इस पर भी सरकार ने इसके विरुद्ध कोई मुक़द्दमा नहीं चलाया। वे खूब जानते थे कि इँगलैंड की तरह भारत में भी शान्तिमय धरना कोई जुर्म नहीं है। निस्सन्देह केवल क़लम की एक चोट से शान्तिमय धरने को भी ग़ैर क़ानूनी क़रार दे देना उनके बस की बात है। लेकिन वे ऐसा करें या न करें हम इसे नहीं छोड़ेंगे। दूसरों को एक निश्चित पथ का अनुसरण वा त्याग करने के लिये विनय करने, शिक्षा देने और सम्मति देना एक अधिकार है और इसको हम

नहीं छोड़ेंगे, चाहे सरकार कुछ ही क्यों न करे। इस देश में हमारे पास बहुत थोड़े अधिकार शेष रह गये हैं और इनको भी छीन लेने की चेष्टा की जा रही है। हमने संसार को दिखा दिया है कि हम सभा सम्बन्धी स्वातंत्र्य के अधिकार का क्या मूल्य समझते हैं। सहस्रों गिरफ़्तारियों और सैकड़ों सरकारी विपरीत घोषणाओं के होते हुए भी हमने अपने स्वयं सेवक बनाये रखे हैं। हम अपने भाषण स्वातंत्र्य के अधिकार पर किसी रोक टोक को न मान सकते हैं और न मानेंगे। लगभग पच्चोस साल हुए हाउस आफ लार्डस् में एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी जज ने भाषण स्वातंत्र्य के अधिकार के सम्बन्ध में कहा था—"प्रत्येक पुरुष को अधिकार है कि वह जो चाहे सो कहे, प्रेरित करे, उपदेश दे और आज्ञा करे बशर्ते कि वह अपमान, धोखा या और कोई दूसरा ऐसा क़ानूनी जुर्म नहीं करता कि जिसका माध्यम भाषण हो सकता है। कोई कारण नहीं है कि कोई व्यक्ति केवल इसलिये कि उसके शब्द किसी दूसरे के काम में बाधा न दें, अपने बचाव या सफ़ाई के लिये अदालत में बुलाया जावे जब तक कि यह न दिखलाया जा सके कि उसने अपने अधिकार का अनुचित प्रयोग किया है।" हम अपने भाषण स्वातंत्र्य के

अधिकार को सुरक्षित रखेंगे चाहे कितना ही मूल्य क्यों न देना पड़े।

"कई कारणों से मुझे प्रसन्नता है कि मेरे ऊपर धरना देने का अभियोग चलाया जा रहा है। मेरा अभियोग विलायती कपड़े के बायकाट के प्रश्न को और भी सन्मुख कर देगा और मुझे विश्वास है कि जब इलाहाबाद और प्रान्त के लोग इस बायकाट के पूरे अभिप्राय को समझ लेंगे तो, वे विदेशी कपड़े से घृणा करने लगेंगे, इसे अपवित्र मानेंगे और इसका छूना भी पाप समझेंगे। यदि उन्होंने विचार किया होता कि विदेशी कपड़े ने इस असें से सताये हुए देश पर कितनी बुराइयाँ, ग़रीबी और कष्ट ढाये हैं तो वे कम से कम उस कँपकपी का कुछ हिस्सा अवश्य ही अनुभव करते कि जिसे मैं इस प्रकार केवल पहनने के विचार पर ही अनुभव करता हूँ। वे इन तर्कों को पेश न करेंगे कि पुराने कपड़े पहन डालने हैं या त्यौहार पर बढ़िया कपड़े की आवश्यकता होती है। वे जान जायँगे कि भारत और उसके लाखों भूखों की मुक्ति के लिये चरखे का प्रयोग और खद्दर का पहनना आवश्यक है और वे सारे विदेशी कपड़ों को निकाल बाहर करेंगे, और चिराग़ के सिपुर्द कर देंगे या घूरे पर

फेंक देंगे। मैं प्रार्थना करता हूँ कि इलाहाबाद के बजाज़ अपने दो बार किये गये पवित्र इक़रार पर स्थिर रहें और इस प्राचीन और पवित्र नगर में विदेशी कपड़े का पूर्ण बायकाट करने के लिये भरपूर चेष्टा करेंगे। इस अभियोग में इनमें से कुछ बजाज़ों ने सबूत की गवाही दी है। मुझे उनके विरुद्ध कोई भी शिकायत नहीं है। किसी भी कारागर दण्ड को जो कि मुझे दिया जा सकता है मैं बड़ी प्रसन्नता से झेल लूँगा, यदि मुझे ज्ञात हो जावे कि इसके द्वारा मैंने उनके हृदयों में स्थान पा लिया है और उन्हें इस महान कार्य्य का पक्षपाती बना लिया है। मैं नगर और प्रान्त की जनता से अपील करूँगा और दिल से निवेदन करूँगा कि वे अपने देश के लिये इतना तो करें कि खादी पहनें और चर्खा चलावें।

"मुझपर और मेरे साथी अभियुक्तों पर दबाव और अपहरण के अपराध लगाये गये हैं। मैं चाहता हूँ कि पुलिस और सरकारी अफ़सरान अपने कलेजे पर हाथ रखें, हृदय को गहराई तक टटोलें और कहें कि उनमें से बहुतों ने पिछले डेढ़ साल के भीतर क्या क्या कारगुज़ारियाँ की हैं। दबाव और आतंक, घूँस और

अपहरण सारे प्रान्त में चारों ओर प्रयोग में लाये जाते हैं। और हमारे कांग्रेस मैन या स्वयंसेवक इन जुर्मों के अपराधी नहीं थे। वे सरकारी पिठ्ठू ही थे कि जिन्होंने अपने अफ़सरान की जानकारी और स्वीकृति के साथ इनका भरपूर प्रयोग किया। इसपर भी न उनके ऊपर अभियोग चलाया जाता है और न दण्ड ही दिया जाता है; उनकी पीठ ठोंकी जाती है, प्रशंसा की जाती है और तरक्क़ी मिलती है।

"मैंने और मेरे सहकारियों ने आतंक और पशुता के कामों को देखा है और स्वयं तहक़ीक़ात की है। हमने देखा है कि किस प्रकार पुरुषों और स्त्रियों का असीम अपमान किया जाता है। हमने देखा है कि किस प्रकार सीतापुर में आतंक का राज्य है। हमने शोरतगञ्ज की निर्दयता की तहक़ीक़ात की है और हम जानते हैं कि बलिया के सैकड़ों बहादुर कार्यकर्ता किस प्रकार केवल कांग्रेस के पदाधिकारी या कांग्रेस के दूसरे मुख्य कार्यकर्ता होने के अपराध में जेल भेजे गये हैं। मैंने पैरों से कुचले हुये किसानों को जिनकी आंखों से निराशा टपकती है और जो सबेरे से शाम तक पशु की तरह खेत में केवल इसलिये काम करते हैं कि उनके मिहनत के फल दूसरे लोग

खांय, तंग किये जाते हुए और इतना ज़्यादा दुःखी किये जाते देखा है कि उनके लिये जीवन काटना दूभर हो जाता है। व्यक्तिगत ज़िलों के हवाला देने की मैं आवश्यकता नहीं समझता। उनमें से प्रायः हर एक को वही दुखी और शानदार कहानी कहना है।

"दबाव और आतंक सरकार के मुख्य हथियार हो गये हैं। इन ढंगों से वे एक क़ौम को आधीन करना और उसके विरोध को दबाना चाहते हैं। क्या वे समझते हैं कि इस प्रकार जनता के प्रेम-पात्र बन सकेंगे या उन्हें अपने साम्राज्यवाद के वफ़ादार अस्त्र बना सकेंगे। प्रेम और वफ़ादारी हृदय की वस्तुएं हैं। उन्हें न तो बाज़ार में ख़रीदा जा सकता है और न यही सम्भव है कि वे तलवार के बल पर हड़पी जा सकें। वफ़ादारी एक उत्तम गुण है। किन्तु भारत में कुछ शब्दों के अर्थ बिगड़ गये हैं और देश के प्रति विश्वासघात करना ही राजभक्ति का पर्याय हो गया है और वही व्यक्ति राजभक्त समझा जाता है जो कि अपने ईश्वर या अपने देश का भक्त नहीं है और केवल अपने विदेशी स्वामी के दुम के पीछे लगा रहता है। जो हो आज हमने इस शब्द को गड्ढे से निकाल लिया है और भारत की

प्रत्येक जेल में वे सच्चे वफादार मिल सकते हैं कि जिन्होंने अपने ध्येय, अपने विश्वास और अपने देश को सब से प्रथम स्थान दिया है और परिणामों की चिन्ता न करते हुए उन पर दृढ़ रहे हैं। उन्हीं लोगों को इस महान कार्य्य का बीड़ा दिया गया है, उन्होंने स्वतन्त्रता के स्वप्न देखे हैं और वे जब तक कि अपनी हार्दिक अभिलाषा प्राप्त न कर लेंगे, दम न लेंगे और पीछे न हटेंगे। इंग्लैंड अपनी सेना और जहाज़ी बेड़े के साथ एक शक्तिशाली देश है किन्तु आज उसे एक ऐसी शक्ति का सामना करना पड़ रहा है कि जो उससे कहीं विशेष बलवान है। उसकी सेना और जहाज़ी बेड़े को एक ऐसे राष्ट्र के दुःख-सहन और स्वार्थ त्याग से सामना करना पड़ रहा है कि जो स्वतन्त्र होने के लिये तुला हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि इस लड़ाई का परिणाम क्या होगा। हम अपनी स्वतंत्रता के लिये और अपने देश और धर्म की स्वतंत्रता के लिये लड़ रहे हैं। किसी भी राष्ट्र या जाति को हानि पहुंचाना हमारा ध्येय नहीं है। दूसरों के ऊपर शासन करने की भी हमारी इच्छा नहीं है। किन्तु हमें अपने देश में पूरी तरह से स्वतंत्र होकर रहना है। इग्लैंड ने पिछले १५० वर्ष में हमारे साथ अत्या-

चार और अन्याय किया है और अब तक भी न तो उस-ने पश्चाताप ही किया है और न अपना ढङ्ग ही संभाला है। डेढ़ साल पहले भारत ने उसे एक अवसर दिया था किन्तु उसने अपनी पाशविक शक्ति के घमंड और ऐंठ में आकर इसके ऊपर ध्यान ही न दिया। भारत के लोगों ने इंग्लैंड को आज़मा लिया है और अपना फ़ैसला दे दिया है और उस फ़ैसले से पीछे हटना अब नहीं हो सकता। इसमें सन्देह हो ही नहीं सकता कि भारत स्वतन्त्र होगा, किन्तु यदि इंग्लैंड स्वतन्त्र-भारत से मित्रता रखना चाहे तो उसे चाहिए कि अपनी पिछली कारगुज़ारियों के लिये पश्चाताप करे और अपने अगणित पापों को धो डाले जिससे कि भावी परिस्थिति में वह एक स्थान प्राप्त करने के योग्य हो सके।

"मैं फिर इच्छापूर्वक और प्रसन्नता से जेल जाऊंगा। जब से हमारे देव स्वरूप और प्यारे नेता (महात्मा गांधी) को सज़ा हुई है, जेल हमारे लिये निःसन्देह एक आश्रय-स्थल और पवित्र तीर्थ-स्थान बन गया है। विशाल शरीर और महान हृदय वाले, पुरुषसिंह मौलाना शौकत अली और उनके वीर भाई मुहम्मद अली वहां हैं और हमारे सैकड़ों सहकारी भी वहां हैं। जेल

के बाहर एक प्रकार से अकेला और सुनसान सा ज्ञात होता है और स्वार्थ फिर वहीं वापिस जाने के लिये प्रेरित करता है। सम्भवतः इस बार मुझे ज़्यादा दिनों की सज़ा मिलेगी। चाहे ऐसा हो या न हो मगर कम से कम मैं इस दृढ़ विश्वास को लेकर जाऊंगा कि मैं वहाँ से भारत को स्वराज्य प्राप्ति की बधाई देने के लिये ही निकलूँगा।

ब्रिटिश सरकार के सम्बन्ध में मैंने बहुत सी कड़ी बातें कहीं हैं। कम से कम एक बात के लिये तो मुझे इसको हार्दिक धन्यवाद देना ही चाहिए। इसने हमें इस शानदार लड़ाई में लड़ने का अवसर दिया है। सच है कि थोड़ी ही कौमों को ऐसे अवसर दिये गये हैं। जितने ही ज्यादा कष्ट हम उठावेंगे और जितनी ही कठिन परीक्षाओं में हम कसे जायंगे भारत का भविष्य उतना ही विशेष उज्ज्वल होगा। भारत सहस्रों वर्षों से इसलिये जीवित नहीं रहा है कि अब पतित हो जाय। भारत ने अपने पचीस हज़ार चुनिन्दा सपूतों को लड़ाई बन्द करने की इच्छा से जेल नहीं भेजा है। भारत का भविष्य निश्चित है। हममें से कुछ अविश्वासी स्त्री और पुरुष कभी कभी सन्देह करते और हिचकते हैं किन्तु विचार-

वान पुरुष उस शान का लगभग अनुमान कर सकते हैं कि जो भविष्य में भारत की होगी।

मैं अपने सौभाग्य पर अचम्भा करता हूँ। स्वराज्य की लड़ाई में भारत की सेवा करना एक काफ़ी सम्मान है, महात्मा गान्धी ऐसे नेता के आधीन होकर देश की सेवा करना दूना सौभाग्य है। ओह! प्यारे देश के लिये कष्ट झेलना, इससे और कौन बड़ा सौभाग्य एक भारतवासी को प्राप्त हो सकता है। हां! यह और ही बात होगी कि इस ध्येय के लिये जान काम में आ जावे या वह शानदार स्वप्न हो पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाय।

संयुक्तप्रांतीय राजनैतिक कान्फरेन्स

१७ वां अधिवेशन, बनारस

१३ अक्टूबर सन् १९२३।

सभापति का भाषण

'ऐसा ईमानदार पापी पुरुष जो कि जान बूझकर अपने बल के भरोसे पाप करता है कहीं अच्छा है; जिस समय वह अपना सुधार करेगा उस समय वह भलाई के हित के लिए एक शक्तिशाली स्तम्भ हो सकेगा क्योंकि उसकी नींव दृढ़ है। किन्तु छूंछे और पाखंडी भले लोग किसी भी काम में नहीं आ सकते? उनमें बल नहीं है और उनकी नींव खिसकती हुई बालू पर रक्खी गई हैं।"

"हम लोग छूंछे और अकर्मण्य होने के कारण ही भले हैं—यदि इसे भला होना कहा जा सके—क्योंकि हम में बुराई करने का साहस ही नहीं है।"

—पं० जवाहरलाल नेहरू

संयुक्त प्रान्तीय राजनैतिक कान्फरेन्स

—❀❀❀—

पं० जवाहरलाल नेहरू ने सभापति की हैसियत से संयुक्त प्रांतीय राजनैतिक कांफ्रेंस के सामने ता० १३ अक्टूबर सन् १९२३ को जो भाषण हिंदी में दिया था। उसका सार निम्न-लिखित है। रोगग्रस्त रहने के कारण आपकी अनुपस्थिति में आपका भाषण पढ़कर सुनाया गया था।

"नाभा में हमारे ऊपर अभियोग चल रहा था और कई दिनों से हम लोग बाहरी दुनियां से प्रथक रक्खे गये थे। अकस्मात् एक दिन एक मित्र कचहरी के कमरे में पहुंच ही गये और उन्होंने मुझसे कानाफूसी की कि मैं इस कान्फ्रेन्स का सभापति चुना गया हूँ। आख़िर आदमी ही तो था, विश्वास और सम्मान के इस अनन्य चिह्न पर मैं फूला नहीं समाता था। किन्तु तुरन्त ही मेरा ध्यान विद्वान और साहसी सभापतियों की श्रेणी की ओर जो कि मुझसे पूर्व इस पद को सुशोभित कर चुके थे और इस पद के उत्तरदायित्व की ओर गया और

मैं भावी आशाओं से काँप गया। और फिर भी मानवी दुर्बलता के कारण मुझे यह सोचकर प्रसन्नता हुई कि मैं जेल में हूँ और इस कारण इस उत्तरदायित्व से बच जाऊँगा। किन्तु नाभा सरकार की इच्छा कुछ और ही हुई। मुझे यह स्वीकार करते लज्जा मालूम पड़ती है कि सज़ा स्थगित हो जाने के कारण मेरी रिहाई हुए जितने दिन व्यतीत हुए हैं वे मेरे लिये बीमारी के दिन रहे हैं। आज मैं आपकी कृपा और दया का पात्र हूँ।

यह आम रिवाज है कि ऐसे अवसरों पर सावधानी से सोचा हुआ और पहिले से तय्यार किया हुआ भाषण समर्पण किया जाय। आम तौर पर यह भाषण छपाकर बाँटा जाता है। मुझे ऐसा करने को सुविधा नहीं मिली और यदि मुझे समय मिलता भी तो भी मुझे सन्देह है कि मैं कोई क़ीमती मसाला जुटा सकता। हमारे राष्ट्रीय इतिहास के इस अद्भुत और घटनात्मक समय में आप लोगों ने यह बोझा मेरे सिर पर रखना निर्णय किया है, जब कि विरोधी सिद्धांत और विपरीत विचार आपस में टकरा रहे हैं और हमारा स्वतंत्रता का महान आन्दोलन, जिसे कि हम तीन या चार साल से जानते हैं, जड़ से हिला दिया गया है और जब कि नादान और अनु-

चित धर्मान्धता धर्म के नाम पर पेंठती फिरती है और जनता में घृणा और हिंसा के भाव भरती है। इस अवसर पर हमारे लिये बहुत ही श्रेष्ठ और कुशल पथ प्रदर्शन की आवश्यकता है। कहिये मैं कैसे मानलूं कि मैं पथ-प्रदर्शक बन सकूंगा।

सन्देह और निराशा

एक महीने से कुछ कम हुआ जब कि कांग्रेस ने अपना विशेष अधिवेशन दिल्ली में किया था और कुछ गुरुतर निर्णय ते किये थे। आधीन संगठन की हैसियत से, हम उन निर्णयों के विपरीत जाने में असमर्थ हैं। यह उचित है कि हम उन्हें स्वीकार कर लें और जी जान से उनको कार्य रूप में लावें। किन्तु साथ ही मैं चाहता हूँ कि आप यह विचार अवश्य करें कि वे निर्णय हमें कितनी दूर तक ले जाते हैं। यह हमें साफ़ साफ़ समझ लेना चाहिए कि हमारा ध्येय क्या है? और उसके प्राप्त करने का मार्ग कौनसा है? तीन साल पहिले हम लोगों को इस विषय में तनिक भी सन्देह न था। सन् १६२० और १६२१ में हमारे अन्दर भरपूर विश्वास और भरोसा था, उस समय हम बहस मुबाहिसे को लेकर नहीं बैठा करते थे। हम जानते

थे कि सच्चाई हमारी ओर है और हम विजय पर विजय प्राप्त करते जाते थे। हम अनुभव करते थे कि हम सत्य-मार्ग पर आरूढ़ हैं और अपनी सच्चाई की लड़ाई और उसके लड़ने के निराले और शानदार ढग का ध्यान करते ही हमारा रोम रोम फड़क उठता था। वह वीरता का युग था, उसकी स्मृति चिरकाल तक अमिट है और सदा हमारी एक वांछित सम्पत्ति बनी रहेगी। तदन्तर हमारे नेता महात्मा गांधी जी हम से प्रथक कर दिये गये और निर्बल, अस्थिर और चंचल हम लोग सन्देह और निराशा करने लगे; पुराना विश्वास बिदा हो गया और उसके साथ ही हमारा बहुत कुछ भरोसा भी जाता रहा। इसके पीछे लड़ाई झगड़ा, बहस मुबाहिसा और आपस की चोंच बाज़ी का एक साल आया और हमारी सारी शक्ति कुछ ही दिन पहले के साथियों से जो कि अब विरोधी दल में थे—लड़ने भिड़ने और शतरंजी चाल चलने में लग गयी। परिवर्तनवादी और अपरि-वर्तनवादियों में लात घूंसा चलने लगा और औसत दर्जे का अपरिवर्तनवादी भी अहिंसा और उदारता के मूल पाठ को भूल जाने में और अपने से भिन्न विचार रखने वाले लोगों के ऊपर भद्दे से भद्दे दोष लगाने में पीछे न था। हम अपने

स्वभाव पर भी अधिकार न रख सके और ऐसी परिस्थिति में विवेक शक्ति का प्रयोग कैसे सम्भव हो सकता था। और इस प्रकार धीरे धीरे अहिंसात्मक असहयोग के मूल गुणों का पतन होने लगा और बहुत से लोगों की दृष्टि में वह केवल बिना सत का छिलका ही रह गया।

दिल्ली कांग्रेस

यह कहा जाता है कि दिल्ली कांग्रेस ने इन दो विपरीत विचारों के दलों के बीच संधि कर दी है और इस व्यथा का अन्त कर दिया है। यदि कांग्रेस डाह और सन्देह का अन्त करने में सफल हो सके। और हमारे राजनैतिक क्षेत्र में उदारता और अहिंसा के भावों की पुनर्जाग्रति कर सके तो सचमुच यह बहुत हद तक सफल हुई है। किन्तु मैं नहीं समझता कि कांग्रेस के मुख्य प्रस्ताव को संधि का प्रस्ताव बतलाना कहां तक ठीक है। उसको ऐसा कहने का कारण केवल यह है कि कुछ दलों ने उसे अङ्गीकार कर लिया है। मैं नहीं समझता कि इन दो दृष्टिकोणों में जो कि देश की मालिकी के लिये लड़ते रहे हैं, कोई सच्ची या स्थायी सन्धि हो सकती है। वे मूल से ही भिन्न भिन्न हैं। वे दोनों ही माननीय ढंग हैं और उनके पृष्टिपोषक वीर पुरुष और कुशल विचारवान हैं, किन्तु

फिर भी उनके विचारों में ज़मीन और आस्मान का अन्तर है।

यह कहा गया है कि दिल्ली कांग्रेस असहयोग का अन्त करती है। किसी ऐसे व्यक्ति के मुंह से, जो कि भारत में पिछले तीन चार साल रहा है, यह बात सुनकर मुझे अचम्भा होता है। यह मेरी समझ के बाहर है कि कांग्रेस का कोई प्रस्ताव भी इस शक्तिशाली आन्दोलन का अन्त कर सकता है। यदि भारत ने महात्मा गांधी के उपदेशों को कुछ भी ग्रहण किया है और यदि आदमियों की एक टोली भी उन उपदेशों के ऊपर सच्चाई से दृढ़ बनी रहेगी तो भी असहयोग मर नहीं सकता। और यदि हम सब इन उपदेशों के लिये एक दम अयोग्य हैं और इसके अनुसार कार्य करने में असमर्थ हैं, तो भी आगामी सन्तान इस शक्तिशाली अस्त्र का प्रयोग करेगी और संसार को दिखा देगी कि केवल यही एक सर्व श्रेष्ठ मार्ग है जो कि सच्ची स्वतंत्रता की पक्कायत करता है और लड़ाई झगड़े को सदा के लिये निर्मूल कर देता है। अहिंसात्मक असहयोग मर नहीं सकता। यह हमारे देश की सीमा के बाहर चला गया है और आज सारे संसार की सम्पत्ति है।

मैं दिल्ली कांग्रेस की आलोचना करने की ढिठाई न करूंगा किन्तु मैं समझता हूँ कि इसके कई निर्णय महात्मा गांधी के चलाये हुए आन्दोलन के विपरीत थे, वे अहिंसात्मक असहयोग के उन मूल सिद्धान्तों के विरोधी थे जिनका कि आदेश महात्मा जी ने दिया था। किन्तु निस्संदेह यह कोई उचित दलील नहीं है हम अपना कार्यक्रम क्यों न बदलें जब कि हमें यह पूर्ण निश्चय हो गया है कि परिवर्तन करना आवश्यक है। किन्तु प्रारम्भिक कार्यक्रम के दृष्टिकोण से भी मैं दिल्ली के निर्णयों का स्वागत करता हूँ। यह तो ठीक ही है कि उनका अभिप्राय पीछे हटना है और यह भी निश्चित है कि किसी ऐसे पुरुष के लिये जो कि अपने पुराने ढंग पर पूरा विश्वास रखता हो ऐसा करना बहुत ही कठिन और पीड़ाजनक है। किन्तु मेरा विश्वास है कि यह पीछे हटना या यों कहिये कि पीछे हटने के लिये दूसरों को अनुमति देना, इस अवसर पर आवश्यक था। अपरिवर्तनवादियों के लिये यह सम्भव था कि वे कांग्रेस का निर्णय सब तरह के परिवर्तनों के विरुद्ध प्राप्त कर लेते। किन्तु मुझे सन्देह है कि इससे असहयोग को कोई बड़ा लाभ पहुँचा होता। अपने आपस में मतभेद होने का मुझे तनिक भी

भय नहीं है। वह तो बना ही रहेगा। लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे उस समय बड़ा शरम मालूम हुई जब कि मैंने देखा कि हमारा उच्च आन्दोलन, जो कि उन्नत आदर्शों और स्वयं कष्ट सहने के बल पर फला-फूला था, दो दल बन्दियों में परिवर्तित किया जा रहा था और उन दोनों में से प्रत्येक अपने धन और शक्ति को ऐसे डेलीगेट बनाने में लगा रहा था जो कि अपने नेताओं की आज्ञा पर हाथ उठा दें। असहयोग, इस प्रकार के पाश्चिमीय राजनैतिक तरीकों और दांव घातों की सहायता से, उन्नति नहीं पा सकता। इसकी उन्नति के साधन हैं इसकी नितान्त पवित्रता, सीधापन और जनता से अपील।

मैं लगभग यह भी चाहता हूँ कि कलकत्ता की विशेष कांग्रेस ने सन् १९२० में असहयोग की नीति और कार्यक्रम को स्वीकार न किया होता। इस स्वीकृति ने आरम्भ से ही हमें दबा लिया और बड़ी संख्या के बोझ ने हमें एक दम शिथिल कर दिया। उस समय अपने विश्वास और नियम के पक्के हम लोग एकत्रित रहकर कार्य कर सकते थे, और उचित अवसर पर जनता और काँग्रेस को अपने विचारों के पक्ष में मोड़

सकते थे। किन्तु चाल विपरीत चली गयी और इसी कारण हमें कष्ट उठाना पड़ा। असहयोग का आधार सामने की लड़ाई है और इसमें लगातार कष्ट सहने पड़ते हैं। कोई भी आदमी यह आशा नहीं कर सकता कि जनता की बड़ी बड़ी भीड़ें सामने की लड़ाई में लगातार भाग ले सकती हैं। केवल कुछ चुने हुए लोग ही ऐसा कर सकते हैं और जनता उनके प्रति सहानुभूति रख सकती है और थोड़े समय के लिये कभी कभी उनका हाथ बंटा सकती है। यदि कांग्रेस सचमुच क़ौम की प्रतिनिधि है तो यह स्वाभाविक है कि वह उस समय किसी प्रकार की क़ानूनी लड़ाई की ओर झुकने की चेष्टा करे जब कि क़ौम की बड़ी संख्याएं सामने की लड़ाई से थक गयी हों। जो लोग उत्सुक और लड़ाई के लिये सदा प्रस्तुत रहने वाले हैं, उनके लिये यह पीड़ा जनक है। किन्तु निराश होने की आवश्यकता नहीं है। यह अवश्य है कि उन लोगों का बोझ बढ़ गया है जो कि सामने की लड़ाई के ढंग को क़ौम के सामने बनाये रखना चाहते हैं, उनको लड़ाई में संलग्न रहना होगा जब कि मुख्य सेना सुस्तावेगी या शान्तिमय धन्धों में व्यस्त रहेगी। उन्हें यह विश्वास रखना चाहिए कि जब समय आवेगा तब

मुख्य सेना उनका साथ देने से मुंह न मोड़ेगी। और अतएव मैं दिल्ली के निर्णयों से संतुष्ट हूँ। मसले के ऊपर विशेष ज़ोर देने की चेष्टा का परिणाम अच्छा न होता।

स्वतन्त्रता का ध्येय

हमारा लक्ष्य क्या है और हमारे साधन क्या होने चाहिएं ? इस विषय में कांग्रेस की नीति (Creed) सूक्ष्म और सादी है। किन्तु साथ ही इसका व्याख्याएं कई प्रकार से की जा सकतीं हैं। हम ने यह पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है कि प्रान्तीय स्वराज्य या भारतीय सरकार के कुछ विभागों के भारतीय हाथों में दिये जाने से हम लोगों को थोड़ा भी सम्बन्ध नहीं है। पूर्ण घरू स्वतन्त्रता का अर्थ है कि कोष, सेना और पुलिस हमारे अधिकार में रहे। जब तक कि हमारा पूरा अधिकार इन विभागों पर नहीं हो जाता तब तक भारत स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। यह हमारी कम से कम मांग है। किन्तु यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि हम अपनी नीति में "स्वराज्य" का अर्थ "पूर्ण स्वतन्त्रता" क्यों न करें। वैयक्तिक हैसियत से मैं उस दिवस का स्वागत करूंगा जब कि कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा करेगी। मेरा विश्वास

है कि भारत के लिये उपयुक्त और ठीक ध्येय, केवल स्वतन्त्रता ही है।

मैं कांग्रेस की नीति परिवर्तन करने का इस समय भी इच्छुक हूँ। किन्तु इससे व्यर्थ का वाद विवाद और विरोध बढ़ जावेगा और सम्भव है कि काँग्रेस संकुचित हो जावे और कुछ लोग उसे छोड़ दें। हमें चाहिये कि कांग्रेस का दर्वाज़ा सब के लिये खुला रहने दें। जब कि लोग इस विचार को पूर्ण रूप से समझ लेंगे और मान लेंगे, उस समय अपने आप ही नीति में परिवर्तन हो जावेगा। उस समय तक परिवर्तन के लिये ज़ोर देना अच्छा न होगा।

असहयोग आन्दोलन में विश्वास

मैं प्रकट कर ही चुका हूँ कि महात्मा गांधी के चलाये हुए असहयोग आन्दोलन में मेरा पूर्ण विश्वास है। मैं विश्वास करता हूँ कि भारत और सचमुच सारे संसार की मुक्ति अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा ही होगी। संसार में हिंसा का युग बहुत काल से रहा है। इसे बार बार तौला गया किन्तु यह सदा कम ही निकला। यूरोप की आधुनिक परिस्थिति इस बात का जीता जागता प्रमाण है कि हिंसा किसी भी मसले को तै करने में

असमर्थ है। मैं विश्वास करता हूँ कि यूरोप में हिंसा की दिनों दिन अति ही होती जावेगी और एक दिन उसी आग में यह जल मरेगी कि जिसे इसने सुलगाया है। इस भावी आशा पर कि अहिंसा भी एक दिन अपना उचित स्थान पाकर मनुष्यों और राष्ट्रों के कारबार का संचालन कर सकेगी, बहुत लोग मुस्करा देते हैं और लापरवाही से नाक चढ़ाते हैं। वे मानवी प्रकृति की दुर्बलता और क्रोध, घृणा और हिंसा के सार्वभौमिक प्रचार की ओर ध्यान दिलाते हैं। मुझे डर है कि सम्भवतः हममें से कुछ ही इनसे रहित होंगे। दुःख के साथ मैं स्वयं अनुभव करता हूँ कि मैं हिंसात्मक विचारों से परिपूर्ण हूँ और कठिनाई ही के साथ अपने को सीधे और संकुचित मार्ग की ओर ले जा सकता हूँ। किन्तु नाक चढ़ानेवाले और मुसकराने वाले अच्छा करें यदि वे जान लें कि विचार की शक्ति कितनी होती है और साथ ही इस विशेष विचार की उन्नति का अध्ययन करें; क्योंकि संसार के विचारकों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हो ही चुका है और भारतीय जनता के ऊपर इसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है।

असहयोग और अहिंसा, इस आन्दोलन के दो

आवश्यक अङ्ग हैं। असहयोग का अभिप्राय काफ़ी सादा है और भोंड़ी से भोंड़ी अक्ल वाले के लिये भी स्पष्ट है; किन्तु इसपर भी, बंग भंग के दिनों को कुछ हद तक छोड़कर शायद ही हममें से किसी ने इसे उस समय तक समझा था जब तक कि महात्मा जी ने अपनी रण भेरी नहीं बजायी थी। पाप केवल इसीलिये फलता फूलता है क्योंकि हम इसे सह लेते हैं या इसकी सहायता करते हैं; कुत्सित से कुत्सित स्वच्छन्द और अन्यायी सरकार भी केवल इसीलिये स्थित रह सकती है क्योंकि वे लोग जिनके ऊपर यह शासन करती है स्वयं ही इसकी आज्ञा मानते हैं। इंगलैंड भारत को दासता की बेड़ियों में जकड़े हुए है क्योंकि भारतवासी अंग्रेजों के साथ सहयोग करते हैं और इस प्रकार ब्रिटिश राज्य को दृढ़ बनाते हैं। सहयोग से हाथ खींच लो और विदेशी शासन का गढ़ धूल में मिल जाय। यह परिणाम स्वाभाविक ही है और इसके लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

किन्तु इस तर्क और निश्चित परिणाम की उपस्थिति में भी, हम में से बहुतेरे इस स्पष्ट क्रम को अङ्गीकार करने में असमर्थ हैं। ब्रिटिश राज्य के धूर्त व्यवहार ने

हमें दुर्बल और नपुंसक बना दिया है और हम सबमें कायरता ठूंस ठूंस कर भर दी है। हम साहस की शक्ति खो बैठे हैं और जोखिम उठाने का विचार भी नहीं कर सकते चाहे पुरस्कार में भारतीय स्वातंत्र्य सी शानदार भेंट ही क्यों न मिलती हो। असहयोग का सिद्धांत जड़ पकड़ गया है और जनता के हृदयों में प्रवेश कर गया है किन्तु अब इस सिद्धांत को कार्यरूप में प्रकट करने के लिये आवश्यक दृढ़ साहस की कमी है। बहुतों के लिये यह केवल आर्थिक प्रश्न है। किन्तु हम उन लोगों के लिये क्या कहें जो इस लालच के बिना भी अपना समय, शक्ति और धन, अंग्रेज़ अफ़सरों की प्रतिष्ठा और ख़ुशामद करने में व्यय करते हैं। हम लोग इतने नीचे गिर गये हैं कि हममें से बुद्धिमान और शिक्षित पुरुष भी स्वयं ही अपना अपमान करवाने के लिये सहायता देने में लज्जित नहीं होते। अंग्रेज़ अफ़सरों के विरुद्ध मैं कोई शिकायत नहीं करता। वे वीर पुरुष हैं और योग्यता के साथ अपनी मातृभूमि की सेवा करते हैं। मैं चाहता हूँ कि हमारे लोग भी उनके समान ही वीर बनें और अपने देश के सम्मान और प्रतिष्ठा को उतना ही विशेष ध्यान में रखें।

कायरता को निर्मूल करो

मुझे अहिंसा के सामर्थ्य पर दृढ विश्वास है। किन्तु अहिंसा का कायरता से कोई सम्बन्ध नहीं है। भय और कायरता सब से बड़े पाप हैं और दुर्भाग्यवश हमारे देश में उनका भरमार है। क्रोध और घृणा असलियत में हमारे भय और नपुंसकता से ही उत्पन्न होते हैं। यदि हम इस भय और कायरता से पीछा छुड़ा पाते तो घृणा का नाम भी न रहता और हमारे अग्रसर पथ की बाधाएँ मिट जातीं। इसलिये हमें चाहिए कि कायरता को निर्मूल करके सदा के लिये धता बता दें। सब से पहिले आवश्यक यह है कि कायरता, अहिंसा का स्वांग न भरने पावे जैसा कि दुर्भाग्यवश बहुधा देखा जाता है। एक विद्वान फ्रांसीसी कहता है, "दुनियां भर की बुराई भी नपुंसक भलाई से श्रेयस्कर है।" हम लोगों में आवश्यकता से अधिक सरलता, सुकुमारता और नपुंसक भलाई आ गयी हैं। प्रत्येक पुरुष लगभग यही परिणाम निकालता है कि हम लोग छूंछे और अकर्मण्य होने के कारण ही भले हैं—यदि इसे भला होना कहा जा सके—क्योंकि हम में बुराई करने का साहस ही नहीं है। यद्यपि हम प्रायः पाप का ध्यान करते

हैं और उसे करना भी चाहते हैं किन्तु वैसा करने का साहस नहीं होता। यह घृणित दशा है इसे कपटी, नपुंसक और पाखण्डी भी कहा जा सकता है। ऐसा ईमानदार पापी पुरुष जो कि जानबूझ कर अपने बल के भरोसे पाप करता है कहीं अच्छा है; जिस समय वह अपना सुधार करेगा उस समय वह भलाई के हित के लिये एक शक्तिशाली स्तम्भ हो सकेगा क्योंकि उसकी नींव दृढ़ है। किन्तु छूंछे और पाखंडी भले लोग किसी भी काम में नहीं आ सकते, उनमें बल नहीं है और उनकी नींव खिसकती हुई बालू पर रखी गयी है। अतः अहिंसात्मक आन्दोलन में कायरों के लिये स्थान नहीं है।

मैं अहिंसा के इस प्रश्न पर ज़ोर दे रहा हूँ क्योंकि अच्छा हो यदि इसके विषय में हमें कोई सन्देह न रहे। कुछ वर्ष स्थगित रहने के बाद हिंसात्मक क्रांतिकारी-आन्दोलन की पुनर्जागृति होने लगी है। मैं स्वतंत्रता के उपासकों की उस अधीरता और अभिलाषा की सराहना कर सकता हूँ जो बहुतेरे युवकों को हिंसात्मक कार्य में प्रवृत्त करती है। मैं उस निर्भीक साहस की प्रशंसा कर सकता हूँ जो परिणाम की चिन्ता भी नहीं करता।

किन्तु मैं नहीं समझ सकता कि कुछ लोग यह कैसे अनुमान करते हैं कि अव्यवस्थित हिंसा स्वतंत्रता को हमारे निकट ला सकती है। स्वतंत्रता हमारा अधिकार है और पुराने रिवाज और राष्ट्रों के साधारण नियम के अनुसार इसको प्राप्त करने के लिये हिंसा को भी हम प्रयोग में ला सकते हैं। किन्तु स्वतंत्रता भी संदिग्ध और कलंकित वस्तु होगी यदि उसे प्राप्त करने के लिये हमें गन्दे साधनों से काम लेना पड़े। मैं प्रार्थना करता हूँ कि हमारा महान आन्दोलन इस कलक से बचा रहे। किन्हीं किन्हीं परिस्थितियों में हिंसा को उचित माना जा सकता है किन्तु आवश्यक यह है कि यह उजागर, निष्कपट और आमने सामने हो। किन्तु किसी भी परिस्थिति में गुप्त हत्यायें और हत्यारे की छुरी द्वारा अन्धेरे में बध होना, समुचित नहीं कहे जा सकते। किसी भी राष्ट्र ने इन ढंगों से लाभ नहीं उठाया है; वे एक महान कार्य को गंदा करते हैं और सांसारिक सहानुभूति को फेर देते हैं। इसलिये किसी भी प्रकार हम बम और छुरी का प्रयोग नहीं कर सकते और जो लोग बिना सोचे विचारे इन ढंगों को ग्रहण कर लेते हैं वे अपने मनोनीत कार्य को हानि पहुंचाते हैं। खुल्लमखुल्ला और संगठित हिंसात्मक लड़ाई का हम ध्यान

भी नहीं कर सकते। असलियत यह है कि इस बारे में हमारी पसंदगी के लिये स्थान ही नहीं है, हम चाहें या न चाहें, हमें अहिंसात्मक असहयोग की ओर आना ही पड़ेगा।

आज दिन बोलशेविज़्म और फ़ासिज़्म पश्चिम के तौर तरीक़े हैं। असलियत में वे एक से ही हैं और पाशवी हिंसा और असहनशीलता के दो रूपों को प्रदर्शित करते है। एक ओर लेनिन और मुसोलिनी और दूसरी ओर गांधी जी के बीच हमें पसन्द करना है। इस बारे में भी क्या किसी को सन्देह हो सकता है कि आज भारत की आत्मा का प्रतिनिधि इनमें से कौन है।

भारत ने अपनी पसन्दगी तीन साल पहले ही कर ली थी। उसने अहिंसा और कष्ट सहन तथा सीधी लड़ाई और शांतिमय क्रांति को चुना था। और अब वह उससे पीछे हटना नहीं चाहता। यह हो सकता है कि समय समय पर कुछ सुस्ती या कुछ परिवर्तन दिखाई पड़े। हमें पैबन्द लगाने पड़ें और नैराश्य के क्षणों का अनुभव हो। किन्तु जो दृश्य एक बार देख लिया है वह नहीं भुलाया जा सकता और एक महान कार्य्य के लिये कष्ट सहन करने के प्रलोभन का त्याग नहीं किया जा सकता।

हमारे सामने बार बार अवसर आवेगा और जब कि विद्वान लोग केवल तर्क में ही मग्न रहेंगे, हमारे बीर पुरुष परिणाम की चिन्ता न करते हुए और इस विचार पर कि इस महान् कार्य्य का बोड़ा उन्हीं को दिया गया है प्रसन्नता से भरे हुए, मैदान में बढ़ते जावेंगे। क़ानूनी आज्ञा भङ्ग की तैयारी के लिये देश में बहुधा विद्वत्तापूर्ण वाद-विवाद हुआ करते हैं। क़ौम को संगठित करने और सहानुभूतिपूर्ण वायुमण्डल बनाने के लिये बहुत कुछ किया जा सकता है। किन्तु व्याख्यानों और भ्रमणों द्वारा लोगों के अन्दर साहस और कष्ट सहन करने की इच्छा का प्रवेश नहीं किया जा सकता। केवल वैयक्तिक आदर्श ही ऐसा कर सकता है। यह भी सम्भव है कि एक छोटी सी घटना सारे भारत में बिजली दौड़ा दे और हमें क़ानूनी आज्ञा भंग की शक्तिशाली लड़ाई आरम्भ करने के लिये बाध्य करे। उस समय के आने के पहले, हो सकता है कि कई ऐसे अवसर आवें जब कि हम अपनी शक्ति को परख सकें और अपने तन्तु को दृढ़ बना सकें। हमें चाहिये कि उनसे लाभ उठावें और सामने की लड़ाई और शान्तिमय क्रांति के आदर्श और कार्यक्रम को जनता के सामने सदैव बनाये रखें। संयोग और अव-

सर्गों के लिये हमें विशेष चिन्ता न करनी चाहिये। वे हमारे सामने अवश्य आवेंगे। यह देखना हमारा काम है कि जब वे आवें तो हम कमर कस कर प्रस्तुत मिलें।

साम्प्रदायिक झगड़ा

किन्तु यदि हम समझदारी के साथ साम्प्रदायिक प्रश्न को हल नहीं कर पाते और झगड़ा और धर्मान्धता के भूत को नहीं भगा सकते, तो केवल हमारे कष्ट सहन करने से कोई बड़ा लाभ न होगा। कुछ खोपड़ियों का फूट जाना बड़ी बात नहीं है किन्तु इसका कारण एक गुरुतर समस्या है। यह बड़े अचम्भे का बात है कि छोटी छोटी बातों, लड़कपन के झूठे विश्वास और मूढ़ पक्ष-पातों के लिये, लोग जोखिम उठाते हैं और क्रोध सागर में पड़कर विवेक शक्ति खो देते हैं। जीवन मरण के प्रश्न और आवश्यकीय तत्व की बातें हमारी दृष्टि से छूट जाती हैं। अज्ञान और धर्मान्धता सब प्रकार की चैतन्य विचार शक्ति का अन्त कर देतीं हैं। तर्क करना या समझाना प्रायः निष्फल होता है। धर्म का पतन होता है और उसके नाम पर बड़ी बड़ी लज्जाजनक कार्यवाहियाँ की जाती हैं। सच तो यह है कि धर्म बहुत से पापों का बहाना हो गया है। इसमें

पवित्रता तो नहीं के बराबर शेष रह गयी है। समय और कुसमय सभी में धर्म का सहारा लिया जाता है और स्वाभाविक रूप से किसी भी प्रकार के समझौते के लिये स्थान नहीं रहता। यह भास होता है कि जैसे हम लोग उस परिस्थिति की ओर बह गये हों जो कि यूरोप में अन्धकार काल में प्रचलित थी जब कि आत्मबुद्धि से सोचना पाप समझा जाता था। मैं समझता हूँ कि उन लोगों का, जो कि धर्म को एक अच्छी और पवित्र वस्तु मानने के इच्छुक हैं और मानवी उन्नति के लिये विवेकी विचार के प्रयोग को आवश्यक समझते हैं, यह कर्तव्य है कि वे अपनी पूरी शक्ति भर धर्मान्धता और अन्ध विश्वास का विरोध करें।

साम्प्रदायिक हित के संरक्षण के बारे में समाचार पत्रों और व्याख्यानों में बहुत कुछ कहा जा रहा है। सुना गया है कि इस उद्देश्य के लिये कुछ संस्थाएँ सङ्गठित हो रही हैं किन्तु जहां तक मैं समझ सकता हूँ, यह गरजने वाले बादल बरसते नहीं। प्रभावशाली लड़ाई लड़ने के लिये हममें बहुत थोड़ा साहस शेष रह गया है। दुर्बलता के कारण हमें क्रोध आता है और हम डींग हांक कर अपने भय को ढकना चाहते हैं अपने सच्चे शत्रु के

विरुद्ध खड़े होने की शक्ति न रहने के कारण, हम अपने भाइयों और पड़ोसियों पर हमला करते हैं। दिल्ली कांग्रेस ने शाँति स्थापित करने के लिये बहुत कुछ किया है हमें चाहिए कि उन सारी कार्यवाहियों का अन्त करने की चेष्टा करें जो किसी दूसरे सम्प्रदाय के विरुद्ध संचालित की जाती हैं और मुख्य प्रश्न पर एकाग्र चित्त होकर डटे रहें। आपस की भिड़न्तों के लिये हमारे पास समय नहीं है।

नमक-कर और केनिया-निर्णय

मैं नमक-कर और केनिया निर्णय की स्वीकृति के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ। उनके बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। वे हमारे इस निश्चय को और भी बलवान बनाते हैं कि स्वतंत्रता ही केवल उपाय है और असहयोग ही केवल साधन है। श्रीयुत शास्त्री जी ने भी जिन्हें कि साम्राज्य-सिद्धान्तमें अगाध विश्वास है, अपनी स्थिति पर फिर से विचार किया है और ऐसे क्रम बतलाये हैं जो कि स्पष्टतया असहयोग से मिलते जुलते हैं। इसी प्रकार दूसरों के मस्तिष्कों में भी बुद्धि का प्रकाश होगा। नागपुर के बारे में भी मैं बहुत कुछ नहीं कहना चाहता हूँ और न उस वीर युद्ध के बारे में ही जो कि वहाँ छिड़ा

था। हमारे प्रांत ने इसमें योग्य भाग लिया था और परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दोनों ने राष्ट्रीय झंडे के सम्मान को स्थापित करने के लिये कन्धा से कन्धा सटा कर काम किया था। आज दिन सब की आंखें उत्तर की ओर लगी हुई हैं जहां कि साहसी अकाली, सरकार की शक्ति को चुनौती दे रहे हैं। उन्होंने स्वतन्त्रता की सेना में सेना-मुख का गौरवपूर्ण पद लिया है और वे पूर्णतया इसके योग्य हैं। मुझे निश्चय है कि आप लोगों के हृदय पूरी सहानुभूति और सराहना के साथ उनके लिये उमड़ते हैं और जब समय आवेगा—जो कि आवेगा अवश्य-हम लोग उनकी सहायता करने में कुछ भी उठा न रखेंगे।

मुझे जो कुछ कहना था वह कह ही चुका हूं। मैं केवल आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं कि युद्धस्थल के पीछे लगातार तैयारियों के बिना कोई भी लड़ाई नहीं चल सकती। यह काम आनन्द रहित है किन्तु साथ ही अत्यन्त आवश्यक भी है। हमारे परिश्रम और योग्यता की सच्ची परख रचनात्मक कार्यक्रम में प्राप्त सफलता ही है। अतः हमें अपनी कांग्रेस कमेटियों को मजबूत करना चाहिए और सब से विशेषतया खद्दर के सन्देश को

प्रत्येक घर तक पहुंचाना चाहिये। जब महात्मा जी जेल गये थे तो यही उनका अन्तिम शब्द था। यदि हम इसे भूल जावेंगे तो स्वयं ही जोखिम उठावेंगे। दिल्ली कांग्रेस ने भिन्न भिन्न प्रकार की कार्यवाहियां सुझायीं हैं। हम में से प्रत्येक, चाहे उसके विचार कुछ ही क्यों न हों उनमें कुछ न कुछ अपने अनुकूल पा सकता है और काम टालने के लिये किसी को भी बहाना नहीं मिल सकता।

मौलाना हसरतमोहानी

भाषण समाप्त करने के पहले मैं अपने इस पद के एक ऐसे पूर्वाधिकारी की चर्चा करना चाहता हूँ कि जिसकी जीवनी प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहन करने और देश के लिये दुःख झेलने का एक लम्बा चिट्ठा है। मौलाना हसरत मोहानी ने ब्रिटिश सरकार से लड़ाई ली और उस समय के बहुत पहले जब कि असहयोग ने जेल जाना एक साधारण बात बना दिया था आप जेल गये। वे स्वतंत्रता के सैनिकों में सब से विशेष वीर और दृढ़ हैं, उन्हें कोई भी अपने पथ से विचलित नहीं कर सकता और वे अपने साथियों के सामने भी झुकने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं फिर विदेशी सरकार का तो कहना ही क्या। जब कि

वे जेल में एक लम्बी क़ैद काट रहे थे, उन्हें जेल जुर्म के लिये २॥ साल की सज़ा और दी गयी। सरकार सम्भवतः समझती है कि वह इन दहलानेवाली और प्रति हिंसा शील सज़ाओं द्वारा उनके उत्साह को तोड़ सकती है या उन्हें डरा सकती है। इस विषय में उसकी जानकारी बहुत कम है। मुझे निश्चय है कि अपने प्रान्त के इस उज्ज्वल रत्न के प्रति आप लोग हार्दिक सहानुभूति और बधाइयाँ प्रदर्शित करेंगे।

मुझे जो कहना था वह कह चुका। सच्चे हृदय से मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं पूर्ण आशा-वादी हूँ। निराशावादियों और डरने वालों से मेरा बहुत कम पटता है। मेरी धारणा है कि हम बहुत शीघ्र ही राजनैतिक स्वातंत्र्य प्राप्त करेंगे, यदि केवल अपनी शक्ति के बल पर नहीं तो यूरोप और इङ्गलैंड की दुर्बलता के द्वारा—क्योंकि यूरुप की परिस्थिति बहुत डावांडोल है और प्रस्तुत प्रदर्शिनी शक्ति के रहते हुए भी इङ्गलैण्ड महाद्वीप के पतन से प्रभावित होने से बच नहीं सकता। युद्ध और युद्ध की उड़ती हुई खबरें एक दूसरे का त्वरित अनुसरण करती हैं। वे बने ही रहेंगे जब तक कि कड़ुआ अनुभव उन्हें अहिंसा का पाठ नहीं सिखा देगा।

अतः भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता निश्चित है। किन्तु कभी कभी मुझे भय होता है कि कहीं ऐसा न हो कि जब यह हमारे पास आवे तो हमें सच्ची शक्ति और महान गुणों से वंचित पावें ; और शेष संसार के लिये एक उज्ज्वल आदर्श बनने के स्थान पर भारत, पश्चिमीय देशों का एक भोंडा और निकम्मा प्रतिरूप बन जावे। हमको अभी से दूरदर्शी बनना चाहिए इस परिस्थिति को बचाना चाहिए और अपने महान नेता गांधी जी के योग्य जिन्हें ईश्वर ने हमें प्रदान किया है, एक महान और शक्तिशाली भारत की रचना करनी चाहिए।

साम्राज्यवाद विरोधिनी अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस
ब्रूसेल्स

—:(❁):—

पं० जवाहरलाल नेहरु ने भारतीय कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्यवाद विरोधिनी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस के सामने जिसका प्रथम अधिवेशन ब्रूसेल्स (वेलजियम) में फरवरी सन् १९२७ में हुआ था, जो भाषण दिया था उसका सार निम्न लिखित है।

"भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उद्गारपूर्ण और हार्दिक बधाइयां आप तक पहुंचाने का आनन्दमय और गौरव-पूर्ण सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। भारतीय कांग्रेस ने साम्राज्यवाद से लड़ने के लिये की जाने वाली इस सम्मिलित अन्तर्राष्ट्रीय चेष्टा के साथ हमारे आन्दोलन का सम्बन्ध जोड़ने के लिये मुझे नियुक्त किया है। हम लोगों ने, भारत में साम्राज्यवाद की पूरी शक्ति अनुभव

की है। हम लोग यथार्थ रूपेण जानते हैं कि इसका अर्थ क्या होता है और स्वाभाविकतया साम्राज्यवाद का विरोध करने वाले प्रत्येक आन्दोलन में हमें अभिरुचि रहती है। यथार्थ में यदि आप कोई ऐसा उपयुक्त दृष्टांत चाहते हों कि जो आपको साम्राज्यवाद की प्रकृति और परिणाम समझने में सहायता दे, तो मेरी समझ में भारत से बढ़कर कहीं न मिल सकेगा। जैसा कि हमारे सभापति महोदय कह चुके हैं, भारत की आन्तरिक दशा देखकर यह समझा जा सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद किन किन तरीक़ों से मज़दूरों को दुहता और दमन करता है। यदि आप साम्राज्यवाद के किसी भी रूप का अध्ययन करना चाहते हों तो उसका आश्चर्यपूर्ण दृष्टांत भारत में ही पावेंगे। चीन, मिश्र या किसी भी सुदूर देश में ही आप क्यों न रहते हों यह निश्चित है कि आप का हित हमारे हित के साथ बंधा है और भारतीय समस्या भी आपके लिये एक दिलचस्प और गुरुतर प्रश्न है।

भारत में गोराशाही की काली करतूतें

"मैं आपके सामने भारत की लूट खसोट का सारा इतिहास उपस्थित न कर सकूंगा कि किस प्रकार भारत

में अत्याचार, दमन और लूट का बाज़ार गरम रहता है। यह एक लम्बी और दुःखभरी कहानी है। अधिक से अधिक मैं आपके सामने उन दो एक प्रश्नों को रख सकूंगा कि जिनके ऊपर आप लोगों को इस अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में विचार करना है। भिन्न २ उपद्रवों हत्याकाँड़ों और आकस्मिक बधों की चर्चा आप सुन चुके हैं और आपमें से बहुत से साहिबों ने अमृतसर की घटना के बारे में भी सुना होगा। इस घटना ने जितनी कोहराम और जागृति उत्पन्न की उतनी पहले कभी न हुई थी किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि अंग्रेज़ों के पधारने के समय से लेकर आज तक के भारत के इतिहास में यह कोई नवीन या भद्दी से भद्दी कहानी है। आप लोग जानते ही हैं कि उन्होंने एक प्रान्त को दूसरे प्रान्त से लड़ाकर भारत पर धीरे धीरे अधिकार जमाया और एक छत्र शासक बन बैठे। अपने सारे शासन काल में उन्होंने भेदभाव डाल कर शासन करने की नीति का प्रयोग किया है। मुझे यह कहते दुःख होता है कि वे अब भी इस नीति का अनुसरण करते हैं। उनके शासन का पूर्व इतिहास संसार के सारे इतिहास में सब से बड़ी पाशवी और निर्लज्ज मिसाल है।

अंग्रेज़ इतिहास लेखक भी जो कि पक्षपात रहित कदापि नहीं हैं यह स्वीकार करते हैं कि अंग्रेज़ी राज्य का पूर्व इतिहास लूट खसोट की लड़ाई का समय था। वह समय था जब कि डाकू लोग शिकार की खोज में चारों ओर फिरा करते थे और बिला किसी रोक थाम के सारे देश में लूट खसोट और डांके डालते थे। सम्भवतः आप उस घटना से भी परिचित होंगे जिसे सिपाही-ग़दर कहते हैं और जो अब से ७० साल पहले हुआ था। इसका नाम यही पड़ गया है किन्तु यदि दैव की मर्ज़ी कुछ और ही हुई होती और बाग़ी कहे जाने वाले सैनिकों के गलों में विजय श्री ने बरमाल पहनाई होती तो आज स्वर्ण लिपि में इसका नाम स्वतंत्रता का भारतीय युद्ध अंकित किया जाता। यह कहने से हमारा अभिप्राय यह है कि जो कुछ करतूतें सिपाही ग़दर में की गयी थीं उनके मुक़ाबिले जलियाँवालाबाग़ बाल बराबर भी नहीं है। उस समय से इस प्रकार की हरकतें लगातार होती रही हैं। आज दिन भी आकस्मिक गोली बरसा देना कोई असामयिक बात नहीं है। हमारे असंख्य साथी और मित्र बिना किसी इलज़ाम या मुकद्दमे के जेलों में ठूंस दिये गये हैं। भारत में हमारे बहुत से साथी ऐसे

हैं कि जिन्होंने या तो जेल को ही अपना घर बना लिया है या वे देश निर्वासित हैं और अपनी मातृभूमि को वापिस नहीं आ सकते। वास्तविक यह बातें कुछ हलचल पैदा करती हैं, किन्तु भारत में अंग्रेज़ों के हाथों की गयीं हानियां और दोहन उन गोलियों की बौछारों और फांसियों से कहीं विशेष कठोर हैं, जिनके कारण समय समय पर झगड़े बखेड़े उठ खड़े होते हैं; दस्तकारों, मज़दूरों और किसानों को दुहने के क्रम बद्ध ढंग ने ही भारत को आज इस दशा को पहुंचा दिया है। हम केवल प्राचीनकाल के ही नहीं किन्तु आधुनिक समय के इतिहास में भी भारत के धनाढ्य होने की बात पढ़ते हैं। भारत की अगाध धनराशि संसार के दूर-दूर कोनों से भिन्न-भिन्न क़ौमों को अपनी ओर आकृष्ट करती थी। किन्तु यदि आज कोई भारत जाता है तो ग़रीबी और तंगी उसकी ओर मुंह बाये ताकती है। वहां वह बहु-संख्यक आबादी ऐसी पाता है जो यह नहीं जानती कि दूसरे वक़्त का खाना कहां और कैसे मिलेगा और बहुधा जिन्हें पेट भर खाना भी नहीं मिलता। हर जगह यही भूखे लोग या अधपेटे लोग दिखलाई पड़ते हैं। यही आज का भारत है। भारत का माली अधःपतन बड़े भयानक

रूप में हुआ है और यदि इस क्रम को रोकने के लिये निश्चित साधनों का प्रयोग नहीं किया गया तो एक राष्ट्र की हैसियत से भारत की हस्ती सदा के लिये मिट जावेगी। आपके दिल पर इस बात को सच्ची जमाने के लिये, गणना, वाक़यात और संख्याओं की कमी नहीं है। आप शायद जानते होंगे कि किस प्रकार सालों पहले (आगमन पश्चात ही) अंग्रेज़ों ने हमारे कलाकौशल को मेटकर अपना उल्लू सीधा करने के लिये निर्दयता-पूर्ण ढंगों का प्रयोग किया था। हमारा दमन अबसे कम कड़ा न था किन्तु खुल्लमखुल्ला था, सारे भारतीय कला-कौशल का निर्दयतापूर्ण और स्पष्ट रूप में विनाश और दोहन किया जाता था। यह सब काफ़ी बुरा था किन्तु धीरे-धीरे बुराई और भी बढ़ी, हमारे प्राचीन शिक्षा-क्रम का गला घोंट दिया गया और हमारे हथियार छीन लिये गये। भारत के लोगों का उत्साह हज़ारों तरीक़ों से ठंडा किया गया और उनकी उद्योगी और रचनात्मक कार्य करने की प्रत्येक शक्ति को नष्ट कर देने की चेष्टा की गयी। हमारे बीच भेद डालना ही भारत में प्रत्येक अँग्रेज़ की समझी बूझी नीति थी। हमसे हथियार छीन लेने के बाद वे कहते हैं कि हम लोग अपने देश की रक्षा करने

के योग्य नहीं हैं। हमारे शिक्षा क्रम का गला घोंटकर और उसके स्थान में एक बहुत ही अधूरी वस्तु का समावेश करके कि जो हमें हमारे ही देश के प्रति घृणा और इङ्गलैंड के प्रति सम्मान सिखलाती है वे हम से कहते हैं कि स्वतंत्रराष्ट्र बनने के लिये हममें काफ़ी सभ्यता नहीं है।

"ब्रिटिश समाचार पत्रों" में यह कहा जा रहा है कि भारतवासी तो आपुस में ही लड़ते हैं। इस संबंध में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उनका यह कहना बहुत बड़ी अतिशयोक्ति है और यह भी अंग्रेज़ी सरकार की नीति है कि इस प्रकार के झगड़े करवाये जावें, जहाँ झगड़े की सम्भावना हो वहाँ उन्हें बढ़ावा दिया जाय और उन्हें जीवित बनाये रखने के लिये कुछ उठा न रखा जाय। यह ब्रिटेन की नीति है, वह माने या न माने। भारत की दशा आज क्या है, सो सुनिये। आप लोग यहां दोहन की चर्चा कर रहे हैं, हम लोग इसे पूरे रूप में अनुभव करते हैं। इकहरा ही दोहन नहीं वरन् दुहरा और तिहरा। भारत का एक भाग ऐसा है जिसे 'देशी रियासतें' कहते हैं जहां ब्रिटेन की छत्र छाया में जागीरदारी (Fendal) का क्रम प्रचलित है। अगरेज़ बहुधा हमें और दूसरे देशों

को इन रियासतों की ओर दिखलाकर कहा करते हैं, भारत के इन भागों की ओर देखो, इन्हें एक प्रकार का स्वराज्य प्राप्त है; भारत के दूसरे भाग इनसे कहीं ज़्यादा उन्नत हैं, आदि आदि; किन्तु वे एक बात कहना भूल जाते हैं। वे हमें यह बतलाना भूल जाते हैं कि ये रियासतें भी तो उनकी रखवाली में हैं और स्वयं उन्होंने तो उनमें उन्नति का द्वार बन्द कर रखा है। ब्रिटेन ने ही पहिले उन्हें ग़ुलाम बनाया है और अब वह ही उन्हें बढ़ने नहीं देता। बड़े ज़मींदारों के मसले पर ही दृष्टि डालिये। जागीरदार ढंग का यह क्रम भी आप भारत के एक बहुत बड़े भाग में पाते हैं; अँगरेज़ों ने ही इसकी उत्पत्ति की है और वे ही इसे जीवित रखे हैं। जब तक अंगरेज़ सरकार न चाहे तब तक इस क्रम में किसी भी प्रकार का परिवर्तन करना नितान्त कठिन है। भारतीय ब्रिटिश सरकार की नीति में हमें देशी राजाओं और बड़े ताल्लुकेदारों और ज़मींदारों को भी उनके ही सहायक गिनना चाहिए, क्योंकि स्वतंत्र भारत में वे किसानों को दुह न सकेंगे। इसके अलावा अङ्गरेज़ और भारतीय पूंजीपतियों के अनिष्टकारी समझौते भी बहुधा हमारे सामने आते हैं।

ब्रिटिश सांसारिक राजनीति

"गत इतिहास और पिछली चंद सालों के हालचाल यह प्रमाणित कर देंगे कि ब्रिटिश सांसारिक राजनीति उनके भारतीय अधिकार द्वारा बहुत हद तक प्रभावित होती है। एक क्षण के लिये भी इस विषय में किसे सन्देह हो सकता है कि यदि आज भारत ब्रिटेन के हाथ से निकल जावे तो उसकी क्या दशा होगी। उस परि-स्थिति में ब्रिटिश सांसारिक साम्राज्य रह ही न जायगा। जब भारत स्वतंत्र हो जावेगा तो क्या होगा? मैं नहीं कह सकता किन्तु यह निश्चित है कि ब्रिटिश सांसारिक साम्राज्य नाम की कोई वस्तु शेष न रह जावेगी। पूंजीवादी और साम्राज्यवादी हित की दृष्टि से अपने भारतीय अधिकार स्वरक्षित रखने के लिये अंग्रेज़ लोग सब कुछ करने के लिये प्रस्तुत हैं। उनकी सारी विदेशी नीति इसी उद्देश्य द्वारा प्रभावित रहती है, इसलिये वे चाहते हैं कि भारत में एक बहुत दृढ़ साम्रा-ज्य निर्माण करें। फल यह है कि भारत ने कष्ट झेले हैं और अब भी झेल रहा है। किन्तु यही तो सब कुछ नहीं है। भारत के कारण और देश भी मुसीबत में पड़े हैं और अब भी पड़ रहे हैं। आप लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा

भारत में होने वाली कार्यवाहियों का अन्तिम दृष्टांत तो सुना ही होगा—अर्थात् भारतीय फ़ौज़ों का चीन को भेजना—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तीव्र विरोध की उपस्थिति में भी वे भेजी गयीं। मैं इस घटना का आपको स्मरण दिलाना चाहता हूँ—यद्यपि मुझे कहते लज्जा आती है तो भी कहना ही चाहिए—कि भारत की फ़ौज़ें दूसरी क़ौमों को दमन करने के लिये बहुधा प्रयोग में लायी गयीं हैं। मैं उन देशों के नाम पढ़कर आपको सुनाता हूँ कि जिनमें अंग्रेज़ों ने अपने काम के लिये भारत की सेनाओं को भेजा। सन् १८४० में वे पहलीबार चीन गयीं और इस वर्ष १९२७ में भी वे वहीं जा रही हैं और इस बीच में बिना क्रम के उनका प्रयोग तीन बार किया गया। वे मिश्र, एबीसीनिया, फ़ारिस की खाड़ी, मैसोपोटामिया, अरब, जार्जिया, तिब्बत, अफ़गानिस्तान और ब्रह्मा भी पहुँचीं। यह एक दहलाने वाली तादाद है।

सांसारिक समस्या।

"मैं यह समझता हूँ कि भारतीय समस्या, केवल एक राष्ट्रीय समस्या नहीं है किन्तु बहुत से देशों का भाग्य इससे जुड़ा हुआ है और आधुनिक समय के सबसे बड़े और सब से विशेष प्रभावशाली साम्राज्यवाद से

घनिष्ठतया संबंधित रहने के कारण सारे संसार के लाभ से संबंध रखती है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की परिस्थति भारत के लिये वांछनीय नहीं है। हम अब और ज़्यादा इसकी अवहेलना नहीं कर सकते। केवल इसी लिये नहीं कि स्वतंत्रता श्लाघ्य है और पराधीनता दूषित है। वरन् इसलिये कि हमारे लिये और हमारे देश के लिये यह जीवन और मरण का प्रश्न है। आप लोग भी, जो कि यहां संसार के भिन्न भिन्न देशों से आये हुए हैं, इन ख़ौफनाक जंज़ीरों की अवहेलना न कर सकेंगे जो कि आप लोगों की स्वतंत्रता प्राप्ति में भी दुस्तर बाधा रूप हैं। चीनी राष्ट्रीय दल वालों के प्रशंसनीय आदर्श ने हमें आशाओं से भर दिया है और जितना शीघ्र बन सके हम उनके पद-चिन्हों का अनुसरण करना चाहते हैं। हम अपने देश के लिये पूर्णतम स्वतंत्रता चाहते हैं। स्वाभाविकतया केवल आन्तरिक नहीं किन्तु अपने पड़ोसियों और दूसरे देशों के साथ अपनी इच्छानुसार सम्बन्ध जोड़ने की भी। हमारा विश्वास है कि यह अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस इस प्रकार के संयुक्त कार्य की सम्भावना सुलभ बनाती है और इसलिये हम इसको बधाई देते हैं और इसका स्वागत करते हैं।"

मद्रास कांग्रेस

युद्ध-भय

पं० जवाहरलाल नेहरू ने ४२ वीं अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा के समक्ष कि जिसकी बैठक मद्रास में दिसम्बर सन १९२७ में हुई थी युद्ध-भय का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए जो भाषण दिया था उसका सार निम्न लिखित है:—

पं० जवाहर लाल नेहरू ने निम्न लिखित प्रस्ताव उपस्थित किया।

"इस कांग्रेस ने उन असाधारण और व्यापक युद्ध की तैय्यारियों पर जिन्हें ब्रिटिश सरकार, भारत में, उत्तरी समुद्रों में और ख़ास कर भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में कर रही है, बड़ी गम्भीर चिन्ता से दृष्टि-पात किया है। युद्ध के लिये ये तैय्यारियां केवल इसी लिये नहीं की जारहीं हैं कि इनसे भारत में, स्वातंत्र्य-प्राप्ति के समस्त उद्योगों को दबा देने के लिये ब्रिटिश साम्राज्य-वाद का पञ्जा मज़बूत किया जाय किन्तु इनके फल स्वरूप एक ऐसा भयानक युद्ध उठ खड़ा होगा जिसमें कि भारत

को फिर विदेशी साम्राज्यवादियों के हाथ की कठपुतली बनाने का प्रयत्न किया जायगा।

"यह कांग्रेस घोषणा करती है कि भारत के लोगों का उनके पड़ोसियों के साथ कोई झगड़ा नहीं है, और वे उनके साथ शान्ति से रहना चाहते हैं। इसके साथ ही कांग्रेस का दावा है कि भारत के लोगों को इस बात के निर्णय करने का अधिकार है कि वे किसी लड़ाई में हिस्सा लें या नहीं।

"कांग्रेस चाहती है कि युद्ध की इन तैयारियों को बन्दकर दिया जाय, और आगे वह घोषणा करती है कि ब्रिटिश सरकार का किसी भी युद्ध सम्बन्धी साहसिक कार्य्य में संलग्न हो जाना, और उसमें भारत के दोहन करने का उद्योग, करना उसके साम्राज्य-वादी उद्देश्यों के विस्तार के लिये होगा। भारत की जनता का यह कर्तव्य होगा कि वह इस प्रकार के किसी भी युद्ध में भाग लेने, अथवा किसी भी दशा में सरकार के साथ सहयोग करने से इन्कार करदे।"

कांग्रेस के सम्मुख इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने कहा :—

"सभापति महोदय, और भाइयो, भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का यह अधिवेशन अनेक उपयोगी

प्रस्तावों का विचार करके, उन्हें स्वीकार करेगा। परंतु मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि उन प्रस्तावों में से कोई भी इतना अधिक उपयोगी नहीं होगा, जितना कि यह प्रस्ताव, जो अभी मैंने आप के सामने रक्खा है। यह प्रस्ताव उपयोगी है इसलिये कि, आज-कल कोई भी युद्ध एक अन्तराष्ट्रीय विपत्ति है। इसके (लड़ाई के) परिणाम स्वरूप भयङ्कर मार-काट और विनाश होगा। लड़ाई से, जैसा कि पिछले महायुद्ध में हुआ था, द्वेष और बर्बरता की बाढ़ आ जायगी। जब कि समस्त देश और समस्त जातियां एक दूसरे से सम्बन्धित हैं, और अलग से उन पर कोई विचार नहीं किया जा सकता, तब यह बात ध्यान में नहीं आ सकती कि एक लड़ाई भारत की सीमा से बाहर लड़ी जाने पर भी, वह भारत को अछूता छोड़ देगी। ऐसी किसी भी लड़ाई से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि इसके, हमारे सीमान्त प्रदेश के बहुत ही करीब लड़े जाने की सम्भावना है, और सम्भवतः भारत को भी इसमें शामिल होना पड़ेगा। यदि इस प्रकार की कोई लड़ाई होगी तो हम और आप अपनी कान्फ्रेंस और काँग्रेस करते हुए शान्त से बैठे न रहेंगे। उस दशा में निश्चय ही हम तोपों की गड़गड़ाहट सुन सकते हैं, और

हम अपने शांति पूर्ण गांवों पर हवाई जहाज़ों से बम बरसते हुए देख सकते हैं। यह इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार की लड़ाई के परिणाम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस हद तक मज़बूत हो सकता है कि वह हमारे लिए आज़ादी प्राप्त करना और अधिक कठिन बना दे। परन्तु मुझे इस परिणाम की कोई आशा नहीं। यह लड़ाई हमारी स्वतंत्रता प्राप्त करने की आकांक्षा को एक और दो पीढ़ी के लिए दूर हटा सकती है; इसलिए किसी भी दशा में, लड़ाई के लिए होने वाली कैसी ही तैयारियों की अथवा लड़ाई के किसी भी अवसर की हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

"कोई भी पुरुष और स्त्री इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। कम से कम उन भारतीयों में से तो कोई ऐसा नहीं कर सकता, जो अपने देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है। यह एक प्रसिद्ध बात है कि सब देश, कम और ज़्यादा, युद्ध के लिए तैयार हो रहे हैं। केवल इंग्लैंड ही नहीं बल्कि इसमें हर एक देश शामिल है; इसका कारण यह है कि आज यूरुप में सर्वत्र भय छाया हुआ है। यूरुप भय के पञ्जे में जकड़ा हुआ है, और भय से द्वेष उत्पन्न होता है और उससे हिंसा

और बर्बरता का जन्म होता है। यूरुप में प्रत्येक देश दूसरे देश से घृणा करता है। यूरुप में अत्यन्त भयभीत और घृणित देश इंगलेंड है। वहां निःशस्त्री-करण की चर्चा है, शान्ति स्थापन की बातें होती हैं। परन्तु आप में से जिन्होंने, जिनेवा में तथा अन्यत्र जो कुछ हो रहा है, उसे पढ़ने का कष्ट उठाया होगा, तो वे यह अनुभव करेंगे कि निःशस्त्री-करण की यह सारी चर्चा महज़ एक वितण्डा-वाद है। सन् १९१४ की अपेक्षा जब कि विगत महा-युद्ध हुआ था, शायद आज यूरुप गोली-बारूद बनाने का और भी बड़ा कारखाना है। अभी तक लड़ाई इसलिए नहीं छिड़ी कि सब क़ौमें थकी हुई हैं। परन्तु लड़ाई के सब कारण बीज रूप में इस समय मौजूद हैं, और इस समय वे, जितने १३ वर्ष पहले थे, उससे कहीं अधिक संख्या में मौजूद हैं। यदि आप बालकन्स, पोलैण्ड, इटली, जेकोस्लोवाकिया, लिथुआनिया, और रूस पर दृष्टि डालें, तो देखेंगे कि वहां हर एक जगह लड़ाई की तैयारियां हो रही हैं, और वहाँ लड़ाई के लिए अव-सर है। हमें देखना है कि उस देश ने, जिसके साथ हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है, इन लड़ाई की तैयारियों में और इस शान्ति और निशःस्त्री-करण की चर्चा ने क्या ढंग

अख़्त्यार किया है। इन मामलों में ब्रिटेन ने जो ढंग अख़्त्यार किया है, उसमें हम ख़ास तौर से दिल-चस्पी रखते हैं। इन थोड़े से दिनों में जिनेवा में अनेक निःशस्त्री-करण कान्फ्रेंसें हुई थीं। वहां एक जहाज़ी निःशस्त्री-करण कान्फ्रेंस भी हुई थी। परन्तु इनमें अधिकांश कान्फ्रेंसें इसलिए असफल हुईं कि अन्य राष्ट्रों के प्रस्तावों से ब्रिटेन सहमत नहीं होसका। पिछले दिनों सचमुच ही ब्रिटेन ने निश्चित रूप से अनिवार्य पञ्चायत के सिद्धान्त को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। ब्रिटेन ने स्विटज़रलैंड ऐसे एक छोटे से देश के साथ अनिवार्य्य पञ्चायत की एक सन्धि करने से भी इन्कार कर दिया इसलिए कि इसका मतलब उसके लिए एक ख़तरनाक सिद्धांत का छोड़ना हो सकता था। ब्रिटेन अपने इस अधिकार पर अड़ा रहा है कि वह राष्ट्र-सङ्घ अथवा किसी दूसरी अधिकार-पूर्ण शक्ति को बिना किसी तरह की सूचना दिये लड़ाई छेड़ सकता है। राष्ट्र-सङ्घ एसेम्बली की अन्तिम बैठक में सर औस्टेन चेम्बरलेन ने इंग्लैंड की ओर से एक असाधारण भाषण दे डाला। उसमें उन्होंने फ़रमाया कि राष्ट्र-सङ्घ के शान्ति और निःशस्त्री-करण के अनिश्चित आदर्शों के लिए मैं

साम्राज्य की बलि चढ़ा देने को तैयार नहीं हूँ। मि० चेम्बर लेन के लिए ब्रिटिश कामनवेल्थ उन आदर्शों की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी चीज़ है।

भारत के अतिरिक्त और ब्रिटिश साम्राज्य है ही क्या? इस का अभिप्राय यही है कि भारत के लिए, भारत को ग़ुलामी में रखा जाय। सर औस्टेन चेम्बरलेन और ब्रिटिश सरकार शान्ति और निःशस्त्री-करण के सिद्धान्तों पर सहमत नहीं हो सकते। यूरुप में यह भली भांति मान लिया गया है, ख़ास कर उन छोटे छोटे राष्ट्रों द्वारा जो राष्ट्र-सङ्घ में सदा इन प्रश्नों को उठाया करते हैं, कि आज निःशस्त्री-करण और विश्व-शान्ति की समस्या हल करने में, इंग्लेंड सब से बड़ा ज़बर्दस्त रोड़ा साबित हो रहा है। मैं आपको, लड़ाई की कुछ उन तैयारियों को, जिन्हें इंग्लेंड कर रहा है, बताया चाहता हूँ। आप जानते हैं कि लड़ाई की तैयारियाँ, गुप्त रूप से होने वाली तैयारियाँ हैं। राष्ट्र जब लड़ाई के लिए तैयारियां करते हैं, तब वे उनका विज्ञापन नहीं करते परन्तु साथ ही, जब कि तैयारियां बड़े ज़ोरों के साथ अत्यन्त व्यापक रूप में की जा रही हों,— ऐसे व्यापक रूप में जिसमें कि इंग्लेंड आज कल कर रहा है—तब उनको छिपाना असम्भव हो

जाता है। अतः इनमें से कुछ बातें प्रकाश में आगई हैं। कुछ वर्षों से जो बातें हमारे सामने हैं, उनमें सब से अधिक बड़ी और अन्तिम बात है सिङ्गापुर का जहाज़ी अड्डा। इंग्लेंड लाखों और करोड़ों पौंड खर्च करके सिङ्गा-पुर में यह बड़ा भारी जहाज़ी अड्डा क्यों बना रहा है? निश्चय ही जो कुछ शक्तियां पैसिफ़क महासागर में और पूर्वी समुद्रों के आस पास अपना कुछ स्वार्थ रखती हैं, उनके विरुद्ध दी गई यह एक चुनौती हो सकती है। मुख्यतः यह चुनौती चीन और जापान, तथा फ्रांस के भी विरुद्ध दी गई है, इसलिए अगर कोई लड़ाई हो, तो फ्रांस को इंग्लेंड के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा करने में एक ख़तरा है। उस दशा में, इण्डो-चीन में जो स्थान फ्रांस के कब्ज़े में हैं, उन पर इंग्लेंड सिङ्गापुर से धमकी देकर हावी हो सकता है। यह चुनौती डच-ईस्टइण्डीज के विरुद्ध भी दी गई है, क्योंकि इससे, लड़ाई छिड़ जाने पर इंग्लेंड हालेंड को उससे अलग रहने के लिए दबा सकता है। कुछ अंशों में, किसी भी मूल्य पर, यह चुनौती अमेरिका और पैस्फिक समुद्र के अमे-रिकन उपनिवेशों के विरुद्ध दी गई है, क्योंकि लड़ाई की सूरत में इंग्लेंड फिलीपाइन द्वीप समूह को तहस नहस

करके उन्हें अपने कब्ज़े में ले सकता है। यह चुनौती मुख्यतः भारत के विरुद्ध दी गई है, क्योंकि भारत को अपने अधिकार में सुरक्षित रख कर ही इन सब बातों को कार्य्य रूप में परिणत किया जा सकता है। कल्पना कीजिए कि भारत में एक सङ्घर्षण हो रहा है, उस दशा में सिङ्गापुर का जहाज़ी अड्डा आस्ट्रेलिया से भारत तक पल्टनें पहुंचाने में सुविधा देगा और अनेक दूसरे प्रकारों से भारत में अंग्रेज़ों को आक्रमक ढंग अख़्त्यार करने में सहायता पहुँचावेगा। सिङ्गापुर का नौ सेना-केन्द्र इतना अधिक महत्व रखता है।

इसके अतिरिक्त हमारे सामने एक दूसरा जहाज़ी अड्डा है, जो कि ट्रिङ्कोमाली पर बन रहा है। हम एक शाही भारतीय जहाज़ी बेड़ा भी रखते हैं, जो कि हाल ही में बिगुलों की फनफनाती हुई आवाज़ के साथ बनाया गया है। जो कुछ भी यह हो, यह भारतीय जहाज़ी बेड़ा नहीं है। हां, इसलिए शायद यह भारतीय जहाज़ी बेड़ा भले ही कहा जाय कि इसका सारा ख़र्च भारतीय ख़ज़ाने से दिया जायगा। यह जहाज़ी बेड़ा महज़ भारत के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार की सहायता करने के लिए ब्रिटिश जहाज़ी बेड़े का एक संयुक्त बेड़ा है हालां कि

यह हमारे ही रुपये पर हो सकता है। फिर, भारत में, और ख़ास कर उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त, पश्चिमी पञ्जाब और भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर फ़ौज तथा लड़ाई का और समान रेलवे द्वारा पहुँचाने के ढंग में जो सरगर्मी हो रही है, उसकी ओर मैं आप का ध्यान आकर्षित करूँगा। आज-कल की लड़ाई अधिकतर, रेलवे द्वारा फ़ौज आदि लड़ाई के साधनों को जुटाने पर निर्भर है। यही कारण है कि यहां माल को लाने लेजाने की व्यवस्था बिलकुल ठीक कर दी गई है। समस्त उत्तर-पश्चिमी सीमा में रेलवे फैला दी गई है। आपने ख़ैबर-पास रेलवे के बारेमें सुना होगा। आप दूसरी रेलों के सम्बन्ध में भी सुनेंगे, जो कि सैनिक कारणों के लिए बड़े भारी ख़र्च से बनाई जा रही हैं। जब फ़ौजी कारणों का विचार कर लिया गया, तब मूल्य का तो कोई ख़्याल ही नहीं है। दर्रा ख़ैबर, पञ्जाब, उत्तर-पश्चिमा सीमा से कराँची तक फ़ौजी सड़कें तैयार हो चुकी हैं। करांची से पेशावर तक मोटर लारियों की रेल-पेल चालू हो चुकी है। इन सब बातों से लड़ाई के समय, फ़ौजों के तथा अन्य सामान लाने लेजाने की सुविधा रहेगी। हालां कि वहाँ रेलवे हैं, पर रेलें शायद कार-

आमद न हो सकें,—वे शायद लड़ाई के विरोध में हड़-ताल कर बैठें ; इसलिए इंग्लेंड का सम्पूर्ण फ़ौजी कील-कांटा आत्म निर्भर और स्वावलम्बी बनाया जा रहा है।

"अब मुझे आसाम में उत्तर-पूर्वी-सीमा की चर्चा करनी है। हाल ही में आपने अखबारों में देखा होगा कि इन प्रस्तावों पर विचार किया जा रहा है कि भारत के उत्तर-पूर्व तक आसाम का एक भाग, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त की तरह, एक नया फ़ौजी सूबा इसलिए बना दिया जाय कि अगर आवश्यक हो तो वह वहां लड़ाई में सुविधा पहुंचा सके। इस काम के लिए सड़कें बना दी गई हैं। बङ्गाल और बर्मा तथा बर्मा और आसाम के बीच ज़ारी होने वाली रेलों की स्कीमें बन चुकी हैं। आप याद कर सकते हैं, कुछ समय हुआ, कि कलकत्ते का फ़ारवर्ड अख़बार बर्मा में जाने से रोक दिया गया था। उसके रोके जाने का कारण यह था कि उसमें आसाम की इन फ़ौजी सड़कों, तथा एक नया फ़ौजी सूबा बनाये जाने के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कुछ बातें प्रकाशित हुई थीं, और उसमें कुछ आलोचना भी की गई थी। अब मैं उस उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त की चर्चा पर फिर वापस आता हूँ, जहां कि हवाई जहाज़ों और टंकियों का एक असाधा-

रण जमघट कर दिया गया है। जो लोग यह सब जानते हैं, उन्होंने हम से कहा है कि कोई भी सेना लड़ाई के लिए अनेक प्रकार का सामान तथा अन्य साधनों से भरपूर जैसा युद्ध भण्डार रखती है, उनमें सबसे सुन्दर और सब से अच्छा यही युद्ध भण्डार है। करांची हवाई जहाज़ों का केन्द्र बना दिया गया है, और उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त में अन्य केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं; इस कारण इस प्रान्त में आज लड़ाई की तैयारियों की धूम मची हुई है। इंग्लेंड में, तथा भारत के एंग्लो-इण्डियन अख़बारों में दो प्रस्ताव किये गये हैं, जिनका पार्ल्यामेंट में अधिकारियों की ओर से खण्डन किया गया है, परन्तु अख़बारों में अभी तक यह चर्चा ज़ारी है। कहा जाता है कि सरकार इस सम्बन्ध में जो कुछ कर रही है, उसे ये अख़बार जानते हैं। ये प्रस्ताव हमारे लिए बड़े हितकर हैं। पहला प्रस्ताव यह था कि ब्रिटिश सेना का एक हिस्सा भारत में रखा जाना चाहिये, क्योंकि, यूरुप की अपेक्षा एशिया में लड़ाई का अधिक ख़तरा है। इसलिए इस बात की ज़रूरत है कि यह पल्टन भारत में तैयार रहे, और जब आवश्यक हो, तभी युद्ध की तैयारियां तुरन्त ही शुरू करदे। दूसरा प्रस्ताव यह था कि

जब युद्ध का कोई ख़तरा हो, तब ये बहुत ही उन्नत और यंत्र-कला-विज्ञान में सुदक्ष सेनाएँ काम में लाई जावें। जो तरीक़ा इंग्लेंड को अख़्त्यार करना चाहिए वह बहुत ही कड़े शब्दों में अंग्रेज़ी अख़बारों में बयान किया गया है। उसमें कहा गया है कि इंग्लेंड आक्रमण की प्रतीक्षा न करे, बल्कि वह दम भर में, अफ़गानिस्तान को पार करके मध्य एशिया में जा कूदे। यह प्रस्ताव इसलिए किया था कि, ठीक इसी ढंग से जर्मन लोगों ने बेलिजयम को पार करके, अचानक आगे बढ़ कर फ्रांस पर आक्रमण किया था।

"ब्रिटेन की लड़ाई की तैयारियों के सम्बन्ध में, आप से वे एक दो बातें और कहूँगा, जिनकी ओर मेरे एक मित्र ने ध्यान आकर्षित किया है। वे मित्र स्वयं एक बहुत प्रसिद्ध डाक्टर हैं। उन्होंने मुझसे कहा है कि भारत में बहुत से आदमियों को यहां के मेडिकल मिलिटरी डिपार्टमेंट की ओर से एक गश्ती चिट्ठी मिली है। यह चिट्ठी सिविल मिलिटरी डिपार्टमेंट के हर आदमी के पास भेजी गई है, और उससे पूछा गया है कि क्या वह अचानक घटित होने वाली किसी दुर्घटना के समय ज़रूरत पड़ने पर मेडिकल मिलिटरी अफ़सर की हैसि-

यत से काम करने को तैयार हैं? एक दूसरी चिट्ठी उन सब फ़ौजी डाक्टरों को भेजी गई है, जिन्होंने विगत महा-समर में काम किया था। उन से पूछा गया है कि क्या वे मेडिकल रिज़र्व (फ़ौजी डाक्टरों की पल्टन) में भरती होने को तैयार हैं? मित्रो! आप विचार करें कि आख़िर इन सब बातों का मतलब क्या है? जब यह प्रस्ताव विषय-निर्धारिणी समिति में पेश किया गया, तब कुछ आदमियों ने ख़्याल किया कि यह अनावश्यक प्रस्ताव है। उन्होंने फ़ौजी तैयारियों के सम्बन्ध में कुछ नहीं सुना और वे भावी युद्ध के बारे में कुछ नहीं जानते। वे सोचते हैं कि हमारी घरेलू समस्यायें अधिक महत्त्व-पूर्ण हैं। वे कहते हैं कि उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त में जो कुछ घटनायें घटेंगी, उन पर हम समय और शक्ति क्यों नष्ट करें? आप ख़्याल करें कि क्या ये थोड़ी सी तथा पूर्ण बातें आपके लिए, विश्व में और ख़ास कर भारत के चारों ओर युद्ध का जो एक बड़ा भारी ख़तरा मौजूद है, उसे अनुभव करने को काफ़ी नहीं हैं? यदि इस प्रकार का कोई ख़तरा मौजूद है, तो क्या आप उसकी ओर ध्यान न देकर केवल छोटे २ प्रश्नों पर बहस करने के लिए ही तैयार हैं।

"लड़ाई की इन तैयारियों के सम्बन्ध में आप से मैं दो बातें और कहना चाहता हूँ। उनमें से एक वह एँग्लो-ईराक सन्धि है जो हाल ही में इंग्लेंड आर मेसोपोटामिया के बीच हुई है। और दूसरी बात है अमीर की भारत-यात्रा। मुझे उस शानदार स्वागत पर, जो ब्रिटिश सरकार ने अमीर का किया, कोई अश्चर्य न होता यदि ब्रिटिश सरकार को उन्हें अपने पक्ष में कर लेने की इच्छा न होती। हम इस स्थिति में नहीं हैं कि लड़ाई को रोक सकें, यह हो सकता है। किन्तु प्रत्येक दशा में हम इस स्थिति में तो हैं कि यह स्पष्ट कर दें कि इस मामले में भारत क्या ढँग अख़्त्यार करेगा, और यह बिलकुल संभव और विचारणीय है कि यदि भारत का ढँग स्पष्ट बयान कर दिया गया, तो इंग्लेंड को भी अपना रुख़ बदल देना पड़ेगा। इंग्लेंड लड़ाई छेड़ देने का साहस तक नहीं कर सकता, यदि वह यह जानले कि हिंदुस्तान लड़ाई में सहायता नहीं देगा, बल्कि वह लड़ाई के कामों में, वास्तव में रुकावट डालेगा। इस प्रस्ताव में स्पष्ट कह दिया गया है कि हिन्दुस्तान का अपने पड़ोसियों के साथ कोई झगड़ा नहीं है। जहां तक इस घोषणा का सम्बन्ध है वहां तक हमें यह निश्चय करने का अधिकार

है कि हम लड़ाई में शामिल होंगे या नहीं। तीसरे, एक दूसरी घोषणा आती है, और वह अत्यधिक महत्व-पूर्ण है। उस दशा में जब कि लड़ाई छिड़ जाय, और आपको दोहन करने का प्रयत्न किया जाय, तो आप दोहन किये जाने और लड़ाई में कोई भी हिस्सा लेने से इन्कार कर देंगे। मुझे विश्वास है कि यदि लड़ाई हुई, और मैं सोचता हूँ कि लड़ाई उससे कहीं अधिक समीप हो सकती है जैसा कि हममें से अधिकाँश आदमी ख़्याल करते हैं—यह एक वर्ष दो वर्ष अथवा पांच वर्ष में हो सकती है—यह राष्ट्रीय महा सभा उसी रास्ते को अख़्त्यार करेगी, जो आज दिखाया गया है। मुझे यह भी विश्वास है कि हिन्दुस्तान के लोग अपने छोटे मोटे मतभेदों को भुला कर कांग्रेस के आस-पास एक सूत्र में आबद्ध हो जायेंगे, और आमतौर पर वह ढंग अ-ख़्त्यारकरेंगे, जो कांग्रेस ने बताया है, और लड़ाई में हिस्सा लेने से इन्कार कर देंगे तथा इसके जो कुछ भी परिणाम होंगे उन्हें वे भोगेंगे। मेरी धारणा है कि यदि काँग्रेस और भारत के लोग इस ढँग को अख़्त्यार करेंगे तो इस अग्नि परीक्षा से वे अधिक अच्छे और अधिक आज़ाद होकर निकलेंगे और भारत एक संयुक्त स्वतंत्र राष्ट्र होगा।"

मद्रास कांग्रेस

स्वतंत्रता का प्रस्ताव

पं० जवाहरलाल नेहरू ने ४२वीं अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा के समक्ष जिसकी बैठक मद्रास में दिसम्बर सन् १९२७ में हुई थी, स्वतन्त्रता का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए जो भाषण दिया था उसका सार निम्न लिखित है—

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने हर्ष-ध्वनि के बीच उठते हुए कहा :—

"यह मेरा एक असामान्य अधिकार है जो आपके सन्मुख स्वतंत्रता का प्रस्ताव उपस्थित कर रहा हूँ। (हर्ष-ध्वनि) प्रस्ताव इस प्रकार है :—

"यह कांग्रेस घोषणा करती है कि भारतीय जनता का उद्देश्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता है।"

"मैं ख़्याल नहीं करता कि इस प्रस्ताव को मैं उससे अच्छी भाषा में व्यक्त कर सकता हूं, जिसमें कि, विषय-

निर्धारिणी समिति में स्वीकृत किये जाने के बाद, तुरन्त ही, एक प्रेस-प्रतिनिधि की भेंट में कांग्रेस की एक भूतपूर्व विख्यात सभा-नेत्री डाक्टर बेसेंट ने व्यक्त किया है। डाक्टर बेसेंट ने कहा—"हिन्दुस्तान के लक्ष्य का यह एक गौरव—पूर्ण और स्पष्ट वक्तव्य है।"

"आपकी स्वीकृति के लिए यह प्रस्ताव उपस्थित करते समय, मुझे कोई ख़ास बातें कहने की ज़रूरत नहीं है, ख़ास कर उस दशा में, जब कि लगभग सर्व सम्मति से विषय निर्धारिणी समिति ने इसे स्वीकार कर लिया है। परन्तु इस प्रस्ताव से सम्बन्ध रखने वाली एक-दो बातों को मैं बहुत स्पष्ट रूप से वर्णन कर देना चाहता हूँ। पहली बात यह है कि यद्यपि यह प्रस्ताव, लक्ष्य स्पष्ट कर देता है, किन्तु यह कांग्रेस की वर्तमान सैद्धान्तिक शैली को परिवर्तित नहीं करता। यदि आप इस प्रस्ताव को पास करते हैं, तो आप बहुमत से घोषणा करते हैं—मुझे आशा है कि बहुत बड़े बहुमत से—कि कांग्रेस आज पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष में है। साथ ही आप कांग्रेस के दरवाज़े उन लोगों के लिए भी खुले छोड़ते हैं, जो इस उद्देश से सहमत न हो सकें, वे शायद इससे कम अथवा छोटे से उद्देश्य से ही सन्तुष्ट हैं। मैं ख़्याल करता हूँ कि

यद्यपि कांग्रेस का द्वार खुला है, तो भी इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं होना चाहिए कि यदि आप इस प्रस्ताव को पास कर दें तो प्रत्येक आदमी यही कहेगा कि आज कांग्रेस-वादियों का बहुमत देश के लिए पूर्ण स्वतंत्रता चाहता है। यह प्रस्ताव, जैसा कि आपके सामने रखा गया है, बहुत संक्षिप्त और साधारण है। विषय निर्धारिणी समिति में, यह प्रस्ताव—जैसा कि आप जान सकते हैं, क्योंकि वहाँ की कार्यवाही बिल्कुल सार्वजनिक है—कुछ लम्बा और कुछ अधिक पेचीदा था। परन्तु अन्त में यह वर्तमान रूप में परिवर्तित हो गया और इस रूप में स्वीकार कर लिया गया।

"आपके सामने मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस रूप को स्वीकार कर लेने से, प्रस्ताव की क्षमता, अथवा उसका अर्थ किसी दशा में भी नहीं बदलता। इसका अर्थ यही है जो कुछ यह कहता है। इसका अर्थ है पूर्ण स्वतंत्रता, इसका अर्थ है देश की संरक्षण-सेनाओं पर नियंत्रण, इसका अर्थ है देश की आर्थिक नीति पर अधिकार; इसका अर्थ है वैदेशिक सम्बन्धों का नियंत्रण। इन चीज़ों के बिना स्वतंत्रता एक ढकोसला और वितण्डावाद मात्र होगी।

"तीसरे मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ ताकि कोई भूल न हो सके कि यह लक्ष्य, जिसे कि, मुझे आशा है, आप आज स्वीकार करेंगे, बहुत शीघ्र प्राप्त किये जाने का लक्ष्य है, अधिक दूर के भविष्य का लक्ष्य नहीं। (हर्ष-ध्वनि)। हम इस लक्ष्य को आज प्राप्त करें, अथवा कल, अब से एक वर्ष में या अब से दस वर्ष में, यह मैं कुछ नहीं कह सकता इसका प्राप्त करना आप की तथा आप के देश की ताक़त के ऊपर निर्भर है।

अन्त में मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि यह कांग्रेस एक ऐसा लक्ष्य स्वीकार करने को है, जो हमारे देश के उच्चतम सौभाग्य के योग्य है। आशा है कि इस लक्ष्य तक हम निकट भविष्य में ही पहुंचेंगे। (हर्ष-ध्वनि)"

प्रयाग महिला विद्यापीठ

—:o:—
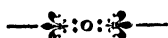
पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने तारीख़ ३१ मार्च सन् १९२८ को जो भाषण विद्यापीठ हाल की नींव का शिलारोपण करते हुए दिया था वह निम्न लिखित है:—

"माननीय चाँसलर, भाइयो और बहिनो—आपने विद्यापीठ का शिलारोपण मेरे हाथों करवाकर मेरा जो सम्मान किया है उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। सचमुच आपके इस निमंत्रण को पाकर मैं आश्चर्य में आ गया था और इसे स्वीकार करने में आगा पीछा करने लगा था। हमेशा से मेरा यह ख़्याल रहा है कि इस प्रकार की रस्मों को अदा करना बड़े बड़े सरकारी अधिकारियों या आदरणीय बुज़ुर्गों का ही काम है। पर मैं इन दोनों श्रेणियों में से किसी में भी नहीं समझा जा सकता। मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसे अवसरों पर कुछ ऐसी आशाभरी दिखावटी बातें कहने का नियम हो गया है जो कुछ विशेष अर्थ नहीं रखतीं। पर आप शायद जानते होंगे कि

स्वभाव से ही विद्रोही होने के कारण मैं गुज़रे हुये ज़माने की इन दिखावटी बातों को कह सकने में सर्वथा अयोग्य हूँ, और यह भी सम्भव है कि मैं जो कुछ कहूँ वह आप लोगों में से बहुतों को प्रसन्न न कर सके। पर मुझे निमंत्रण देने से ही आप इस ख़तरे को उठाने के लिये तैयार हो चुके हैं। मैंने इस निमंत्रण को कुछ तो इस लिये स्वीकार कर लिया कि जब मैं प्रयाग की म्युनिसिपैलिटी का चेयरमैन था तो इस संस्था के साथ मेरा सम्बन्ध था। पर सब से मुख्य कारण यही है कि स्त्री-शिक्षा और स्त्रियों के अधिकारों के विषय में मुझे सदा से अनुराग रहा है।

भारतीय स्त्रियों की स्थिति

"फ्रांस के एक बड़े आदर्शवादी—चार्ल्स फौरियर ने एक बार कहा था कि—'किसी भी देश की सभ्यता के परिमाण का निर्णय वहां की स्त्रियों की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति से किया जा सकता है।' इसके अनुसार अगर हम वर्तमान भारत का निर्णय करना चाहें तो वैसा निर्णय उसकी स्त्रियों को देखकर ही किया जा सकता है। जिस भविष्य का हम निर्माण कर रहे हैं उसका निर्णय भी भारतीय स्त्रियों की स्थिति द्वारा ही

किया जा सकता है। मैं आपके सामने स्पष्ट स्वीकार करना चाहता हूँ कि भारतीय स्त्रियों की वर्तमान दशा से मैं बहुत अधिक असन्तुष्ट हूँ। हम सीता और सावित्री के विषय में बड़ी बड़ी बातें सुना करते हैं। ये नाम भारतवर्ष में आदरणीय माने जाते हैं और यह बिल्कुल ठीक है। पर मुझे ऐसा अनुभव होता है कि प्राचीनकाल की इन प्रतिध्वनियों को उठाने का मुख्य उद्देश्य हमारी वर्तमान त्रुटियों को ढकना और वर्तमान भारत की नारियों के पतन के वास्तविक कारणों पर किये जाने वाले आक्रमण को रोकना ही है।

स्त्री-शिक्षा का आदर्श

"इस संस्था की रिपोर्ट के देखने से मुझे मालूम हुआ है कि इसकी स्थापना स्त्रियों को गृह-सम्बन्धी विशेष शिक्षा देने के लिये हुई है। उसमें बतलाया गया है कि जिस प्रकार पुरुषों का काम जीविका कमाना है उसी प्रकार स्त्री का स्थान घर के भीतर है और उसका आदर्श सिवाय कर्तव्य परायण पत्नी बनने के और कुछ नहीं होना चाहिये। बच्चों का चतुराई के साथ पालन-पोषण करना और आदरणीय बुजर्गों की सेवा करना ही उसकी प्रसन्नता के मुख्य विषय होने चाहिये। मैं कहना चाहता

हूँ कि मैं स्त्रियों के जीवन या उनकी शिक्षा के इस आदर्श से सहमत नहीं हूँ। इससे क्या प्रकट होता है? इसका अर्थ है कि स्त्रियाँ एक और केवल एक ही पेशा कर सकती हैं और वह पेशा है विवाह। हमारा मुख्य कार्य यही है कि हम स्त्रियों को उस पेशे के लिये शिक्षित करें। इतना ही नहीं इस पेशे में भी उनकी स्थिति महत्व की दृष्टि से नीची रखी गई है। उनको सदैव अपने पति और गुरुजनों की कर्तव्यपरायण सहायिका, अनुगामिनी और आज्ञाकारिणी दासी बन कर रहना आवश्यक है। वे दूसरे व्यक्तियों के लिये एक गुड़िया या खिलौना मात्र बनी रहती हैं। शायद आप लोगों में से किसी ने इपसन का 'गुड़ियों का घर' नामक उपन्यास पढ़ा होगा। अगर किसी ने उसे पढ़ा है तो वह इस सम्बन्ध में मेरे 'गुड़िया' शब्द कहने का मतलब अच्छी तरह समझ सकेगा।

गुड़िया और खिलौने

"भारतवर्ष का भविष्य गुड़ियों और खिलौनों से नहीं बन सकता। अगर आप देश की आधी जन संख्या को शेष आधा जन-संख्या की केवल खेलने की चीज़ बना देंगे, दूसरों के ऊपर भार स्वरूप बना देंगे, तो आप उन्नति की क्या आशा रख सकते हैं? इसलिये

मेरा कहना यही है कि आप इस समस्या का साहस पूर्वक सामना करें और बुराई को जड़ से ही काटने की चेष्टा करें। हमारे सामने पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह और स्त्रियों के अधिकारों का अपहरण आदि अनेक अनेक क्षेत्र कार्य करने को मौजूद हैं। आप किसी भी मुल्क में चले जाइये वहाँ के बालकों और बालिकाओं के चेहरों पर आपको चमक दिखलाई देगी और वे आपको खेलते हुये और उनके शरीर तथा दिमाग़ मज़बूत बनते हुये नज़र आयेंगे। पर हमारे यहां उसी उम्र के बच्चे पर्दे में रक्खे जाते हैं, क़रीब-क़रीब पिंजड़े के भीतर ताले में बन्द रक्खे जाते हैं, और अधिकांश में उनको किसी भी प्रकार की स्वाधीनता नहीं दी जाती। जो समय उनकी शारीरिक और मानसिक वृद्धि का होता है उसी समय उनकी शादी करदी जाती है, और इस प्रकार उनकी वृद्धि को रोक दिया जाता है तथा उनको जीवन भरके लिये दुर्दशा ग्रस्त बना दिया जाता है।

अपने अधिकारों के लिये संग्राम

"अगर इस विद्यापीठ की स्थापना वास्तव में हमारी स्त्रियों की उन्नति के लिये की गई है तो हमें अवश्य इन दुष्ट प्रथाओं पर आक्रमण करना चाहिये। पर साथ ही

मैं यहाँ पर उपस्थित महिलाओं को याद दिला देना चाहता हूँ कि आजतक किसी राष्ट्र ने, किसी समूह ने किसी जातिने, किसी देशने, अपने ऊपर ज़ुल्म करने वालों की उदारता के फल स्वरूप अपनी त्रुटियों अथवा अयोग्यता से छुटकारा नहीं पाया है। भारतवर्ष तब तक स्वाधीन नहीं हो सकता जब तक अपनी इच्छा के सामने इङ्गलैण्ड को झुका सकने की हममें सामर्थ्य न आ जाय। इसी प्रकार भारतवर्ष की स्त्रियाँ भी केवल भारतवर्ष के पुरुषों की उदारता द्वारा अपने पूर्ण अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सकतीं। उनको इसके लिये संग्राम करना पड़ेगा और अपनी माँग के सामने पुरुषों को झुकाना पड़ेगा, तभी वे सफल हो सकेंगी।

"इसलिये मैं आशा करता हूँ कि यह विद्यापीठ इस प्रान्त में और देश में इस प्रकार की स्त्रियों के उत्पन्न करने का साधन होगी, जो कि वर्तमान समय की अन्याय-पूर्ण और अत्याचारयुक्त सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध विद्रोह कर सकें, जो उन सब लोगों से लड़ सकें जो कि उनकी उन्नति का विरोध करते हों, और जो देश के लिये उसी प्रकार के सिपाही बन सकें जैसे कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पुरुष बन सकता है।" (हर्ष ध्वनि)

मानपत्र का प्रत्युत्तर

पं जवाहरलाल नेहरू ने प्रयाग डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा समर्पित मानपत्र का जो प्रत्युत्तर दिया था उसका सार निम्न लिखित है—

"मैं यह न समझता था कि विदेश की सैर कर आना भी मेरी एक विशेष योग्यता है कि जिसके कारण मैं इस महान आदर का जो कि आप लोगों ने मुझे दिया है, अधिकारी बन सका। एक योद्धा का युद्ध क्षेत्र से खिसक जाना और लड़ाई के मैदान से दूर अपना समय इधर उधर सुख से बिताना प्रायः सराहनीय नहीं गिना जाता, किंतु आप लोगों ने मेरे इस कार्य को भी मुझे आदर और सम्मान देने का अवसर मान लिया। जैसा कि आपने संकेत भी किया है, इसका कारण केवल आप लोगों का मेरे प्रति कृपा और प्रेम का बाहुल्य ही हो सकता है। इसी कारण आप समय और कुसमय सभी में मुझे सम्मानित करने का अवसर ढूँढा करते हैं। मैं बड़े गौरव के साथ यह कहने को उद्यत हूँ कि प्रयाग ज़िले के किसानों और उनके प्रतिनिधियों के इस प्रेमोपहार से बढ़कर

और कोई आनन्ददायक वस्तु मेरे लिये नहीं हो सकती। मैंने आपके बहुत से गांवों में विचरण किया है और सदा ही हार्दिक स्वागत प्राप्त किया है। निर्धन से निर्धन ने भी मेरा सत्कार और आतिथ्य किया है। राष्ट्रीय जीवन में उतार और चढ़ाव के अनेक अवसर आते हैं, अनेक अवसरों पर निराश होना पड़ता है और अनेक अवसरों पर मन बैठ जाता है। इन अनुभवों का ख़ासा हिस्सा मेरे भी पल्ले पड़ा है, किंतु हमारे किसान भाइयों के प्रेम और विश्वास ने उन सब का भुगतान यथोचित से अधिक रूप में कर दिया है। जब मैं अपने और उनके संबध और मिलाप का ध्यान करता हूँ तो मेरा हृदय कृतज्ञता की भावनाओं से पुलकित हो जाता है। मैं जीवन में उनको नहीं भूल सकता और न उनके उस विशुद्ध प्रेम और भोले विश्वास को जो कि उन्होंने सदा एक ऐसे पुरुष के प्रति दिखलाया जो उनकी गोष्ठीका नहीं है, जो एक भिन्न दर्जे का आदमी है और जो आराम और सुख से जीवन बिताता है जब कि वे ग़रीबी झेलते हैं और जीवन की सभी अच्छी वस्तुओं से वञ्चित हैं। सब से बड़ा सम्मान जो उन्होंने मुझे दिया वह था मुझे अपने में से ही एक समझना। उन्होंने कभी मुझे

पराया नहीं समझा। इस सम्मान को मैं अन्त समय तक संचित रखूंगा।

"आप ने दो बातों का ज़िक्र किया है। दोनों ही मुझे विशेष प्रिय हैं—अपने प्यारे देश के लिये स्वतंत्रता और मनुष्य और मनुष्य के बीच बराबरी। आप और भी ऐसे विषय चुन सकते थे कि जिनसे मुझे इतना ही प्रेम है। मुझे यह जानकर हर्ष होता है कि इन आदर्शों के प्रति आपकी पूरी सहानुभूति है। राजनीतिज्ञों और अन्य विद्वानों में कितना ही मतभेद क्यों न हो, किन्तु यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि ऐसा एक भी भारतवासी न होगा जो अपने देश के लिये पूर्ण स्वतंत्रता की बाट न जोहता हो। साधनों के विषय में मतभेद रहा ही करते हैं। मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि आज से बीस साल पहले स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले ने, जिन्होंने अपना जीवन मातृभूमि के चरणों में अर्पित कर दिया था, कहा था कि 'मुझे पूरी आशा है कि भारत किसी दिन पूर्ण स्वतंत्रता पाकर रहेगा'। वह दिन अब तब से बीस साल निकट आगया है और हमें आशा करना चाहिए कि हम शीघ्र ही उस दिन को देखेंगे।

"आज हम एक ऐसा समाज देखते हैं कि जिसमें

मनुष्य और मनुष्य के बीच ज़मीन और आसमान का भेदभाव है। एक ओर अगाध धनराशि है और दूसरी ओर निकृष्ट तंगी और ग़रीबी; कुछ लोग बिना कुछ किये कराये आनन्द और भोग के साथ जीवन व्यतीत करते हैं जब कि दूसरे लोग सवेरे से शाम तक बिना आराम किये सिर से चोटी तक पसीना बहा कर परिश्रम करते हैं और तो भी जीवन की छोटी मोटी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते।

"यह न्याय का विरोध-भाव है। इसमें उन व्यक्तियों का भी दोष नहीं है जो धनवान हैं। यह उस क्रम का दोष है और यह हमारा काम है कि इस क्रम को बदल डालें जो मनुष्य को मनुष्य द्वारा दुहेजाने की सुविधा देता है और इतने अगाध कष्ट और दुःख की उत्पत्ति करता है। हमारा देश इतना काफ़ी पैदा कर सकता है कि जो यहां वाले पुरुष और स्त्रियां सुख और शान्ति से रह सकें। प्रत्येक स्त्री पुरुष को अपनी योग्यता की पूर्ण वृद्धि करने के लिये सब प्रकार की सुविधाएँ मिलनी चाहिए। किन्तु ऐसा करने के लिये हमें कुछ अपने गत-काल के विचारों को भुला देना होगा। योग्यता और अध्यव-साय के अनुसार ही सम्मान और पद मिलना चाहिए।

जाति, कुल अथवा धन दौलत के कारण नहीं। हमें चाहिए कि एक दूसरे को अपना भाई समझें; न कोई नीचा हो और न कोई ऊंचा, न कोई पूजा का अधिकारी हो और न कोई घृणा का पात्र, सब एक दूसरे के साथ बराबरी का और भाई-चारे का व्यवहार करें और इस अच्छे देश और इस की पैदावार के बंटवारे में उनके अधिकार बराबर ही रहें!

"मैंने देशाटन बहुत किया है और दुःख के साथ दूसरे देशों के किसानों की दशा से अपने किसानों की तुलना की है। दूसरे देशों में मैंने देखा है कि वहां के किसानों को आराम की और भोग विलास की भी वस्तुएं सुलभ हैं जब कि हमारे यहां घोर तंगी और गरीबी का निवास है और उन बुरे रिवाजों के कारण जिन्हें हम अब भी मानते चले आते हैं, परिस्थिति और भी बदतर बन जाती है। इस ग़रीबी के कारणों से हमें भिड़ना चाहिए और छुटकारा पाना चाहिए, और इन रिवाजों को जो कि हमारी उन्नति के मार्ग में रोड़े अटकाते हैं, दुत्कार देना चाहिए। यह जानना हमारे लिये आवश्यक है कि दूसरे देशों में क्या हो रहा है; उनके आदर्श से हमें लाभ उठाना चाहिए।

"हमारे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड बहुधा सरकार से धन सहायता की याचना करते हैं। किन्तु क्या आपने कभी समझा है कि सरकार के सारे कलपुर्जे जिस रुपये से चलते हैं वह रुपया देहातों से ही आता है। सारा रुपया जो कि फ़ौज पर और वायसराय गवर्नरों और दूसरे अफ़सरों की लम्बी चौड़ी तनख्वाहों में व्यय किया जाता है वह ग़रीबी से सताये हुए भारत के गांवों के सिवाय और ज़्यादातर कहां से आता है? हमारे नगर भी हमारे गांवों के मत्थे ही गुज़ारा करते हैं। लेकिन इस सब के बदले में हमारे गाँवों को मिलता क्या है? शिक्षा का प्रबन्ध बहुत थोड़ा रहता है। सफ़ाई और इलाज की सुविधाएँ भी बहुत कम रहती हैं और आरोग्य ढंग के मकानों का कोई प्रबन्ध एक दम रहता ही नहीं। आपका सारा रुपया ले लिया जाता है और जब आप धन सहायता की याचना करते हैं तो कृपा के रूप में कुछ कौड़ियां आपको थमा दी जाती हैं। दूसरे देशों में राज्य का यह पहला और लाज़िमी कर्तव्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को निःशुल्क शिक्षा दे, इलाज और सफ़ाई की सुविधाएँ निःशुल्क जुटावे और ग़रीबों के रहने के लिये अच्छे मकान बनवावे। दूसरे देशों में इस बात का

ध्यान रखा जाता है कि कोई भी राष्ट्र शक्ति-शाली नहीं हो सकता जब तक कि उसके स्त्री और पुरुष आरोग्य और सुशिक्षित न हों। लेकिन हमारे यहां अफ़सरों को लम्बी चौड़ी तनख्वाहें देना और फ़ौज पर व्यय करना ज़्यादा आवश्यक समझा जाता है। ग़रीबों का कोई भी ध्यान नहीं करता और वस्तुतः हमारा देश दुर्बल और ग़रीब है। यदि हमें आरोग्य और सुशिक्षित स्त्री पुरुषों से भरे पूरे उन्नति शील भारत का निर्माण करना है, तो शीघ्र ही इस क्रम का अन्त कर देना चाहिये। भारत का भविष्य किसानों के ही हाथ है।

"मुझे जो आज आप लोगों ने सम्मानित किया है और उदारता पूर्वक मेरे लिये सदिच्छाएं प्रकट की हैं, उसके लिये मैं आपको फिर से धन्यवाद देता हूँ। और अन्त में मैं आपकी उत्सुकता-पूर्ण आशा का साथ देता हूं कि हमारे लक्ष्य शीघ्र ही प्राप्त हो जावें और भारत फिर से अपना उचित स्थान प्राप्त करले।"

——:o:——

पञ्जाब प्रान्तीय कान्फरेन्स

पं० जवाहरलाल नेहरू ने सभापति की हैसियत से पंजाब प्रांतीय कान्फ्रेंस के सामने ता० ११ अप्रेल सन् १९२८ को जो भाषण हिन्दी में दिया था उसका सार निम्न लिखित है:-

"जो सम्मान आज आप लोगों ने मुझे दिया है उसके लिये मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ। मेरा ख़्याल है कि शायद ही आप में से किसी को मेरे इस पद के प्रति जिसे मैं आज यहाँ ग्रहण कर रहा हूँ ईर्षा होगी। हमारी कांग्रेसों और कान्फ्रेंसों में यह एक आम रिवाज़ सा हो गया है कि उन उलझनों का हवाला दिया जाय जो कि हमारे सामने लगातार आती हैं। प्रत्येक वर्ष हमसे कहा जाता है कि परिस्थिति पहले से कहीं विशेष भयावह हो गई है। ज़रूरत से ज़्यादा लगातार ताक़ीद करते रहने के कारण चेतावनी का अर्थ बहुत कुछ जाता रहा है और भेड़िया भेड़िया चिल्लाने पर भी कोई सुनता नहीं है। लेकिन उलझनें हों या न हों, बिना अत्युक्ति, के यह

कहा जा सकता है कि हम बड़ी तीव्रता से अपने प्रारब्ध के चौमुहाने के निकट पहुंच रहे हैं और हम चाहें या न चाहें हमें एक मार्मिक पसन्दगी करनी ही पड़ेगी। मैं इंग्लैण्ड से आये हुए उन वे बुलाये हुये सात महाशयों का ज़िक्र नहीं करता जो कि अभी हमारे यहां तशरीफ़ लाये थे और इतने शक्तिशाली विरोध के होते हुए भी अब फिर दुबारा आने की घुड़की दे रहे हैं। उनका आना और जाना मुझे उत्तेजित नहीं करता। किन्तु साइमन कमीशन से कहीं बड़ी घटनाएं आज घटित हो रही हैं और कहीं विशेष विस्तृत परिवर्तन नींव पकड़ रहे हैं। संसार में उबाल आ रहा है और विचित्र शक्तियां काम कर रही हैं। कल के देवता आज दुत्कारे जाते हैं और एक कोने में बे-बूझे पड़े रहते हैं; नवीन विचार और नये ढकोसले लोगों को उत्तेजित करते हैं। भारत ने भी, जो कि रीति रिवाज का पुराना अड्डा है और जहां परिवर्तन का भय इतने ज़बरदस्त रूप में मौजूद है, गुज़रे हुए लकीर के फ़कीर-जमाने को अपनी चुनौती भेज दी है और यह चुनौती दिनों दिन विस्तार में बढ़ रही है। वही व्यक्ति यथार्थ में वीर-पुरुष होगा जो सच्चे पथ प्रदर्शन करने का बीड़ा उठावेगा और दृढ़ निश्चय के साथ हमें

वह मार्ग दिखलावेगा कि जिस पर हम चल सकें। मैं इस बीड़े को उठाने का दावा नहीं करता और इसी कारण मैं इस कान्फ्रेंस का सभापतित्व ग्रहण करने में संकोच करता था।

"यदि सारे भारत की नीति निर्णय करने में कठिनाइयां पड़ती हैं तो पंजाब की भी अपनी जातीय समस्याएँ हैं। जिन्होंने कि स्वयं छोटी होते हुए भी धीरे धीरे महत्तर प्रश्न को ढक लिया है और जो कि सुलझन में रोड़ा अटकाती हैं। इस प्रान्त ने अतिशय अवांछनीय नाम कमा लिया है और इसे भारत का अलस्टर कहा जाता है। हमारे नेताओं की अच्छे से अच्छे रूप में तैयार की हुई स्कीमें पंजाब में भावना और अन्ध-विश्वास की मृत दीवालों से टकराकर अस्त व्यस्त हो जाती हैं। क्या आप चाहेंगे कि मैं, एक बाहर का आदमी—यद्यपि आप लोगों के लिये अनजान नहीं हूँ—इन समस्याओं को हल करने की चेष्टा करूँ जो कि अब तक नहीं सुलझ सकीं। मैं इस पद पर बैठ कर जो कि मुझे आपकी सदिच्छाओं और कृपाभाव के कारण प्राप्त हुआ है अपने को हिचकिचाता हुआ और बेचैन सा पाता हूँ, मैं आप की क्षमा का पात्र हूँ और मुझे आशा है कि आप भरपूर क्षमा प्रदान करेंगे।

"भारत में पंजाब ने अपने को बदनाम कर लिया है। भेद भाव लड़ाई झगड़ा और साम्प्रदायिकता का तो यह अड्डा बन गया है। तो भी तुम्हारे प्रान्त की स्मृति जो कि मेरे हृदय पटल पर स्वर्णांकों में अंकित है; वह नौ साल पहले के उन दिनों को है जब कि पंजाब ने भारतीय स्वातंत्र्य की लड़ाई का झोंका धीरता के साथ सहा था और अपनी प्रसव-पीड़ा और महानकष्ट से उस महान असहयोग आन्दोलन की उत्पत्ति की थी जिसने कि भारत के लाखों दुःखी लोगों में आज़ादी की हिम्मत और आशा फूँक दी थी। मुझे और आपको आज और कल के लड़ाई झगड़ों की बात बहुत दिन याद न रहेगी; लेकिन वे काले दिन जब कि यह रमणीय प्रान्त एक व्याकुलित कसाईखाना बन गया था और हमने ब्रिटिश शासन की पाशवी कुरूपता के सच्चे रूप का सामना किया था, न मैं ही भूल सकता हूँ और न आप ही। हम लोग आज यहाँ जलियांवाले बाग़ की पवित्र भूमि पर खड़े हैं। जहाँ एक दिन बियाबान था वहां आज मनोहर दृश्य दीख पड़ता है, लेकिन यहां का हर एक कंकड़ और हर एक घास की पत्ती अपनी खून और आतंक की कहानी कहती है। क्या यहाँ खड़े होकर हम उस

महान कुर्बानी को भूल जायंगे और भाई भाई के घरू झगड़ों में फँस जावेंगे ; अथवा हम अपने पुराने इरादे को फिर दुहरा देंगे और मिल जुल कर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते हुए तब तक दम न लेंगे जब तक कि हम विदेशी शासन का नितान्त अन्त न कर लेंगे।

"भारत के दूसरे सूबे पञ्जाब को स्वतंत्रता के मार्ग में राड़े अटकाने का दोष देते हैं और उनका यह कहना अनुचित भी नहीं है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझमें इस सूबे और इसके बहादुर लड़के लड़कियों के प्रति प्रेम करने की कमजोरी है? आपने गलतियां अनेक बार की हैं और राई के पहाड़ बना दिये हैं लेकिन आप के काम जवांमर्दों के रहे हैं चाहे आपने उनमें बेसब्री और जल्द-बाज़ी ही से क्यों न काम लिया हो। अतीत काल में आपने अपना धैर्य और साहस विदेशी सेना की नौकरी में कौड़ियों के माल बेचा है, आज आप एक दूसरे का शिर फोड़ रहे हैं। लेकिन फिर भी अकर्मण्यता और निठल्ले रहने से कुछ न कुछ करना कहीं अच्छा है आज हमारे देश में नपुंसकता का सर्वत्र राज्य है। किन्तु भाग्यवश इस अभिशाप से आप बचे हुए हैं और आप ही में नवीन भारत की सारी उच्च अभिलाषाएँ एकत्रित हैं। मुझे

तो पूरी आशा है कि हमेशा की तरह हमारी बड़ी लड़ाई में पञ्जाब ही आगे मोर्चा लेगा और हमारी वह वीर भुजा होगा जो कि ज़ालिम से हमारी आज़ादी छीन लेगा। मैं अनुभव करता हूँ कि पञ्जाब में नवीन परिवर्तन हिलोरें ले रहा है और साम्प्रदायिकता का भूत अंधकार में छिपता जाता है। मैं देखता हूँ कि नवीन आत्मा अथवा पुरानी आत्मा फिर से पञ्जाब में जन्म ले रही है। मुझे यह जान कर बड़ी ख़ुशी हुई थी कि कुछ ही रोज़ पहिले आपने पुराने ज़माने की आन बान के साथ रामनवमी मनाई थी।

"मैंने कर्मवीर बनने को कहा है लेकिन यह तभी हो सकता है जब किसी भी बड़े काम के करने के पूर्व हम शुद्ध और अविचलित भाव से आगा पीछा सोचकर चलें और यह भी भली भाँति जान लें कि नवीन संसार की रचना करने में कौन कौन सी शक्तियां काम कर रही हैं। आज ऐसे लोग इस देश में बहुत हैं जो भारत के रोगों के नुसख़े तजवीज़ करने में बड़े चतुर हैं। वैद्यों का टोटा नहीं है पर यह ज़रूर है कि उनमें से बहुतों की योग्यता में सन्देह किया जा सकता है। वे प्रायः सभी एक स्वर से सामूहिक संघठन पर ज़ोर देते हैं और उनमें से बहुतेरे

भारत की भिन्न भिन्न राजनैतिक संस्थाओं में एकता स्थापित करने का आदेश देते हैं किन्तु सिद्धान्तों, अन्तिम आदर्शों और विश्व में भारत के पद का विचार भी उनके हृदय में नहीं उठता। मेरी राय में ऐसा कोई भी निर्णय जो हमारे देश के भीतर और बाहर की सच्ची दशा का ध्यान नहीं करता और हमारे अभीष्ट आदर्श को सामने नहीं रखता, हमारे प्रश्नों का सही निर्णय नहीं हो सकता। हम आज़ादी, स्वराज्य और औपनिवेशिक स्वराज्य का नाम ज़रूर लेते हैं, बहस भी कर लेते हैं लेकिन उन शब्दों में से प्रत्येक के लिये हमारा सब का एक एक अलग अर्थ है। कुछ तो हममें ऐसे हैं जो प्राचीन सभ्यता फिर से क़ायम करना चाहते हैं, कुछ उसके बचे खुचे निशानों तक को मेटने के लिये आतुर हैं और आँख बन्द कर पश्चिम के सारे तरीक़े और रास्ते अपना रहे हैं। लेकिन असल में हमारा ध्येय है क्या? हम अपने मुल्क को कैसा देखना चाहते हैं?

"इसका उत्तर देने के पूर्व यही ठीक जान पड़ता है कि विश्व आन्दोलनों पर एक गहरी नज़र डाली जाय। हम सब उन बड़े-बड़े परिवर्तनों से परिचित हैं जो औद्योगिक क्रान्ति से हुए हैं भारत उनसे उतन: अधिक

प्रभावित नहीं हुआ जितने कि दूसरे देश। हम यहां इन सारे परिवर्तनों के विस्तार में न पड़कर कुछ उनके ख़ास प्रभावों पर ही दृष्टि डालना ठीक समझते हैं। औद्योगिक उन्नति के कारण पैदावार में वृद्धि हुई है, धन में वृद्धि हुई है और धन के असमान विभाजन में वृद्धि हुई है क्योंकि यह धन कुछ ख़ास देशों और कुछ ख़ास व्यक्तियों के हाथ ही लगा है। उसका फल यह हुआ है कि कच्चे माल और बाज़ारों के लिये समृद्धिशाली देशों में छीना झपटी होने लगी है और इसी से पिछली शताब्दी में साम्राज्यवाद की सृष्टि हुई है। उसने युद्धों को जन्म दिया है और उसी ने वर्तमान औपनिवेशिक राज्यों की रचना की है। भावी युद्धों के बीज बोने का श्रेय भी उसी के बांट पड़ा है। आज उसने आर्थिक साम्राज्यवाद का रूप धारण कर लिया है जो बिना मुल्क जीते हुए भी दूसरी क़ौमों का धन झपटने में उतना ही कारगर और क़ाबिल है जितना कि पिछला कोई दूसरा साम्राज्य। यह सब किसी से छिपा नहीं है किन्तु यह अभी शायद सब लोग नहीं विचार सके हैं कि उद्योगवाद का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप क्या हो जाता है। उसने राष्ट्रीय सीमाओं की लकीरोंको मिटा दियाहै और सबलसे सबल राष्ट्रको भी

दूसरे देशों का आश्रित बना दिया है। राष्ट्र प्रेम का भाव आज भी वैसा ही प्रबल है जैसा कि पहले था और उस के पवित्र नाम पर अब भी ख़ूब लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हैं और लाखों मनुष्य कट कट कर गिर रहे हैं। लेकिन वास्तव में अब यह केवल ढकोसला मात्र रह गया है और इसमें सच्चाई नाम मात्र को भी नहीं है। विश्व में अन्तर्राष्ट्रवाद की धूम है, उपज अन्तर्राष्ट्रीय है, बाज़ार अन्तर्राष्ट्रीय है और माल इधर से उधर ले जाना भी अन्तर्राष्ट्रीय है; केवल कमी एक है और वह यह कि मनुष्य के विचार पर परम्परा की एक ऐसी गहरी छाप लगी है जिसका आज कोई अर्थ नहीं। वास्तव में कोई भी क़ौम आज़ाद नहीं और सभी एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। यथार्थवाद की दुनियां बदल चुकी है लेकिन हमारे विचार उसी पुराने कूड़ेखाने के हैं, यही झगड़ा है और यही समाज की अशान्ति का कारण है।

"फिर अगर पश्चिम में वास्तविकता और विचारों के बीच में दीवार खड़ी है तो इसमें आश्चर्य क्या है यदि परम्परा के पुजारी भारत में यह अन्तर और भी अधिक है? हम में से बहुत से, संसार की घटनाओं की ओर से आँख बन्द किये, बाबा आदम के ज़माने में

रह रहे हैं और अब भी इस सोच में हैं कि वे उसे फिर उसी ज़माने को वापिस ला सकते हैं। कुछ चाहते हैं कि वैदिक युग फिर से लौट आवे और हमारे दूसरे भाई प्रारम्भिक लोकमत पूर्ण इस्लाम की पुनरावृत्ति चाहते हैं लेकिन—

"विधाता की लेखनी लिखती है और लिखती हुई क्रमशः आगे बढ़ती है; विश्व का सारी पवित्रता और बुद्धिमत्ता उसे आधी लकीर भी काट देनेके लिये फुसला नहीं सकता।

"हम भूल जाते हैं कि हमारी आर्य सभ्यता उच्च अवश्य थी किन्तु वह एक भिन्न काल और भिन्न दशा के लिये थी। आज औद्योगिक युग में हम प्रारम्भकाल की सी ग्राम्य व्यवस्था जैसी कि वैदिक युग में थी, नहीं कायम रख सकते; यह तो और भी कठिन है कि हम अपने इस देश में उस सभ्यता को स्थापित कर सकें जो ३०० वर्ष पूर्व एक मरु देश के लिये बनायी गई थी। हमारे बहुत से आचार विचार, पुराने ढर्रे, सामाजिक नियम, जाति भेद, स्त्रियों का समाज में स्थान, और धर्म के बोझीले ढकोसले, अतीत की वस्तुएं हैं जो उस गुज़रे हुए ज़माने में भले ही उपयुक्त हों लेकिन वर्तमान परिस्थिति के पूर्णतया प्रतिकूल हैं। वे आज वास्तविकता

के विरुद्ध झूंठी आवाज़ें हैं। मनुष्यों के विचार भले ही पुराने बने रहें किन्तु यह सम्भव नहीं है कि समय की गति और जीवन का विकास रोका जा सके।

"किन्तु जहाँ कहीं दोनों में विरोध होता है, रगड़ उत्पन्न होती है, गति नाश होती है और उन्नति की प्रगति धीमी हो जाती है। जहां वास्तविकता और विचारोंमें साम्य स्थापित हो जाता है, वहां वह सौभाग्यशाली देश एक बार ही उन्नति के शिखर पर पहुंच जाता है। हमारे सामने पराजित, पिछड़े हुए, असंगठित और परम्पराभक्त टर्की का उदाहरण है जो एक ही रात में कमालपाशा के जोशीले नेतृत्व में एक महान और शीघ्रोन्नति प्राप्त देश में बदल गया। हमारे सामने रूस की मिसाल भी है जहाँ एक चरित्रहीन, अशिक्षित, और असंगठित जाति उस बीरता के सांचे में ढल गई जिस से उत्पन्न हुए वीरों ने युद्ध, दुर्भिक्ष, रोग, और संसार भर की शत्रुता का मुक़ाबिला किया और उन पर विजय प्राप्त की। उसी प्रकार भारत की भी उन्नति होगी जब वह परम्परा और ढकोसलों को आधुनिक वास्तविकता के सम्मुख ठुकरा देगा।

"इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार आज एक सूक्ष्म और पेचदार मशीन हो गयी है जिसका एक भाग दूसरे भाग पर आश्रित है। फिर यह कैसे सम्भव है कि भारत शेष सारे संसार को भूल जाये अथवा स्वयं एकान्तवास का सुख भोगे? भारत के लिये आवश्यक है कि वह विश्व आन्दोलनों का रहस्य समझे और उनके बनाने में अपना उचित हिस्सा ले। भारत के लिये यह भी ज़रूरी है कि वह अपने विचारों को वाक़यात और यथार्थताओं के साथ साथ रक्खे। जिस दिन वह ऐसा करेगा उस की उन्नति आशातीत होगी।

"मैंने उद्योगवाद और आधुनिक संसार पर उसके असर की चर्चा की है। उस की बुराइयाँ स्पष्ट हैं और हम में से बहुत से उससे घोर घृणा करते हैं। किन्तु हम उनको चाहें या न चाहें हमें यह जान लेना चाहिये कि उद्योगवाद की बढ़ती रुकना असम्भव है। भारत तक में वह तेज़ क़दम बढ़ा रहा है और कोई भी देश उस की भावी प्रगति नहीं रोक सकता। क्या हम भी उसके सारे दोषों के आगे सर झुका दें या उस के अधिकाँश बड़े दोषों से रक्षा करने ही में हमारा लाभ है? हमें यह स्मरण रहे कि उद्योगवाद का अर्थ बड़ी मशीनें हैं और मशीन

केवल एक औज़ार है जो भले और बुरे दोनों के लिये बर्ता जा सकता है। हमें औज़ार को दोष न देना चाहिये अगर आदमी उसका दुरुपयोग करता है और स्वयं उस से हानि उठाता है।

"पश्चिम में उद्योगवाद ने ज़बर्दस्त पूँजीवाद और साम्राज्यवाद को जन्म दिया है। हम में से बहुत से लोग जो ब्रिटिश साम्राज्य की निन्दा करते हैं यह नहीं सोचते, कि यह ब्रिटिश जाति अथवा भारत की ही विशेष सम्पत्ति नहीं है, या यह कहिये कि पूँजीवाद के ज़रिये से हुई औद्योगिक उन्नति का वह अनिवार्य फल है। क्योंकि पूँजीवाद से एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को दुहने एक समूह दूसरे समूह से धन खींचने और एक देश दूसरे देश की सम्पत्ति हरण करने के लिये वाध्य होता है। इसी कारण हम इस साम्राज्यवाद और उसके अन्तर्गत दोहन के विरोधी हैं। हमें एक ओर तो पूँजी-वाद की प्रणाली ही का विरोध करना चाहिये। और दूसरी ओर अपने देश पर दूसरे के आधिपत्य के विरुद्ध लड़ना चाहिये। हमारे सामने केवल एक ही मार्ग है और वह है—किसी प्रकार का साम्यवाद—अर्थात् उपज और खपत का सारा इन्तज़ाम राज्य के हाथ में आ जावे।

हमें इसी पथ का पथिक बनना पड़ेगा और यदि वास्तव में हम समाज का संगठन अधिक अच्छा बनाना चाहते हैं, और आपस की लूट खसोट बन्द करना चाहते हैं तो हमें अपनी शक्ति साम्यवाद की ओर ही लगानी पड़ेगी।

"यदि हम परिणामों पर विचार करें तो हम इसी नतीजे पर पहुँचेंगे कि हमें ब्रिटिश साम्राज्य का भारत में न केवल राष्ट्रीय भाव से विरोध करना चाहिये वरन सामाजिक और औद्योगिक दृष्टि से भी। यह और भी अधिक आवश्यक है क्योंकि साम्राज्यवाद की आधुनिक ग़ुलामी पुरानी भूमि छिन जाने की ग़ुलामी से भी बदतर है। आर्थिक साम्राज्यवाद की छिपी हुई जंज़ीरों से हमें सदैव सचेत रहना चाहिये। इंगलैंड हमें भले ही राजनैतिक स्वतंत्रता अधिक भाग में दे दे किन्तु इस का कुछ भी मूल्य न होगा यदि वह हमें आर्थिक ग़ुलामी में जकड़ देता है। कोई भी भारतीय पूँजीवादी अथवा साम्यवादी इच्छा पूर्वक इस दशा को पसंद न करेगा यदि इस नयी दासता का वह पूरा पूरा अर्थ समझता है।

"एक दूसरा परिणाम हमारे साम्यवाद के सिद्धान्त मानने का यह होगा कि कुलीनता, जन्म, और जाति पर

निर्धारित रस्मों से हमें बिदा मांगनी पड़ेगी। हमें अपने भावी समाज से ठलुओं को भगाना पड़ेगा ताकि हमारे वे असंख्य भाई जो जीवन के समस्त सुखों से वंचित हैं, उनमें अपना कुछ हिस्सा ले सकें। स्मरण रहे दरिद्रता और ज़रूरतें आज आर्थिक आवश्यकतायें नहीं रहीं फिर भी यह बात अवश्य है कि वर्तमान पूंजीवादी गोरख धंधे में यह कठिनाइयाँ अवश्यम्भावी हो रही हैं। संसार में और हमारे देश में पैदावार की अथवा पैदा करने की इतनी क्षमता है कि साधारण लोग भी ऊँचे दर्जे का जीवन व्यतीत कर सकते हैं। दुःख केवल इतना है कि संसार की सभी सुन्दर चीज़ें कुछ चुने हुए हाथों में जा पड़ी हैं और लाखों लोग भूखों मर रहे हैं। भारत-वर्ष में—दुर्भिक्षों के लिये मशहूर भारत में—अकाल खाने की कमताई से नहीं पड़ते, यहाँ के अकालों का कारण हमारी हद दरजे की गिरी हुई ग़रीबी है। यहाँ अकाल पैसे का है अन्न का नहीं।

"तीसरे परिणाम का हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि कोण पर प्रभाव पड़ेगा। यदि हमारा साम्राज्यवाद से बैर है और हम जानते हैं कि यह भी अर्थवाद का एक अङ्ग है तो हमारा यह कर्तव्य

है कि जहाँ कहीं हमें पूँजीवाद का दर्शन हो हम उसे उखाड़ फेंकने को प्रस्तुत हो जावें। इस मैदान में भी इंगलेंड सबसे बड़ी पूँजीपति और साम्राज्यवादी शक्ति होने के कारण हमारा प्रमुख शत्रु हो जाता है, और इंगलेंड और भारत के बीच में कभी भी सच्चा सहयोग नहीं हो सकता जब तक कि इंगलैंड आधुनिक उन्नतिपूर्ण विचारों का स्वागत नहीं करता।

"इन सब बातों पर ग़ौर करते हुए हमें संक्षेप में भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है। अगर राष्ट्रीय महासभा ने उसे स्वीकृत न भी किया होता, तो मुझे विश्वास है कि तो भी उसके आप समर्थक ही होते। किन्तु हमारे वृद्धजनों और हमारे मित्रों को कुछ थोड़े से विचित्र तरह के विश्वास और भ्रमों के रोगों ने घेर लिया है और उन रोगों में से एक ब्रिटिश साम्राज्य है। अपने जीवन भर के पेशों और आदतों से वे लाचार हैं, और अपने आप पहनी हुई बेड़ियां छोड़ने को वे तय्यार नहीं हैं। आज का ब्रिटिश साम्राज्य क्या है—तृतीय ब्रिटिश साम्राज्य जैसा कि उसके एक उत्साही समर्थक ने कहा है। अगर हम भारत और अन्य उपनिवेशों को छोड़ दें तो उस की

दशा किसान को उस "बिल्ली की तरह हो जायगी जिसका शरीर तो सारा चुन गया है केवल कंकाल भर शेष रहा है।" जीवन रहित यह कंकाल कब तक चलेगा इस का निर्णय मैं आप पर छोड़े देता हूँ। संसार समझ गया है और यह प्रायः सभी जानते हैं कि वह अधिक काल का मेहमान नहीं। साम्राज्य तेज़ी से खंड खंड होने जा रहा है और कोई भी विश्व संकट उसका अन्त कर सकता है। ब्रिटिश जाति समयानुकूल परिवर्तन करने में बड़ी चतुर रही है और यही उसकी महान शक्ति का रहस्य है और इसी के कारण उसका शासन इतने दिनों तक क़ायम रह सका है। लेकिन दुनियां बेदम हो कर दौड़ रही है और परिवर्तन इतने बड़े और इतनी तेज़ी से हो रहे हैं कि इंगलैंड उनका साथ देने में असफल हो रहा है, और हाल की घटनाओं-विशेष कर भारत सम्बन्धी घटनाओं से यह पता चलता है कि इंगलैंड वालों की पूर्व चतुरता का नाश हो गया है। फिर भी साम्राज्य रहे या न रहे, यह कैसे सम्भव है कि भारत का उसमें कोई स्थान रह सकता है जब कि उसके राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय और आर्थिक हितों में इंगलैंड के साथ बात बात में विरोध पाया जाता है।

अगर हमें वाक़यात से सामना करना है तो वर्तमान अन्त-र्राष्ट्र वाद के सम्मुख शिर झुकाना होगा। हम एक दम पूरे पूरे स्वतंत्र नहीं हो सकते। जब हम स्वतंत्रता की चर्चा करते हैं तब हमारा मतलब ब्रिटिश सम्बन्ध तोड़ने से है। बाद में हम अन्य देशों से जिन में इंगलैंड भी शामिल है मैत्रिक सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। ब्रिटिश काम-नवेल्थ (संयुक्त ब्रिटिश राज्य) सुनने में तो बड़ा रोचक नाम मालूम पड़ता है लेकिन वह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापन करने में नितान्त असमर्थ है, और अपनी विश्व नीति में वह सदैव स्वार्थी और संकीर्ण आदर्शों का पोषक और संसार की शान्ति का शत्रु रहा है।

"यदि स्वतंत्रता ही हमारा एकमात्र और निश्चित ध्येय है तो हम किसी भी तर्क अथवा न्याय के अनुसार विदेशी शत्रुओं से भारत रक्षा के लिये ब्रिटिश जाति का सहारा नहीं ले सकते। मैं यह तर्क पूरी तौर से मानता हूँ कि यदि अपनी सीमाओं की रक्षा के लिये हमें अंग्रेज़ों की ज़रूरत है तो हम स्वतंत्रता के योग्य नहीं हैं। किन्तु मैं इस बात को ज़रा भी नहीं मानता कि बिना अंग्रेज़ों की मदद के हम विदेशी हमले नहीं रोक सकते।

आज संयुक्त प्रान्त अमेरिका को छोड़कर दूसरा कोई देश ऐसा शक्तिशाली नहीं है जो कई देशों की मिली हुई शक्ति के मुक़ाबिले में ठहर सके। इंगलेंड भी वास्तव में इतना शक्तिशाली नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इस लिये इंगलेंड की आज़ादी छुन ली जावे और उस पर विदेशी शासन लाद दिया जावे। प्रत्येक देश की रक्षा कई बातों पर निर्भर रहती है—अपने पड़ोसी मुल्कों की मित्रता पर और विश्व की साधारण दशा पर। अगर भारत की रक्षा के प्रश्न का इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए विचार किया जाय तो भारत की शक्ति स्पष्ट हो जाती है। उस को कोई बड़ा ख़तरा नहीं है और सैनिक दृष्टि से भी वह किसी प्रकार कमज़ोर नहीं है। लेकिन अगर हम मान भी लें कि ख़तरा है तो क्या यह कम शर्म और क़ायरता की बात है कि हम एक ऐसी क़ौम की मदद मांगें जो हमें पहिले सताती थी और आज भी सता रही है और साथ ही हमारी सारी उन्नति रोक रही है। स्वतंत्रता कुछ भी अर्थ क्यों न रक्खे और चाहे उस के स्थान में हम कोई भी शब्द क्यों न प्रयोग करें? यह बात हमें अवश्य अपने कार्यक्रम के भीतर रखनी होगी कि इस देश से सब से पहिले ब्रिटिश सेना का पहरा

उठाया जाय। यही स्वतंत्रता का सच्चा अर्थ है। जब तक यह नहीं होता सारी कथा कपोल कल्पित तथा सारहीन है।

"हम अपने देश की आज़ादी के लिये कितने ही कारण क्यों न खोज डालें लेकिन उस का सब से बड़ा कारण हमारी आर्थिक अवस्था सम्बन्धी है। स्वराज्य की लड़ाई में अभी तक हमारे शिक्षित समाज ने ही नेतृत्व ग्रहण किया है। कारण भी स्पष्ट है। उन पर आर्थिक दबाव ज़्यादा पड़ा था शेष सब कहने की बातें थीं। इसी कारण नौकरी में अधिक भारतीय रखने और ऊंचे ओहदों पर भारतीय लोगों को जगह देने की आवाज़ उठायी गई है। इस कार्य के लिये वे ही दोषी हैं। उन्होंने वही किया है जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये प्रत्येक व्यक्ति करता है। लेकिन ऐसा करने में उन्हों ने आम लोगों की आवश्यकताओं का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा है। जब कभी जनता पर असर डालने वाले भारी मसले पेश हुए हैं तो उन को टाल दिया गया है अथवा स्वराज्य आने तक स्थगित कर दिया गया है। यह कहा गया है कि अभी से मामले में अड़चन क्यों डाली जाती है हम अपने झगड़े बाद में तय कर सकते हैं। सभी गिरोह का हित ध्यान में रखने वाले लोगों की भाँति वे भी अपने को राष्ट्र का सब

से अधिक महत्व-पूर्ण अङ्ग समझते हैं और आजादी के पवित्र नाम पर उन्होंने केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि ही की चेष्टा की है। हमारे बहुत से पढ़े लिखे भाई उपाधि और पद प्राप्ति के साथ ही साम्राज्य के अनुचित अधिकारों के कट्टर समर्थक हो गये हैं। मैं पूछता हूँ कि यदि अंग्रेजों का प्रत्येक पद हिन्दुस्तानियों को दे दिया जाय तो इनसे इस देश की जनता को—किसानों, बे घर के मज़दूरों, शिल्पकारों, दूकानदारों और दस्तकारों को—क्या लाभ पहुँचेगा, हां यह अवश्य है कि वे अपने देशवासियों पर विदेशी सरकार की अपेक्षा अधिक प्रभाव डाल सकते हैं। लेकिन इस परिस्थिति में कोई विशेष लाभदायक परिवर्तन नहीं हो सकता जब तक कि समाज की वर्तमान व्यवस्था ही न बदल दी जाय और मेरा तो यही विश्वास है कि यह परिवर्तन लोकमतपूर्ण साम्यवादी राज्य के सिवाय दूसरा नहीं हो सकता। लेकिन हमारे दिमाग़ी दोस्तों के संकुचित दृष्टि-भाव में भी यह बात अब अच्छी तरह समा गयी है कि बृटिश सरकार पर जनता के पूर्ण सहयोग के बिना कोई दबाव नहीं डाला जा सकता। यह स्वीकार करते हुए भी वे जनता का भय खाते हैं और कुछ करते धरते नहीं। जनता को मदद स्वराज्य के धुँधले

आदर्श उपस्थित करने से नहीं मिल सकती। यह तो तभी सम्भव हो सकती है जब कि जनता के दिल में यह बात पूरे पूरे तौर पर बैठ जाय कि स्वराज्य से उनका क्या लाभ है। इसीलिये यह परमावश्यक है कि हम उनके सामने एक साफ़ साफ़ आर्थिक प्रोग्राम रख दें और अपना अन्तिम ध्येय सदैव सामने रक्खे रहें और साथ ही तुरन्त उन रास्तों पर चलना शुरू कर दें जिनसे उनके कष्टों में कुछ कमी मालूम पड़ने लगे।

"अतएव हमारा आदर्श सिर्फ़ एक प्रजातंत्र राज्य ही हो सकता है जिसमें कि साम्यवाद अपना एक विशेष स्थान रखता हो। इसके लिये हमें काम शुरू कर देने की भी ज़रूरत है। किन उपायों का हमें सहारा ढूँढ़ना चाहिये? यह तो आधुनिक संसार को एकदम पलट देने वाली सी क्रान्ति है और क्रान्तिमय परिवर्तन सुधारवादियों की चालों और उनके उपायों द्वारा नहीं किये जा सकते। वह सुधारक जो कि एक दम नये परिवर्तनों से घबड़ाता है अथवा अत्याचारी शासन के मिटाने में झिझकता है और ख़ाली उसके कुछ दोषों ही को हटा देने से सन्तुष्ट हो जाता है वास्तव में उसका समर्थक ही बन बैठता है। हमारे लिये इसलिये यह ज़रूरी है कि हम

अपने विचार एक दम क्रान्तिकारी बना लें—ऐसे क्रान्तिकारी कि बड़े से बड़े और नवीन से नवीन परिवर्तन हमें तुच्छ जान पड़ें और मुर्दा दिल सुधारक की मुर्दा दिली हमें छू भी न जाय। मौजूदा हालत में हिंसा का मार्ग तो हमारे लिये बन्द पड़ा है। रास्ता सिर्फ़ एक बचा है और वह है असहयोग का कोई रूप। क्रान्तिमय वातावरण बनाने वाला कोई भी उपाय अपने शत्रुओं के सामना करने में हमारा सहायक हो सकता है। मैं क्रान्ति शब्द का प्रयोग उसके ठीक अर्थ ही में कर रहा हूँ जिसका हिंसा से कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं है। मैं यह कहता हूँ कि हिंसा सम्भव है पर वैसी नहीं जैसी की उलटे ढंग की भारत में होती है। वह तो एकदम क्रान्ति के विपरीत है। ख़ून-ख़राबी के काम प्रति-हिंसा के उलटे भाव जागृत करने में समर्थ होते हैं और केवल इसी बुनियाद पर, और बातों को छोड़ कर भी, वे राष्ट्रीय हित के लिये घातक होते हैं। दो चार आदमियों के ख़ून-ख़राबी के कामों से आज तक किसी राष्ट्र का निर्माण नहीं हुआ।

"कई साल पेश्तर इस मुल्क में कौंसिलों में जाने के मसले पर गहरी बहस छिड़ी थी और उसकी आवाज़ अब भी कहीं कहीं से लौटती सुन पड़ती है। कुछ का

तो वह आत्मविश्वास, पवित्र सिद्धान्त, और धार्मिक मसला बन गया था लेकिन इसकी सबसे सहल जाँच यह है कि उसका राष्ट्रीय दिमाग़ पर असर क्या पड़ा है। मुझे यह ख़ूब मालूम है कि कौंसिल का जाना कुछ हिस्से तक अनुकूल वातावरण बनाने में सहायक है। लेकिन यह भी तभी सम्भव है जब कि एक आदर्श और एक ख़ास भाव को लेकर काम किया जावे न कि उनसे ख़ास सुधार पाने की इच्छा की जाय। लेकिन यह मुझे स्वीकार कर लेना चाहिये कि हमारी कौंसिलों के योग्य और भीम गर्जना करने वाले चतुर वक्ताओं को कोई कभी भूल से भी क्रान्तिकारी नहीं कह सकता।

"पर आप कहेंगे कि यह सब तो बिल्कुल दुरुस्त है पर है यह सब तथ्यहीन। आप के सामने सब से बड़ी समस्या तो साम्प्रदायिकता या फ़िरकेबन्दी दूर करने की है। मैंने आप से आरम्भ ही में निवेदन कर दिया है कि मैं भारत का किस प्रकार का निर्माण चाहता हूँ। उसमें साम्प्रदायिकता और रूढ़ि के उपासकों को स्थान ही नहीं है। यह मैं जरूर मानता हूँ कि हमें साम्प्रदायिकता से ज़बर्दस्त लड़ाई लड़नी है और उस की दम लेकर ही शान्त होना है। लेकिन वह वैसी हौआ तो है

नहीं जैसा कि उसे रूप दे दिया गया है। वह आज भले ही विशालकाय देव जान पड़ता हो पर पैर तो उसके मट्टी ही के बने हैं। उसकी उत्पत्ति का कारण हमारा क्षणिक आवेश और ग़ुस्सा है जो हमारी तबियत ठिकाने आते ही हवा हो जायगा। इस ढकोसले का असलियत से कोई सम्बन्ध नहीं और उसकी मृत्यु निश्चित है। असल में तो हमारे नौकरी और ओहदे की चाह में पागल शिक्षितों ने उसे जन्म दिया है। क्या किसी हिन्दू, सिक्ख अथवा मुसलमान के आर्थिक हितों में भेद है। कोई नहीं, क्योंकि भिन्न २ धर्म पालन करने ही से इनमें फ़र्क नहीं पड़ता। यह हो सकता है कि कहीं किसी हाईकोर्ट के जज की जगह ख़ाली हो या कुछ ऐसी ही बात हो तो साम्प्रदायिकता की पुकार किसी एक मनुष्य का भला कर सकती है। लेकिन उसकी जाति का इससे कुछ बिगड़ता बनता नहीं। किसी हिन्दू या मुसलमान किसान का किसी हिन्दू या मुसलमान जज की कुर्सी तोड़ने से क्या भला होता है? आर्थिक हितों का तो सम्बन्ध ही दूसरा होता है। हिन्दू सिक्ख, और मुसलमान ज़मींदार सभी प्रायः मिलते जुलते हैं, हिन्दू और मुसलमान किसान भी कोई दो तरह के नहीं होते और

मुसलमान ज़मींदार और किसान में भी कुछ कम अन्तर नहीं है। बस हमारा फिर यह फ़र्ज है कि हमारे विचार और रहने के ढंग आर्थिक हितों की समानता पर बदले जावें। अगर हमने यह कर लिया तो साम्प्रदायिकता का नामोनिशान आप ही आप मिट जायगा। संघर्ष भले ही होता रहे लेकिन वह भिन्न २ गिरोहों में होगा न कि धर्मों में।

"कौन से साम्प्रदायिक हितों की रक्षा आवश्यक है? मेरे विचार से प्रधानतया सभ्यता सम्बन्धी। संसार के सभी देशों में भिन्न २ सभ्यताओं के लोग छोटे २ टुकड़ों में रहते हैं और यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त सा है कि अपनी अपनी सभ्यता के मामलों में उन्हें पूरी पूरी आज़ादी रहे। वही हिन्दुस्तान में भी होना चाहिये, हरेक अल्प-संख्यक समुदाय को अपनी सभ्यता सम्बन्धी आज़ादी होना चाहिये और उसे अपनी सभ्यता की रक्षा करने और उन्नति करने में उत्साहित करना चाहिये बस यही एक मार्ग है जिस के द्वारा एक ज़बर्दस्त किन्तु भिन्नता रखती हुई एक सी सभ्यता भारतवर्ष के लिये कायम हो जावे। उसी सभ्यता में भाषा, शिक्षा, और पाठशालाओं का विधान रहेगा।

"अगर सभ्यता का यह सवाल ठीक ठीक हल हो गया और अल्प-संख्याओं के हितों की रक्षा के लिये कुछ उपाय सोच रक्खे गये जिनसे वे ख़तरे से बच जावें तो फिर साम्प्रदायिकता रह ही कहाँ जाती है? अगर हम इतना और कर दें कि सारे चुनाव भूमि विभाग के आधार पर न करें और आर्थिक अवस्थानुसार किसी रूप में चुनाव करें तो हम न केवल एक सुव्यवस्थित और उन्नत-शालीन राज्य व्यवस्था की स्थापना कर सकेंगे वरन् सम्मिलित और पृथक चुनाव तथा स्थान संरक्षण के प्रश्नों ही को सदा के लिये मिटा देंगे। यह अब क़रीब क़रीब सभी मानने लगे हैं—कम से कम उन्हें मानना तो चाहिये ही कि पृथक चुनाव, अल्प-संख्याओं का भला करने के विपरीत उन का बुरा ही करते हैं और राज्य में उन की असली शक्ति घटा देते हैं। अगर उसके विरोध का सवाल कभी कहीं उठे भी तो सब से पहिले वह अल्प-संख्याओं द्वारा ही उठना चाहिये। लेकिन परम्परा ने कुछ ऐसा मन्त्र फूंक दिया है कि हम में से बहुत से तो यह समझ बैठे हैं कि प्रथक चुनाव बड़ी "मूल्यवान वस्तु है" जिस को हमें हृदय से लगाये रहना चाहिये। मेरा विश्वास है कि पक्षपात अथवा कट्टरता से शून्य कोई भी व्यक्ति थोड़े

से विचार के उपरान्त यह समझ लेगा कि पृथक चुनाव राज्य के लिये तो ख़तरनाक है ही परन्तु अल्प-संख्यक समुदाय के लिये तो वह और भी ज़्यादा भयानक है। मैं ख़ुद तो प्रान्तानुसार चुनाव ही का घोर विरोधी हूँ लेकिन उसके क़ायम रखने पर भी पृथक चुनाव के मानने को तो मैं कतई तैयार नहीं।

"मैं साम्प्रदायिक आधार पर स्थान संरक्षण करना ठीक तो नहीं समझता किन्तु अगर लोगों को यही अच्छा जान पड़ता है तो मुझे उसे स्वीकार करने में भी आपत्ति नहीं। हमें तो वास्तविकता से सामना करना है और सच्ची बात तो यह है कि कुछ लोगों का इस पर धार्मिक विश्वास सा हो गया है। लेकिन यह मैं फिर भी कहूँगा कि इस प्रकार का कोई भी प्रबन्ध अस्थायी ढंग का ही हो सकता है। कुछ थोड़े से आदमियों को आगे आने वाली सन्तान के हाथ बांधने का कोई हक़ नहीं है और मेरा यह विश्वास है कि भावी सन्तान हमारी सारी समस्याओं पर, धर्म और साम्प्रदायिक पक्षपात का चश्मा हटा कर दृष्टि डालेगी। लेकिन हम में से उन लोगों का जो साम्प्रदायिकता में विश्वास नहीं रखते और जो धर्म का राजनीति और अर्थ-शास्त्र से सम्बन्ध नहीं जोड़ते,

कर्तव्य है कि हम लोग अपनी लगाम कसलें और इन साम्प्रदायिकता के भक्तों को मनमानी करने न दें।

"इस काफ़ी लम्बे भाषण में मैंने साइमन कमीशन की चर्चा नहीं की है। इसका कारण एक तो यह है कि जिस समस्या का हमें सामना करना है वह इससे कहीं विशेष गम्भीर है। दूसरी बात यह भी है कि आप में से यहां मौजूद कोई शख़्स शायद ही मुझसे साइमन कमीशन के वहिष्कार के पक्ष की दलीलें सुनने का इच्छुक होगा वह वहिष्कार तो कुछ चन्द डरपोक दिलों के कमजोरी दिखलाने पर भी चला ही आ रहा है और ब्रिटेन और भारत के बीच की "खाई भरने" की तदबीरों से उस पर कुछ भी असर नहीं पड़ा है।

"आसानी से यह खाई भरी भी नहीं जा सकती। और यह समझना केवल अपनी आत्मा को धोखा देना है कि वह ऐसी आसानी से भरी जा सकती है। मित्रता और सहयोग की सुदृढ़ नींव पर पुल बनाने के पूर्व यह आवश्यक है कि आज हम उन जन्ज़ीरों को तोड़ डालें जिन से भारत को इंगलैंड ने जकड़ दिया है। सच्चा सहयोग तो तभी सम्भव हो सकेगा। यह हो सकता है कि हमारे कुछ मित्र अब भी सहयोग की सु[illegible]क्षित और

सौख्य-पूर्ण गलियों द्वारा वहां पहुंचने को बेतरह आतुर हैं। अगर ऐसा ही है तो हमें दुख से कहना पड़ता है कि हमारा उनका साथ नहीं चल सकता, वे सुख से अपने निर्दिष्ट पथ के पथिक बनें। हम तो पीछे भागने वालों की तरफ़ बिना देखे हुए भी बहिष्कार में लगे ही रहेंगे लेकिन पब्लिक मीटिंगों और प्रस्तावों द्वारा किया जाने वाला साइमन कमीशन का बहिष्कार सब से हीन उपाय है। फिर ज़ोरदार बहिष्कार कैसे हो सकता है?

"विदेशी वस्तुओं का बायकाट करने के लिये हम से कहा गया है और यह उचित भी है। मुझे आशा है कि इसमें हम यथा सम्भव सफल भी होंगे। लेकिन यह हमें न भूलना चाहिये। कि ऐसा आम बायकाट भावुकता की दृष्टि से तो ठीक जचना है लेकिन उससे हमारा अधिक काम नहीं निकलता। असली बायकाट यदि कोई हो सकता है तो वह है विदेशी कपड़े का बहिष्कार। क्या हम ब्रिटिश कपड़े का ज़ोरदार बायकाट कर सकते हैं? मेरे ख़याल से भारत की मौजूदा हालत निम्नांकित सी है:—हमारे मिल हमारे पहिनने का तिहाई भाग पैदा करते हैं, हमारे जुलाहे एक दूसरा तिहाई भाग तैयार करते हैं

और बाकी तिहाई माल बाहर से आता है जिसका नब्बे फ़ी सैकड़ा हिस्सा इंगलैंड का है।

"आज देश में केवल ब्रिटिश वस्त्र बायकाट का आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा है। यह बिलकुल न्याय संगत है और यदि हम इस में पूर्ण सफल रहे तो हम इंगलैंड के बन्धनों से मुक्त हो जायेंगे। लेकिन हमें भय है कि कहीं हम असफल न हो जायें और इसका कारण हमारा अन्य विदेशी वस्त्रों का स्वागत करना हो। ब्रिटिश वस्त्र तब जापानी या किसी और नाम के धोखे से आ सकेगा और साधारण खरीदार और दुकानदार दोनों ही के लिये उन दोनों की पहचान असम्भव हो जायेगी। यह व्यवहारिक कठिनाई दूर नहीं की जा सकती और इससे प्रकट होता है कि ब्रिटिश वस्त्र के साथ साथ अन्य विदेशी वस्त्रों को भी हमें छोड़ना पड़ेगा। इसका एक और लाभ यह होगा इस बायकाट में भारतीय खादी और मिल दोनों ही साथ साथ काम करेंगे।

"अगर हम अन्य विदेशी कपड़ों को खरीदते हैं तो हिन्दुस्तानी मिलों और खादी बनानेवालों में आपसही में झगड़ा खड़ा हो सकता है। इसलिये हमें विदेशी कपड़े का एक दम ही बायकाट करने देने में सारी शक्ति

लगा देनी चाहिये। इससे हमारे मिलों को भी फ़ायदा पहुंच सकेगा विदेशी वस्त्र बहिष्कार का अर्थ आज ब्रिटिश वस्त्र बहिष्कार ही है। इसका तात्पर्य यह है कि हम विदेशी तिहाई कपड़े के स्थान में भारत के बने हुए कपड़े का प्रयोग करें। इसमें कठिनता कुछ भी नहीं हो सकती अगर हमारे मिल और खादी तैयार करने वाले एक हो कर काम करें, बजाय इसके कि होड़ा-होड़ी में एक दूसरे का गला काटें। यह तो सभी जानते हैं कि थोड़ा सा समय मिलने पर भी मांग के साथ साथ खादी की पैदा-वार बढ़ाई जा सकती है। हमारे मिल भी मौजूदा कलों द्वारा ही ज़रूरत के साथ ज़्यादा कपड़ा तैयार कर सकते हैं। इससे यह निर्विवाद है कि हम विदेशी कपड़े का पूर्ण बहिष्कार करने में समर्थ हैं और सो भी निकट भविष्य में ही। बस इच्छा भर की देर है। यह इच्छा ज़ाहिर करना जनता का काम है। अगर उसने इस पर ध्यान दे दिया तो कठिनाइयां दूर भाग जावेंगी। हमें यह आशा तो नहीं कि विदेशी वस्त्र व्यापारियों को बायकाट से कोई प्रसन्नता होगी। विदेशी माल लेने वाले व्यापा-रियों और बेचने वाले दूकानदारों को हानि अवश्यम्भावी है। किन्तु क्या थोड़े से विदेशी कपड़ों के व्यापारियों के

हितों के लिये हम मातृभूमि के हितों का ख़ून कर दें। हमारे अधिकांश मिल वालों के कारनामे भी अधिक अच्छे नहीं हैं। उन्होंने देश की राष्ट्रीय जागृति से लाभ उठा कर बड़ी बड़ी रक़मे हज़म कर ली हैं और उन्होंने अपने सौभाग्य की नींव में हड्डियाँ चुन देने वाले मजदूरों को पेट भर भोजन भी देने में निर्दयता दिखलायी है। आज भी उनमें से बहुतों ने तो विदेशी कपड़े का मक़ाबिला करने के बदले मोटे खद्दर की नक़ल करना शुरू कर दिया है और लोगों के खादी प्रेम का भी वे अनुचित लाभ उठाने में नहीं लजाते। अगर उनमें कुछ भी दूरन्देशी होती और वे कुछ सच्चे हिताहित के निर्णय करने की शक्ति रखते होते तो उन्हें यह समझने देर न लगती कि उनका और जनता की भलाई एक ही है और विदेशी वस्त्र बहिष्कार के आन्दोलन में पूर्ण सहायता करने ही में उनका और राष्ट्र का अधिक लाभ है। किन्तु यह सहयोग तभी हो सकता है जब कि मिल के मालिक मजदूरों के साथ पूरा न्याय करें और कम से कम फ़ायदा लेने का वचन दें।

"हिन्दुस्तानी मिलों के कपड़े और खद्दर के द्वारा पूरा पूरा बायकाट होना सम्भव है। अगर थोड़े से मिलों के

मालिक भी हमारी शर्तें स्वीकार कर लें तो हम उनका साथ दे सकते हैं और मेरा विश्वास है कि बाक़ी लोग आप ही आप आगे चल कर हमारे आन्दोलन में खिंच आवेंगे। लेकिन अगर मिल वाले सहयोग न करें तो हमारा कर्तव्य क्या है? हमारा कर्तव्य स्पष्ट है। हम केवल खद्दर ही में अपनी शक्ति लगा कर उन बहके हुए मिल वालों के दिमाग़ दुरुस्त कर सकते हैं और विदेशी वस्त्र का बहिष्कार पूरा पूरा सफल बना सकते हैं।

"मैंने अपने भाषण के प्रारम्भिक भाग में आने वाले उद्योगवाद का ज़िक्र किया है और यह भी कहा है कि यह आये बिना रह नहीं सकता। मुझे किसी छोटी या बड़ी मशीन से वैर नहीं और मेरा विश्वास है कि ठीक तौर पर काम में लाई जाने पर वे मनुष्य की सेवा कर सकती हैं न कि उसका शासन।

"लेकिन फिर भी मैंने खद्दर पहिनने पर क्यों ज़ोर दिया है? इसका उत्तर केवल यही है कि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हमारी मौजूदा हालत में और कुछ समय तक भविष्य में भी दरिद्रता से दुखी सहस्रों भारतीयों के आँसू पोंछने की शक्ति खद्दर में है। मैं यह नहीं कह सकता कि आज से हज़ार वर्ष बाद खद्दर की हमें आवश्यकता

होगी। पर यह मैं अवश्य कह सकता हूँ कि आज वह हमारी बड़ी भारी आवश्यकता की पूर्ति कर रहा है और जहाँ कहीं उसका प्रचार हुआ है उसने सुख शान्ति ही की बृद्धि की है। इस सिद्धान्त को सभी मान लेंगे कि कृषि का केवल यही सर्वश्रेष्ठ सहायक धन्धा हो सकता है; फिर भी जो सन्देह रह गया था वह हमारे अनुभव और आँखों की गवाही ने एक दम मिटा दिया। हमारे बहुत काल से पीड़ित किसानों के दुःख दूर करने के लिये, भविष्य में भारत को कपड़े के सम्बन्ध में अधिक स्वावलम्बी बनाने के लिये, और विदेशी वस्त्र का बहिष्कार पूर्ण करने के लिये यह अत्यावश्यक है कि खद्दर पूरी तरह अपनाया जावे। कभी युद्ध तथा अन्य संकट के समय में तो खादी की आवश्यकता चौगुनी हो जाती है क्योंकि उस समय तो बाहरी कपड़े का आना आप ही आप बन्द हो जायगा। फिर हमारी आवश्यकता की पूर्ति कैसे होगी? हमारे मिल तो अपना घर भरेंगे, कपड़े के दाम दूने लेंगे, और हमारे ग़रीब भाई नंगे घूमेंगे। तब तो केवल खादी ही इज़्जत ढांकेगी। वही बढ़ती हुई माँग को पूरा करेगी और मिलों को क़ीमतें घटाने को बाध्य करेगी। अतएव युद्ध की दृष्टि से भी खादी हमारी आवश्यकता है।

"किन्तु यदि युद्ध अवश्यम्भावी है और बिगड़ती हुई हवा उसके निकट आने की सूचना दे रही है तो हमें दूसरी और अधिक महत्वपूर्ण समस्याओं से भिड़ना पड़ेगा, जिनके आगे विदेशी कपड़े के बायकाट का आन्दोलन भी महत्ता में घट जाता है। इस मामले में मद्रास कांग्रेस ने हमें रास्ता दिखला दिया है और अब यह इस सूबे के सोचने की बात है कि इस नेतृत्व का अर्थ क्या है क्योंकि लड़ाई की सारी मेहनत पंजाब ही को उठानी होगी। तुम्हारा और तुम्हारे बहादुर सिपाहियों की शक्ति का अतीत में दुरुपयोग हुआ है, न केवल भारत में, वरन् समस्त भूमंडल में। आज दिन उनसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का घृणित काम चीन में, फ़ारस में और मेसोपोटामियां में कराया जा रहा है और वे उन्हीं क़ौमों के दबाने में काम में लाये जा रहे हैं जो हमारे मित्र और पड़ोसी हैं और जिनसे हमें कोई धक्का नहीं पहुंचा। समय आ गया है जब कि हम अपने युवकों के साहस को इस लज्जा जनक लूट खसोट में नाश न होने दें। हमसे कहा यह जाता है कि हम विदेशी हमले से अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं लेकिन हमारे ही सिपाही ब्रिटिश साम्राज्य की अफ्रीका, योरुप तथा एशिया में रक्षा करने में समर्थ हैं।

आप लोग जानते हैं कि हमारी मनुष्य शक्ति और हमारे धन का अंग्रेज़ों ने पिछले युद्ध में कैसा अपव्यय किया था। आपको यह भी ज्ञात है कि हमारी सेवाओं का हमें उपहार क्या दिया गया। हमें पंजाब में इनाम दिये गये थे—रौलट एक्ट और मार्शल ला। क्या आप दुबारा धोखा खाने को तय्यार हैं—काम निकाल कर फिर से कूड़े के ढेर में फेंक दिये जाने के लिए? किसी ने कहा है कि बुद्धिमान लोग दूसरों की असफलता और अनुभव से लाभ उठाते हैं, साधारण मनुष्य अपने अनुभव से, और मूर्ख किसी से भी नहीं। हम बहुत चतुर चाहे न हों लेकिन हमारा मूर्ख बनना भी ठीक नहीं। हमें उचित है कि पहले ही से अपना इरादा कर लें कि संकट के समय हम क्या करेंगे। हमें निश्चय कर लेना चाहिए कि चाहे हम कुछ करें या न करें हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिये सिर न कटायेंगे। आओ हम मद्रास कांग्रेस के स्वर में स्वर मिला कर कह दें कि अगर ब्रिटिश सरकार कोई युद्ध छेड़ती है अथवा भारत से लाभ उठाना चाहती है तो ऐसे युद्ध से दूर रहना ही हम अपना कर्तव्य समझेंगे अथवा उससे किसी प्रकार का सहयोग न करेंगे। यह कोई आसान काम न होगा। इसके बदले हमें जुर्माना देना और कष्ट झेलना होगा।

किन्तु यदि हम में उनका सामना करने का साहस है और उन्हें अन्त तक सहने की शक्ति है और समझौता न करने की नीतिज्ञता है तो हम इस परीक्षा से विजयी होकर निकलेंगे और हमारा प्यारा देश जो अब तक विदेशी शासन से पिसता रहा है फिर से आज़ाद होगा।"

केरल प्रांतीय कान्फ्रेन्स

—:o:—

केरल प्रान्तीय कान्फ्रेन्स के सभापति के पद से जो भाषण पं० जवाहरलाल नेहरू ने २८ मई १९२८ को पय्यानूर में दिया था उसके कुछ महत्वपूर्ण अंशों का सार निम्न लिखित है—

"भारत और इंगलैंड एक से नहीं हैं और उन के आर्थिक हितों में तो प्रायः प्रत्येक मामले में किसी न किसी प्रकार का विरोध ही बना रहता है। साम्राज्य के एक ही तागे के बंधन से उन में एक दबाव का सा मेल स्थापित हो सकता है जिसका परिणाम केवल आपस का मनमुटाव और लगातार की खट खट ही होगी और जिसका लाभ केवल इंगलैंड ही उठा सकेगा।

"वर्त्तमान दशा में तो हमारा मेल शेर और बकरी का सा है—ऐसी बकरी सा जो शेर की मांद में हो। यह स्पष्ट हो जाता है यदि हम इंगलैंड के चीन, फ़ारस, मेसोपोटामियाँ, और मिश्र आदि देशों से सम्बन्धों का अध्ययन करें। इंगलैंड स्वतंत्रता प्राप्त करने में लगे हुए

इन सारे देशों का विरोध करता रहा है और स्वतंत्र मिश्र देश सम्बन्धी उसकी साम्राज्यवाद-पूर्ण नीति उसकी इस मनोवृत्ति का ताज़ा नमूना है। योरुपीय देशों के सम्बन्ध में भी वही संसार-शान्ति और सहयोग में सबसे बड़ा अड़ंगा समझा जाता है। यह अचिन्तनीय है कि भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहते हुए भी किसी अंश में सच्ची स्वतंत्रता का लाभ उठा सकता है और कम से कम मेरा तो विश्वास है कि आप तो ज़रूर ही मद्रास कांग्रेस के उस प्रस्ताव का स्वागत करेंगे जो हमारा ध्येय पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता बतलाता है। इस का यह अर्थ कदापि नहीं कि हमारा इंगलैंड अथवा दूसरे किसी देश से द्वेष है, यह तो एक शर्त भर है जिसका, अन्य देशों से (जिसमें इंगलैंड भी शामिल है) शांतिमय सम्बन्ध स्थापित होने के पूर्व, पूरा होना आवश्यक है। मद्रास कांग्रेस का एक विशेष महत्व यह है कि वह हमारी उस दीनता, दासता और असहायता-पूर्ण मनोवृत्ति पर हमला करती है जो हमारे हृदय में पीढ़ियों के विदेशी शासन ने भर दी है। वह हमारे हृदय में स्वतंत्र होने की वह इच्छा जागृत कर देती है जिसके बिना स्वतंत्रता का दर्शन दुर्लभ है। आज ऐसे लोग बहुत हैं जो भारतीय

स्वतंत्रता को केवल आध्यात्मिक भाव से देखते हैं। वे स्वतंत्रता का गीत तो गाते हैं परन्तु उसकी चोट अपने अन्तस्तल में वे अनुभव नहीं करते। सन्देह और कठिनाइयों के वे शिकार बन जाते हैं और दास मनोवृत्ति से उत्पन्न हुए भय के कारण वे अपनी कार्यशक्ति खो देते हैं। हम से कहा जाता है कि भारत को बहुत से खतरों का सामना करना होगा अगर इंगलैंड हमें हमारे ही बाहुबल पर छोड़ दे। विदेशी आक्रमण और उसके रोकने की असमर्थता का हमें त्रास दिलाया जाता है। इस बात का पूरा पूरा ध्यान भी नहीं किया जाता कि आज भी हम विदेशी हमले का दुःख उठा रहे हैं और भविष्य में कोई और भारी विपत्ति का पहाड़ हम पर नहीं गिर सकता। भावी समस्यात्मक भयों के कारण वर्त्तमान पराधीनता से पिंड न छुड़ाना डरपोकपन और दुर्बलता की पराकाष्ठा है। लेकिन ऐसे कौन से बाहरी खतरे हैं जिनका ब्रिटिश शासकों के चले जाने पर हमें सामना करना पड़ेगा? हमारे पास एक वार चतुर भारतीय सेना है जिसकी बल परीक्षा महाद्वीपों के युद्ध स्थलों में हो चुकी है। योरुप के युद्धक्षेत्रों में मित्र राष्ट्रों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये वे लड़ी हैं और आव-

श्यकता पड़ने पर भारत की स्वतंत्रता के लिये भी शान के साथ लड़ेंगी। हमें स्वतंत्र तो होने दो फिर अपनी सेना संगठन करने तथा उसे शक्तिशाली और आज से भी अधिक कुशल बनाने में देर न लगेगी। पिछले महायुद्ध में यह हमारी देखी बात है कि आवश्यकता के समय बड़ी से बड़ी सेना कितनी शीघ्र तैयार की जा सकती है।

"देश का बल रक्षा सेना पर ही अवलम्बित नहीं है वरन् उसपर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और शक्ति सामञ्जस्य का प्रभाव और भी अधिक होता है। पोलेन्ड, लिथ्यूनिआ, ज़ेको स्लोविआ, हंगरी, आस्ट्रिया, बेलजियम, हालेन्ड, यूगोस्लेविया, पुर्त्तगाल, बलगेरिया, रोमानिया और अन्य बहुत से देश स्वतंत्र हैं और उन में कोई भी किसी एक बड़ी शक्ति का सामना करने योग्य नहीं है। बड़ी से बड़ी शक्तियाँ भी किसी गुट्ट का अलग रह कर मुक़ाबिला नहीं कर सकतीं; लेकिन वे फिर भी आज़ाद हैं क्योंकि भावी अड़चनों के भय से किसी का उन पर आक्रमण करने का साहस नही होता। यह अन्य देशोंके लिये असह्य बात होगी कि भारत सी हीरे की खान फिर किसी दूसरे देश

की बपौती हो जावे। लेकिन ऐसी कौन सी शक्ति है जो हमें डरा सकती है? फ्रान्स जर्मनी, और इटली तो पारस्परिक घृणा और ईर्ष्या की ज्वाला में जल रहे हैं और एक दूसरे से इतने अधिक भयभीत हैं कि हमें सताने में सर्वथा असहाय हैं। अमरीका का संयुक्त राज्य बहुत दूर होने के कारण हम पर कोई विशेष ज़ोर नहीं डाल सकता। जापान का संयुक्त राज्य अमरीका और अन्य पाश्चात्य शक्तियों के बैर से सामना करना पड़ रहा है और इस कारण वह किसी ऐसी नवीन चढ़ाई की चिन्ता नहीं कर सकता जिससे वह स्वयं ही महान संकट में पड़ जावे। अफ़गानिस्तान रक्षा के लिये तो सुदृढ़ है किन्तु आक्रमण करने में कमज़ोर है और यह विचार के परे बात है कि वह अपनी मुट्ठी भर शक्ति से हमारा कुछ बिगाड़ कर सकता है। अधिक से अधिक वह दो चार लड़ाइयाँ जीत कर भाग जा सकता है इसके पूर्व कि हम उसे हरा सकें और उस का आक्रमण रोक सकें। किन्तु इसका कोई कारण ही नहीं है कि हमारी अफ़गानिस्तान से ऐसी शत्रुता हो। केवल रूसका भय रह जाता है लेकिन यह डर भी अधिकाँश में मन का भूत है क्योंकि हरेक शख्स जानता है—कम से कम उसे जानना तो चाहिये ही-

कि रूस से अधिक शान्ति का भिखारी आज संसार में नहीं है। महायुद्ध, गृहकलह, दुर्भिक्ष, और घेरे ने उसकी नींव तक हिला डाली है और उसको भीषण क्षति पहुँचायी है। उसने अपनी हानि बहुत कुछ पूरी करली है किन्तु तौ भी उसे सबसे बड़ी आवश्यकता है शान्ति की जिस के द्वारा वह नवीन समाज व्यवस्था का निर्माण पूरा करले जिसे उसने हाल ही में स्थापित किया है। कुशलज्ञों का कहना है कि रक्षा करने में समर्थ रूस आक्रमण करने में असमर्थ है। उसका सारा शासन मज़दूरों और किसानों की सदेच्छा पर टिका हुआ है और किसी भी सताने वाले आक्रमण में वह इस सदेच्छा को साथ नहीं रख सकता। उसके तो दुश्मन ही इतने हैं कि आप ही आप तो वह भारत के आक्रमण का प्रारम्भ ही नहीं कर सकता क्योंकि अपने पश्चिमीय पृष्टपट खुला छोड़ना उसके लिये असम्भव है। भारत को देख कर उसे डाह भी नहीं हो सकता। भारत और रूस में इतनी अधिक समानता है कि वे एक दूसरे का अधिक सहायता नहीं कर सकते। दोनों मुख्यतः कृषि-प्रधान देश हैं जिन में कच्चा माल और बाज़ार ही बाज़ार हैं। रूस को न बाज़ार की ज़रूरत है और न कच्चे माल

की। उसे तो धन और मशीनरी की ज़रूरत है और भारत उसे दोनों में से एक भी नहीं दे सकता। अतएव यह स्पष्ट है कि भारत को किसी ओर से भय नहीं है और यदि कोई है भी तो हम उसका सामना कर सकने योग्य हो सकेंगे।

"फिर भी यह हो सकता है कि हम हार जावें और लड़ाई में न जीत सकें। यह ख़तरा उठाना ही पड़ेगा जैसा कि इतिहास में सभी वीर जातियों ने उठाया है। ख़तरे के भय से हम अपने जन्म सिद्ध अधिकार को नहीं छोड़ सकते और न इतने नीचे ही गिर सकते हैं कि अपने देश और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिये हम अंग्रेज़ों से सहायता की प्रार्थना करें। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि हम किसी भी तरह अपने देश में ब्रिटिश सेना को रखने के लिये तय्यार नहीं हैं। विदेशी सेना का आधिपत्य हटाना ही होगा।

"यह कहा जाता है कि स्वतंत्रता पर ज़ोर देने से हम देश के अन्य दलों को विपरीत बना देते हैं सो भी ऐसे समय जब कि एकता की आवश्यकता सब से अधिक है। एकता अवश्य ही सब से अधिक वाञ्छनीय है परन्तु क्या हम अपने सिद्धान्त बेंच कर एकता मोल लें?

हमारे विरोधियों और हमारे उन साथियों की दृष्टि में जिनके लिये हम अपने सिद्धान्त छोड़ते हैं इस कारण हमारी प्रतिष्ठा कम हो जावेगी। दूसरों की भावनाओं और विश्वासों का आदर करना उचित है। किन्तु हम जिसे जीवन मरण का प्रश्न समझते हैं उसको छोड़ना असम्भव है। कांग्रेस ने, जब कभी अन्य संस्थाओं अथवा दलों से सहयोग सम्भव देखा है तो अपने आदर्शों और ध्येय की रक्षा करते हुए, सहयोग करने की इच्छा प्रकाशित की है। हमने दूसरों को साइमन कमीशन के बहिष्कार में पूरा पूरा सहयोग दिया है और आज भी सर्व-दल सम्मेलन में भिन्न भिन्न दलों का साथ दे रहे हैं। इससे अधिक हम अपनी सदेच्छा की गवाही नहीं दे सकते थे, और हमारी सहिष्णुता सिद्धान्त और ध्येय त्याग तक नहीं बढ़ाई जा सकती; हमने जो आदर्श अपने सामने रक्खा है वह इतना साफ़ है कि वह अस्थायी समझौते के लिये भूला अथवा छोड़ा नहीं जा सकता। हम एक ही मार्ग के पथिक रहेंगे और एक दूसरे के विचारों का आदर करेंगे और जब मोड़ पर पहुंचेंगे तो यह सम्भव है कि तब तक हम दूसरों में से अनेकों को सम विचार का बना लें। अगर इसमें हम असफल

होंगे तो हम प्रेमपूर्वक दूसरा मार्ग लेंगे और बिना गहरी शत्रुता अथवा दुर्भाव के एक दूसरे से बिदा होंगे।

"आप को अवश्य ही सर्वदल सम्मेलन की, बम्बई की कार्यवाही से निराशा हुई होगी किन्तु फिर भी यह सत्य है कि विपरीत और भिन्न मार्गों के उचित निर्णय में हमें कठिनाइयाँ पड़ रही हैं, हमें बतलाना है कि सच्ची समस्या सुलझाने ही में हम कड़ा परिश्रम कर रहे हैं। उनको न देखा करके अथवा समझौतों के चिथड़े लगा कर हम उन को हल नहीं कर सकते। हमारी सच्ची लगन की यही पहिचान है कि हम उनका धीरता से मुक़ाबिला कर रहे हैं और मुझे पूरी आशा है कि यदि हम ऐसा करते रहे तो हम नतीजा भी निकाल लेंगे।

"ये समस्यायें क्या हैं? सिन्ध के पृथक करने, और पृथक और सम्मिलित चुनाव के बारे में हम विरोध पाते हैं। अगर आप इन सबकी तह तक आवेंगे तो आप इन सब में घुसा हुआ एक कारण पावेंगे। वह है मुसलमानों का यह भय कि हिन्दू उन्हें निकाल देंगे और हिन्दुओं का कि मुसलमान उन्हें कुचल देंगे, यही भय प्रत्येक जाति और समुदाय के हृदय पर सिक्का बैठाये हुए है। यह अर्थहीन भय है। अपनी अपनी रक्षा करने के लिये हर

एक समुदाय विशेष अधिकार और सूबे में अपना ही ज़ोर चाहता है। वास्तव में किसी एक दल को दूसरे दल पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है और हिन्दू महा-सभा और मुसलिम लोग यही चाहतो हैं और इसी से उन दोनों के बीच में कभी कोई समझौता नहीं हो सकता। तो क्या निराश होकर हम प्रयत्न छोड़ दें? कांग्रेस और साम्प्रदायिकता से शून्य अन्य सभी संस्थाओं का कर्तव्य-मार्ग साफ़ है। इन भयों का यथा-साध्य ध्यान रखने के पश्चात्, वे चाहे न्याययुक्त हों या न हों, उन्हें एक विधान तय्यार करना चाहिये जो इतना न्याययुक्त और विवेक-पूर्ण हो जितना वर्तमान अवस्था में सम्भव है और फिर उसे देश के सम्मुख रख देना चाहिये। मुसलिम लीग और हिन्दू महासभा उसके विस्तार का भले ही विरोध करें किन्तु ऐसा विधान तो असम्भव है जो दोनों को सन्तुष्ट कर सके। और देश, आमतोर पर मुझे विश्वास है उसे स्वीकार कर लेगा यदि वह तर्क और न्याय अनुकूल है।

"दुर्भाग्य से आज को दुनियाँ में आदर्श विधान तय्यार करना असम्भव है। हमारे लिये यह तो असम्भव है कि जड़ विश्वासों और विवेक शून्यता का विचार ही

न करें परन्तु यह हमारा अवश्य कर्तव्य है कि हम यथा-सम्भव आदर्श के समीप पहुंचने की चेष्टा करें। भारत-वर्ष का इतिहास साक्षी है कि केन्द्रीय शक्ति के अभाव ही के कारण सदैव से खतरे उठाने पड़े हैं। हमारी शक्ति नितान्त छिन्न भिन्न रही है। अगर हमें भव्य भारत का निर्माण करना है तो हमें शक्तिशाली सरकार क़ायम करनी पड़ेगी किन्तु साथ ही यह भी न होगा कि भारत में परि-पालित सुन्दर भिन्न भिन्न प्रकार की सभ्यताओं का अन्त ही कर दें और स्थानीय प्रयत्न और कला की उन्नति का अवसर ही न दें। आज अन्य देशों की विधि गति नैतिक स्थानों को पूर्ण स्थानीय स्वराज्य देना है। हमारा कर्तव्य मज़बूत केन्द्रीय सरकार क़ायम करने के लिये ज़ोर डालने के अतिरिक्त यह भी है कि उन भागों को जहाँ विशेष सभ्यताओं और विचारों का निवास हो पर्याप्त स्वतंत्रता देने का सिद्धान्त स्वीकार कर लें। किसी भी सभ्यता की सब से अच्छी परीक्षा उसकी भाषा द्वारा हो सकती है। यह भी सम्भव है कि कहीं बिल्कुल स्वतंत्र ढंग के अनेक विभाग हों और देश की आर्थिक स्थिति को हानि पहुंचे किन्तु इसके रोकने का उपाय यह है कि किसी बड़े क्षेत्र में कई छोटे छोटे नैतिक क्षेत्रों की शासन शक्ति दे

दी जावे। यदि यह सिद्धान्त मस्तिष्क में रक्खा जावे और साथ में सम्मिलित चुनाव हो और भिन्न भिन्न अल्प-संख्याओं और पिछड़े हुए समूहों के संरक्षण का प्रबन्ध हो तो कम से कम परिवर्तन काल के लिये तो अवश्य ही हम सन्तोष जनक विधान तय्यार कर सकते हैं। हमें आशा करना चाहिये कि सर्वदल सम्मेलन की नियुक्त की हुई कमेटी इस प्रकार का संगठन तय्यार करने में सफल होगी। यह साफ़ जान पड़ रहा है कि देशी रियासतें न भूली ही जा सकेंगी और न उन्हें अलग से छोड़ा जा सकेगा। दो स्वतंत्र शक्तियों में मतभेद होने से अधिक भारत के लिये घातक वस्तु नहीं हो सकती। यह समस्या बड़ी ज़रूरी हो गई है क्योंकि हम देखते हैं कि भारत के दो भागों के बीच में दीवार खड़ी करने की कुचेष्टा की जा रही है। हाल ही में कुछ भारतीय राजाओं के द्वारा ब्रिटिश भारत से थोथी सहानुभूति दिखाने का उपक्रम करके एक स्कीम छापी गई है। यह स्कीम देशी राज्यों के पृथक रखने का भयानक सिद्धान्त सामने रख कर चलती है और जहाँ तक देशी प्रजा का नाता है, हम से कहा गया है, कि वे सर्वमाननीय क़ानून की रक्षा में रहेंगे। हम यह खूब जानते हैं कि इस सर्वमाननीय

क़ानून और शान्ति का अर्थ क्या है। अतएव इस स्कीम का विरोध हमें भारत और रियासतों दोनों में करना चाहिये। उन नरेशों को भी जिनमें बुद्धि और दूरदर्शिता है, उसे अस्वीकार कर देना चाहिये और उन्हें अपने देश भाइयों का साथ देना चाहिये और ब्रिटिश भारत के लोगों के साथ खड़ा होना चाहिये। आओ हम कन्धे से कन्धा मिला कर खड़े हो जावें ताकि कोई भी शक्ति हमें कभी विलग न कर सकें।"

औपनिवेशिक स्वराज्य या पूर्ण स्वाधीनता

पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने २९ अगस्त १९२८ को लखनऊ के सर्वदल सम्मेलन में मालवीय जी के भारत के लिये औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर बोलते हुए जो वक्तृता दी थी वह इस प्रकार है:—

"उस कमेटी के सदस्यों ने कि जिसकी रिपोर्ट पर हम यहां विचार कर रहे हैं, कुछ मेरी छोटी मोटी सेवाओं का उल्लेख कर अपनी उदारता का परिचय दिया है। मेरे लिए उनके कार्य की टीका करना कदाचित कुछ अरुचिकर होगा विशेषतः ऐसी दशा में, जब कि दूसरों की अपेक्षा, मैं सम्भवतः, यह अधिक जानता हूँ कि उन लोगों ने रिपोर्ट के सम्बन्ध में कितना परिश्रम किया है।

"यह कमेटी क्यों बनायी गयी थी? हम सभी जानते हैं कि यह ख़ासकर इसलिए नियुक्त की गयी थी कि वह

हमारी साम्प्रदायिक कठिनाइयों का हल ढूंढ निकाले। बम्बई में हमें एक बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ा था और उस समय हमें कोई मार्ग सूझ नहीं पड़ रहा था। इसलिए यह कमेटी नियुक्त की गयी थी और उसकी नियुक्ति एक सुन्दर विधान तैयार करने की आवश्यकता के ख़्याल से ही ज़्यादातर नहीं हुई थी। उनकी रिपोर्ट ही इस बात का प्रमाण है कि उन लोगों ने इस हल के ढूंढ निकालने में कितनी सफलता प्राप्त की है। यह हल बहुत न्याय संगत है और सभी दलों के साथ इन्साफ़ करने वाला है और मेरा पूरा विश्वास है कि सम्मेलन इसे स्वीकार कर लेगा।

औपनिवेशिक स्वराज्य में बंध जाना

"कमेटी ने जो तजवीजें पेश की हैं, उनमें से कुछ मेरे ख़्याल में उतनी हितकर नहीं हैं। विशेषतः औपनिवेशिक स्वराज्य की बात मेरी समझ में नहीं आती। जिस प्रस्ताव पर हम विचार कर रहे हैं उसका मतलब क्या है? इसका उपोद्घात हम से कहता है कि हम लोगों को पूर्ण स्वाधीनता के सम्बन्ध में प्रचार करने और कार्य करने का अधिकार है। परन्तु यह आडम्बर मात्र है। प्रस्ताव का दूसरा हिस्सा तो वास्तव में इसका समर्थन करने वाली

प्रत्येक संस्था अथवा व्यक्ति का औपनिवेशिक स्वराज्य के लिये हाथ ही बांध देता है। प्रस्ताव के समर्थन में दी गयीं वक्तृताएं और खासकर प्रस्तावक महोदय की वक्तृता ने तो इसे और भी स्पष्ट कर दिया है। जिस समय मैं उन लोगों की वक्तृताएं सुन रहा था, उस वक्त मुझे यह आश्चर्य हो रहा था कि मैं एक पीढ़ी पहिले की कांग्रेस की वक्तृताएं तो नहीं सुन रहा हूँ। उनमें बहुत पहिले ज़माने के विचार प्रकट किये जा रहे थे और आज कल के वाक़यात और वास्तविकताओं से तो उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं मालूम होता था। हममें से हिन्दुस्तानी गवर्नरों के न होने और नौकरियों में तथा रेलवे बोर्ड में हिन्दुस्तानियों के न रखे जाने के अन्याय की बातें कही जाती हैं। क्या इसीलिए हम लोग यहां आज एकत्र हुए हैं? क्या यही हमारा स्वतंत्रता का भाव है। मुझे तो यह मालूम होता है कि हम बीसवीं सदी से ख़ास कर उन्नीसवीं सदी के तरीक़ों और उपायों की ओर गिरते जा रहे हैं।

"हम से कहा जाता है कि हमें क्रियात्मक होना चाहिये और क्रियात्मक का अर्थ यह लगाया जाता है। कि विचारों द्वारा निर्मित रूप पर ही दृढ़ रहना। प्रस्तावक महोदय का कहना है कि उन्होंने जान स्टुअर्ट मिल और

ग्रीन 'भारतीयों का संक्षिप्त इतिहास' नामक (अंग्रेज़ी पुस्तक के लेखक) से राजीनति का ज्ञान प्राप्त किया है। वे लोग महापुरुष अवश्य थे, किन्तु क्या मैं प्रस्तावक महोदय को इस बात की याद दिला सकता हूँ कि वे लोग अब नहीं रहे और तब से अब बहुत परिर्तन हो गया। महारानी एन, बादशाह चार्ल्स प्रथम, फ्रान्स के लुइस सोलहवें और रूस के अंतिम ज़ार की भांति उनका देहावसान हो गया है। दुनियां तब से कहां की कहाँ आ गयी है और बहुत से परिवर्तन हो गये हैं और यदि हमें क्रियावादी होना है तो संसार में जो परिवर्तन हुए हैं उनका हमें अनुसरण करना चाहिये। ब्रिटिश कामनवेल्थ आवनेशन्स किस लिए बनाया गया है। यह दूसरों पर शासन करने और दूसरों का शोषण करने के लिए ही बनाया गया है। ये इङ्गलैण्ड तथा दूसरे स्वराज्य प्राप्त उपनिवेश हैं, जो भारत, अफ्रीका और मलाया के कुछ हिस्सों तथा संसार के अन्य भागों का शोषण करते हैं। जब हम औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करेंगे, तो क्या चूसे जाने वालों के रक्त से हम लाभ उठायेंगे। क्या मिश्र और अफ्रीका का शोषण करने में हम इङ्गलैण्ड और अन्य उपनिवेशों का साथ देंगे। ये

बातें अनिवार्य हैं। भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ है ब्रिटिश साम्राज्य का विभाजन।

सनसनी फैलना अवश्यम्भावी है

"फिर हमसे यह कहा जाता है कि औपनिवेशिक स्वराज्य राज़ी से मिल सकता है और पूर्ण स्वाधीनता हथियारों और शक्ति से प्राप्त होगी। मैं नहीं समझता कि यहां उपस्थित लोगों में से किसी का भी यह ख़्याल है कि औपनिवेशिक स्वराज्य न्याय के नाम पर या तर्क से मिलेगा। यदि कोई ऐसा है, तो मैं इतना ही कहूँगा कि वह बहुत भोला है। औपनिवेशिक स्वराज्य या पूर्ण स्वाधीनता दोनों के लिए शक्ति की आवश्यकता है, वह शक्ति चाहे सशस्त्र शक्ति की हो और चाहे शान्तिमय शक्ति की हो। आप को औपनिवेशिक स्वराज्य उसी क्षण मिल जायगा जिस समय आप अंग्रेज़ों को यह बतला देंगे कि यदि वे इसे स्वीकार नहीं करते, तो उन्हें इससे अधिक से हाथ धोना पड़ेगा। वह आप को तभी प्राप्त होगा जब उन्हें यह बात मालूम होगी कि जब तक वे औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं देते, तब तक भारत उनके लिए नर्क के समान है। आप को वह तर्क अथवा वाक्यचातुर्य से नहीं

प्राप्त होगा। ऐसे मामलों में न्याय और तर्क को स्थान नहीं मिला करता। इसलिए पूर्ण स्वाधीनता या औपनिवेशिक स्वराज्य दोनों के लिए किसी प्रकार की शक्ति का होना आवश्यक है। मर्ज़ी केवल शक्ति से ही प्राप्त होती है। बिना उसके यह हो ही नहीं सकती। यदि भारत और इङ्गलैण्ड के बीच औपनिवेशिक स्वराज्य पर समझौता हो सकता है तो मैं कोई कारण नहीं देखता कि पूर्ण स्वाधीनता पर क्यों समझौता नहीं हो सकता। यदि आवश्यक हो तो हम अंग्रेज़ों के हित के लिए कुछ संरक्षण स्वीकार कर सकते हैं, इसलिए नहीं कि हम यह समझते हैं कि अंग्रेज़ों को किसी संरक्षण का अधिकार है, वरन् ख़ून-ख़राबी और बड़ी बड़ी आपत्तियों से बचने के लिए शान्ति के मूल्य के नाम पर।

"कदाचित मेरे लिए उन लोगों की अपेक्षा अंग्रेजों से सहयोग करना अधिक सरल है जो औपनिवेशिक स्वराज्य की बात कहते हैं, किन्तु मैं उन लोगों की शर्तों पर सहयोग नहीं कर सकता। मैं उनके साथ बराबरी की शर्तों पर ही सहयोग कर सकता हूँ और वह तब जब मेरे साथ कुछ शक्ति और स्वीकृति रहेगी।

औपनिवेशिक स्वराज्य और स्वीकृति।

"इसलिए मेरी रुचि सुन्दर विधान तैयार करने की अपेक्षा इस शक्ति को उत्पन्न करने की ओर अधिक है। आप इसे शौक से अपनाइये, किन्तु यह याद रखिये कि इसको प्राप्त करने के लिए आप के पास शक्ति होनी चाहिये और वह शक्ति औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वाधीनता दोनों के लिए आवश्यक है। इस भ्रान्ति में न रहिये कि औपनिवेशिक स्वराज्य तो मर्ज़ी की बात है और वह सहज ही प्राप्त किया जा सकता है और यह कि पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना बहुत कठिन है और वह मार-काट से ही मिलेगी। यदि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त हो जाय, तो यह बात अवश्य होगी कि हम अपनी वैदेशिक नीति इङ्गलैण्ड की वैदेशिक नीति के अनुसार बनायेंगे और यह कि हम मिश्र, चीन तथा अन्य स्थानों में इङ्गलैण्ड का समर्थन करेंगे। निस्सन्देह रिपोर्ट इसे स्पष्ट कर देती है कि एक सम्मिलित साम्राज्य सम्बन्धी नीति होनी चाहिये। क्या आप इस प्रकार इङ्गलैण्ड के हाथ की कठपुतली बना चाहते हैं? औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए भारत और इङ्गलैण्ड के बीच सहयोग होना ज़रूरी है।

समस्त अँग्रेज़ दल विरोधी हैं ।

"आइये, अब जरा इङ्गलैण्ड के वर्तमान समय के विभिन्न दलों के सम्बन्ध में विचार करें । आप लार्ड बर्किनहेड और लार्ड विण्टरटन से सहयोग करेंगे या परम प्रसिद्ध मि० लायडजार्ज और समाचार-पत्रों में उनके भारी समर्थक 'मैनचेस्टर गार्जियन' से जिसने इस रिपोर्ट को, जिस पर हम विचार कर रहे हैं, उन्माद बतलाया है? अथवा आप इङ्गलैण्ड के गृह-सचिव सूरमा जिक्सले जिन में स्पष्टवादिता और निर्भीकता का निस्सन्देह गुण है, सहयोग करेंगे, जिन्होंने यह कहा है कि अंग्रेज लोग भारत में भारत के हित के लिए नहीं वरन् अपने जेब भरने आये हैं? या आप उन ढोंगी और छली पाखण्डियों से सहयोग करेंगे जो इङ्गलैण्ड में मज़दूर दल के नेता हैं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो मैकडानल्ड और उनके साथियों की अपेक्षा बर्किनहेडों से बातें करना अधिक पसन्द करूँगा। आपका कोई साथ न देगा, कोई आप से बातें करना पसन्द न करेगा, मगर फिर भी आप दबते ही जा रहे हैं, समझौते करते ही जा रहे हैं और अंग्रेज लोगों को इत्मीनान दिलाने का प्रयत्न करते ही

जा रहे हैं। आप यह सब कभी नहीं कर सकते जब तक कि आप शक्ति न उत्पन्न करें और अपनी इच्छा पूरी कराने की ताक़त न पैदा करें। इसलिए मैं आप से ज़ोरों से कहता हूँ कि औपनिवेशिक स्वराज्य की बातें करना हमें अपने आप को भ्रम में डालना है और देश को बिलकुल ग़लत मार्ग पर ले जाना है। वास्तविक ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है और औपनिवेशिक स्वराज्य को किसी भी शक्ल में या कुछ ही समय के लिए तथा समझौते के तौर पर स्वीकार करना ग़लत नीति और बुरी चाल है।

जनता की अवहेलना

"विभिन्न दलों की एकता का भी ज़िक्र है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज की उपस्थिति को अच्छी प्रतिनिधिक उपस्थिति कहा जा सकता है। परन्तु मैं आप से प्रार्थना करूँगा कि आप यह स्मरण रखिये कि हम लोग देश में अधिकतर शिक्षित और समझदार समुदाय के विचार को ही व्यक्त करते हैं। हम लोग देश के सिर्फ़ दो या तीन अथवा पांच फ़ी सैकड़ा जनता की राय प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करते हैं। सारा देश, जैसा कि हम सब जानते हैं, इस साल श्रमजीवी असन्तोष में फंसा

रहा। हड़ताल और काम की बन्दी, गोली का चलना और भयङ्कर विपत्तियां चलती रहीं और देश के अन्य भागों में किसानों पर विपत्तियों के बादल घिरे रहे। अभी कुछ ही दिन पहिले सरकार ने ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल नामक एक क़ानून तैयार किया है जो श्रमजीवी संस्थाओं का ध्वन्स करने और उनका बनना रोकने के लिए ही बनाया गया है। इस सम्बन्ध में हमें क्या कहना है ? इससे भी कम दिन हुए एक और नया कानून बनाया गया है, जिसका निर्माण कहा जाता है कि देश में बोल्शेविकवाद का आन्दोलन मचाने वालों का दमन करने के लिए किया गया है। वह शायद अकेला ही आदमी होगा जिसका यह ख़्याल हो कि थोड़े-से बोल्शेविक या उनमें कुछ सौ भी देश में यह श्रमजीवी असन्तोष या कृषक असन्तोष उत्पन्न कर सकते हैं। यह क़ानून विदेशियों के लिए बनाया गया है। परन्तु हम सब यह जानते हैं कि क़ानून की पोथी में बंगाल का काला कानून सदृश कानून मौजूद हैं जो भारतीयों के लिए प्रयोग में लाये जा सकते हैं। जो भारतीयों के लिए अब और किसी कानून की ज़रूरत नहीं है। इंग्लैण्ड की यही नीति हमेशा से भारत के प्रति रही है।

औपनिवेशिक स्वराज्य का ध्येय भारत के लिए घातक है

"क्या आप समझते हैं कि हम लोगों के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग पेश करना और इस नीति पर इस प्रकार से स्वीकृति की मुहर लगाना ठीक है? मैं यह बात ज़ोरों से कहता हूँ कि औपनिवेशिक स्वराज्य को अपना ध्येय बनाना भारत के लिए अनुचित और घातक होगा। हममें से जो मेरी इस राय से सहमत हैं, उन्होंने इस प्रस्ताव पर बड़े ध्यान के साथ विचार किया है और हम लोग इस निश्चय पर पहुंचे हैं कि हम औपनिवेशिक स्वराज्य का समर्थन नहीं कर सकते। हम इस कान्फ्रेन्स का काम बरबाद करना नहीं चाहते, क्योंकि हम यह समझते हैं कि कान्फ्रेन्स के सामने मुख्य काम साम्प्रदायिक प्रश्नों को तय करना है। इस समस्या के हल करने में हम जितनी सहायता दे सकते हैं उसके लिए हम तैयार हैं। इसलिए हम लोगों ने इस प्रस्ताव से बिल्कुल अलग रहने और इसमें संशोधन पेश करने या अन्य किसी भी प्रकार से इससे सम्बन्ध न रखने का निश्चय किया है। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मेम्बरों के उस वक्तव्य को जिसे सम्मेलन के मेम्बर की हैसियत

से मैंने आपके सामने उपस्थित किया है, उसे पढ़ दूँ। वक्तव्य इस प्रकार है:—

"हम इस वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने वालों की यह राय है कि भारत का विधान केवल पूर्ण स्वाधीनता के आधार पर ही होना चाहिए। हम समझते हैं कि जो प्रस्ताव सर्वदल सम्मेलन के सामने उपस्थित किया गया है वह, इसके समर्थकों का हाथ औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर निर्मित विधान के लिए निश्चित रूप से बांध देता है। हम लोग इसे मानने को तैयार नहीं हैं, और इसलिए हम न तो इस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकते हैं और न इसका समर्थन कर सकते हैं। हम इस बात का अनुभव करते हैं कि प्रस्ताव का प्रारम्भिक भाग हम लोगों को पूर्ण स्वाधीनता के पक्ष में कार्य करने का अधिकार देता है, किन्तु प्रस्ताव के दूसरे भाग में हाथ बांधने की जो बात है उसे यह प्रारम्भिक भाग किसी प्रकार कम नहीं करता। हम लोगों ने निश्चय किया है कि इस सम्मेलन के कामों में किसी प्रकार की बाधा या अड़ङ्गा न लगावें, किन्तु हम इस प्रश्न के सम्बन्ध में अपनी निश्चित राय को नोट करा देना चाहते हैं और इस ख़ास प्रस्ताव के उस हिस्से से अपने को

अलग रखना चाहते हैं, जो औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए हाथ बांधता है। हम इस प्रस्ताव में, संशोधन पेश कर या इसके पक्ष में वोट देकर, कोई भाग न लेंगे। हम चाहते हैं कि हम ऐसी कार्यवाही ज़ारी रखें जिसे हम पूर्ण स्वाधीनता के लिए उचित और ज़रूरी समझते हैं।"

बङ्गाल–विद्यार्थी–परिषद

२२ सितम्बर १९२९ के दिन पं० जवाहरलाल नेहरू ने बङ्गाल विद्यार्थी कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष—पद पर विराजमान होकर जो प्रभावशाली व्याख्यान दिया था उसका आशय इस प्रकार है:—

"बङ्गाल के नवयुवकों की इस सभा का अध्यक्षपद ग्रहण करने के लिये मुझे निमन्त्रित करके आपने मेरा जो सम्मान किया है उसके लिये मैं आप लोगों का कृतज्ञ हूँ। पर मुझे आश्चर्य है कि आप लोग मुझसे क्या कहलाना अथवा क्या कराना चाहते हैं, किस तरह का सन्देश मुझसे सुनना चाहते हैं। मेरे पास कोई विशेष सन्देश नहीं है, और आप यह भी जानते हैं कि मैं न तो सुन्दर-सुन्दर शब्दों के प्रयोग करने में निपुण हूँ न मुझे सुमधुर भाषण देने की आदत है। बङ्गाल अपनी सहृदयतापूर्ण भाषणशक्ति, कला तथा सौन्दर्य-प्रियता और उत्कट भावुकता के लिये प्रसिद्ध है। पर आपने निमन्त्रित किया

है मुझ जैसे व्यक्ति को जो कि उत्तर भारत के ऐसे प्रदेश का रहने वाला है जो कभी ख़ूब ठण्डा रहता है और कभी बहुत गर्म, और जिसके पूर्वज बहुत समय नहीं हुआ, ऊजड़ और बर्फ से ढके उन पहाड़ों से आये थे जो कि भारतवर्ष के विस्तृत मैदान को सर उठाये देख रहे हैं। मुझे भय है कि मेरे भीतर उस पहाड़ी आब हवा का ठण्डापन और कठोरता कुछ कुछ मौजूद है। बङ्गाल के एक बहुत बड़े नेता ने, जो कि समस्त भारत का भी नेता माना जाता था, और जिसकी स्वर्गीय आत्मा का हम आज भी स्मरण करते हैं, एक बार मुझे पाषाण-हृदय, कहा था और उनका कहना बिल्कुल ठीक था। मैं अपने को इस दोष के सम्बन्ध में दोषी स्वीकार करता हूँ और चूँकि आप लोग मुझे बुला कर यह ख़तरा उठाने को तैयार हो चुके हैं इसलिये आप लोगों को मेरी वह 'पाषाण-हृदयता' बर्दाश्त करनी ही पड़ेगी।

"मैंने अपने भाषण के आरम्भ में आपका ध्यान हम लोगों के एक छोटे से भेद की तरफ़ आकर्षित किया है, कि मैं हिन्दुस्तान के मध्य-भाग में बसा हुआ एक काश्मीरी हूँ और आप बङ्गाल के निवासी हैं। पर आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि इस प्रकार के भेद कितने सार-

हीन हैं, और हम लोगों को बाँधने वाला बन्धन कैसा सुदृढ़ है। हम लोगों को भूतकाल से जो उत्तराधिकार प्राप्त है वह एक समान हैं, हम लोग एक समान कष्ट भोग रहे हैं, और इस देश के लिये, जो कि मेरी और आपकी दोनों की जन्मभूमि है एक महान भविष्य निर्माण करने की आशा भी हमारे भीतर समान रूप से है। अगर आप चाहें तो समानता की इस तुलना को कुछ और आगे बढ़ाकर उन देशों तक पहुंचा सकते हैं जो कि कृत्रिम सीमाओं के कारण अलग-अलग समझे जाते हैं। हम जातियों और उनके चरित्र की विचित्रता के विषय में बहुत कुछ सुन चुके हैं। इस प्रकार के भेद वास्तव में मौजूद हैं, पर उनमें से कितने ही ऐसे आकस्मिक हैं जो सिर्फ़ आब हवा, परिस्थिति और शिक्षा के कारण उत्पन्न हुए हैं और चेष्टा की जाय तो वे निश्चय ही बदले जा सकते हैं। इस प्रकार आपको पता लगेगा कि हम लोगों की पारस्परिक समानता का बन्धन इन भेदों की अपेक्षा बहुत बड़ा और वास्तविक है, यद्यपि हम लोगों में से बहुत से इस सचाई से अनजान हैं।

"मनुष्य जाति के इस पारस्परिक बन्धन की अनुभूति के फलस्वरूप ही आज कल महान-युवक आन्दोलन की

उत्पत्ति हुई है। आप नवयुवकों में से बहुतों को इसका स्मरण न होगा कि महायुद्ध के समय और विशेष कर उसके समाप्त हो जाने पर युवकों के हृदय में कैसी निराशा और विद्रोह के भाव उत्पन्न हुये थे। बुड्ढे लोगों ने आराम के साथ बैठकों और बैंकों में बैठे हुए अपने स्वार्थ, लालच तथा असत्य बातों को सुन्दर शब्दों के भीतर ढक कर स्वाधीनता और प्रजातंत्र के नाम पर अपील की। युवकों ने उनकी सुन्दर और मीठी बातों पर विश्वास कर लिया और वे करोड़ों की तादाद में मृत्यु का सामना करने को चल पड़े और उनमें से थोड़े ही लौट पाये। उस अवसर पर सात करोड़ युवकों ने इस कार्य के लिये नाम लिखाया था और उनमें से १ करोड़ ५० लाख ने लड़ाई में भाग लिया था। इनमें से ८० लाख मारे गए और ५५ लाख जीवन भर के लिये अपङ्ग बन गये। इन भीषण संख्याओं पर एक बार विचार करो और तब सोचो कि ये सब लोग नवयुवक थे जिनका समस्त जीवन सामने पड़ा था और जिनकी आशायें अपूर्ण थीं। पर इस भयङ्कर बलिदान का क्या नतीजा निकला? ज़ोर ज़ुल्म के द्वारा शांति स्थापित की गई और सब प्रकार की ख़राबियों को बहुत ज़्यादा

बढ़ा दिया गया, जिनसे संसार अभी तक कष्ट पा रहा है।

"आपको अच्छी तरह याद होगा कि इस शांति के सर्व प्रथम फल जो भारतवर्ष को मिले, वे रौलेट एक्ट और मार्शल ला थे। आप यह भी जानते होंगे कि स्वभाग्य निर्णय का सिद्धान्त जिसे मित्रराष्ट्र गला फाड़ फाड़ कर घोषित कर रहे थे, भारतवर्ष और दूसरे देशों के सम्बन्ध में किस रूप में अमल में लाया गया। साम्राज्यवादी शक्तियों के लालच पर पर्दा डालने के लिये 'मैण्डेट' या 'संरक्षित देश' के नाम से एक नया आविष्कार किया गया। यह कहा गया था कि संरक्षक नियत करने के समय 'मुख्य विचार' उस देश के वाशिन्दों की हित-रक्षा का किया जायगा। इस हित-रक्षा का प्रमाण जो हमारे सामने उपस्थित है वह अङ्गरेज़ों के विरुद्ध मैसोपोटामिया का विद्रोह और फ्रांस वालों के विरुद्ध सीरिया का विद्रोह है। पर उसका जवाब अङ्गरेज़ों ने ईराक में हवाई जहाज़ों द्वारा बम गोले बरसा कर और फ्राँस वालों ने दमिश्क का प्राचीन और सुन्दर नगर बर्बाद करके दिया।

"ऐसी दशा में क्या यह आश्चर्य की बात है कि संसार के नवयुवकों ने विद्रोह पर कमर कस ली और अपने

पुराने नेताओं को निकाल बाहर किया ? इन नेताओं ने महायुद्ध के भीषण नतीजे को भी भुला दिया और वे अपने पुराने तरीके पर चलते हुये वैसी कूटनीति से काम लेते रहे और एक नये और उससे भी बड़े महायुद्ध की तैयारी करने लगे। युवकों ने अपना सङ्गठन करना आरम्भ किया और वे ऐसे उपायों और साधनों को खोजने लगे जिनसे समाज का नये रूप में सङ्गठन किया जा सके और वर्तमान समय के कष्टों और झगड़ों का अन्त हो सके।

"यही संसार के वर्तमान युवक आन्दोलन का आधार है। यह राष्ट्रीय-स्वाधीनता की अपेक्षा अधिक विस्तृत और उदार आधार है, क्योंकि वे अच्छी तरह समझ चुके हैं कि पश्चिमीय देशों का सङ्कीर्ण राष्ट्र-वाद सिद्धांत युद्धों का बीज बोता है, और राष्ट्रीय स्वाधीनता का अर्थ प्रायः एक मुट्ठी भर लोगों की स्वाधीनता होता है, जिसमें शेष सब लोग कष्ट पाते और लूटे जाते हैं। इसलिए संसार के नवयुवक अधिक गहराई में पैठ कर वर्तमान समय के कष्टों का कारण खोजने लगे हैं। उन्होंने लोगों की आर्थिक और सामाजिक दशा का अध्ययन किया और पता लगाया कि यद्यपि विज्ञान और विज्ञान से होने वाले परिवर्तनों ने कुछ ही पीढ़ियों में सैकड़ों

वर्षों का रास्ता तय कर दिया है, पर अब भी मनुष्य का दिमाग़ बहुत पिछड़ा हुआ है और वह मृत-भूतकाल के विचारों से ही परिपूर्ण है। विज्ञान ने संसार को अन्तर्राष्ट्रीय और परस्पर में निर्भर बना दिया है, पर राष्ट्रीय प्रतिद्वन्दितायें अब भी ज़ारी हैं और उनके फलस्वरूप युद्ध होते हैं। विज्ञान ने पैदावार को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया है और वह इतनी है कि सब लोगों के ख़र्च कर लेने पर भी माल बच सकता है, पर तो भी दरिद्रता सर्वत्र छाई हुई है। भोग विलास और दरिद्रता के दृश्यों में भी अन्तर वर्तमान समय में जितना अधिक बढ़ गया है उतना अधिक पहिले कभी न था। यह सच है कि मनुष्य मूर्ख और भूल करने वाला प्राणी है पर इस का वास्तविक घटनाओं में अन्तर नहीं पड़ सकता। यही कारण है कि हमारी कल्पनाजन्य सृष्टि से वास्तविक दुनियां के सर्वथा विरुद्ध है और ऐसी दशा में अशान्ति और दुर्दशा का उत्पन्न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

"पर इसके लिये हम घटनाओं को दोषी नहीं बना सकते। दुःख और कठिनाइयों का आधार वस्तुओं पर नहीं है। वरन् हम लोग जो उन वस्तुओं को ग़लत समझते और उनका ग़लत अर्थ लगाते हैं इन्ही उनका

आधार है। हमारे बु.ज़ुर्ग लोगों के प्रायः असफल होने का कारण यही है कि उनका दिमाग़ बड़ा कठिन बन गया है और वे अपनी मानसिक वृत्ति को बदलने में या उसे परिवर्तनशील घटनाओं के अनुसार बनाये रखने में असमर्थ हैं पर युवक ऐसे संकीर्ण या कठिन नहीं हैं। युवक विचार कर सकते हैं और विचारों द्वारा उत्पन्न होने वाले फल से भयभीत नहीं होते। यह मत समझिये कि विचार कोई मामूली चीज़ है अथवा उसके नतीजे तुच्छ होते हैं। विचार न तो अल्लाह मियां के गुस्से से डरता है न नर्क की यंत्रणाओं से। यह पृथ्वी पर सबसे बढ़ कर क्रान्तिकारी चीज़ है। और चूँकि युवक विचार करने और कार्य करने की हिम्मत रखते हैं, इसीलिये वे इस योग्य समझे जाते हैं कि हमारे इस देश और इस संसार को उस कीचड़खाने में से निकाल सकें जिसमें वे डूबे हुये हैं।

"बंगाल के युवक और युवतियो! क्या आप लोग विचार करने और कार्य करने को तैयार हैं? क्या आप संसार के युवकों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर खड़े होने को तैयार हैं न सि.र्फ आपने देश को एक उद्धत और विदेशी शासन से छुटकारा दिलाने के लिये वरन् इसलिये

कि हमारे इस दुःखपूर्ण संसार में एक अधिक और सुखी समाज की स्थापना हो सके? आपके सामने यही समस्या है, और यदि आप सच्चाई और निर्भयता के साथ इसका मुकाबिला करना चाहते हैं तो आप को निश्चय कर लेना होगा कि आप अपना और अपने देश को हर एक ऐसी बाधा से उद्धार करेंगे जो कि अपने मार्ग में आवे, फिर चाहे वह बाधा आपके विदेशी शासकों द्वारा उत्पन्न की गई हो और चाहे प्राचीन प्रथाओं द्वारा। आपको अपना आदर्श अपने सामने स्पष्टतः रख लेना होगा, अन्यथा आप किस प्रकार अपने स्वप्न के अनुसार विशाल भवन बना सकने की आशा रख सकते हैं? क्या आप मिट्टी की झोंपड़ी की नींव पर एक महल का निर्माण कर सकते हैं? अथवा तिनकों के द्वारा एक उम्दा पुल बना सकते हैं, जब अपने लक्ष्य के विषय में आप एक आदर्श निश्चित कर लेंगे तो आपका उद्देश्य सुस्पष्ट हो जायगा और आपका कार्य प्रभाव-जनक होगा, और उस समय आपका हर एक क़दम आपको अपनी हार्दिक अभिलाषा के नज़दीक ले जाने वाला होगा।

"यह आदर्श क्या होना चाहिये? राष्ट्रीय स्वाधीनता और अपने निश्चित मार्ग पर उन्नति करने की पूर्ण स्वतं-

त्रता, सब प्रकार की उन्नति के लिये सबसे पहली शर्त है। इसके बिना किसी प्रकार की राजनैतिक आर्थिक या सामाजिक आज़ादी हासिल नहीं हो सकती। पर राष्ट्रीय स्वतंत्रता का अर्थ हमारे वास्ते केवल यह न होना चाहिये कि हम राष्ट्रों के युद्ध करने वाले समूहों को संख्या में एक की वृद्धि और कर दें। वरन् यह एक ऐसे संसार-व्यापी राष्ट्र-संघ के निर्माण की तरफ़ एक क़दम हो जिसमें हम संसार की सहयोगिता और एकता की स्थापना में अधिक से अधिक सहायता पहुँचा सकें।

"पर संसार में तब तक कभी सहयोगिता की स्थापना नहीं हो सकती जब तक कि एक देश दूसरे के ऊपर हुकूमत करता है और उसे लूटता खसोटता है अथवा एक समूह या श्रेणी दूसरी को लूटती खसोटती है। इसलिये हमको एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का या स्त्री का सब प्रकार का लूटा खसोटा जाना क़तई बन्द करना होगा यद्यपि हम लोगों के विदेशी शासन में होने के कारण हमारे हर एक प्रयत्न में राजनीति की ही प्रधानता रहती है तो भी आप अपने आदर्श को केवल राजनैतिक ही नहीं रख सकते क्योंकि आख़िरकार राजनीति जीवन का एक छोटा सा अङ्ग ही है। आपका आदर्श सर्वाङ्गपूर्ण होना

चाहिये और उसमें समस्त जीवन का, जैसा कि वह आज कल बन गया है, समावेश होना चाहिये—चाहे वह आर्थिक हो, या सामाजिक, या राजनैतिक। यह आदर्श एक ही हो सकता है, अर्थात् पूर्णरूप से सामाजिक समानता का होना और प्रत्येक मनुष्य को समान अवसर मिलना। पर यह अच्छी तरह मालूम है कि हमको आज कल इन दोनों में से एक भी प्राप्त नहीं है। हमारी स्त्रियाँ-प्राचीन काल के बड़े-बड़े प्रसिद्ध उदाहरणों के होते हुये भी जिनको हम बड़े चाव से सदा दुहराया करते हैं, बन्धनों में बँधी हुई और परतंत्र हैं। अपने देश निवासियों के बड़े बड़े समूहों या जातियों को प्राचीन काल में हम लोगों ने जान बूझ कर दबा दिया था और आज भी उनको मज़हब तथा प्राचीन प्रथा के नाम पर उन्नति करने का किसी प्रकार का अवसर नहीं दिया जाता। साथ ही हम आज कल समस्त भारत में ऐसे करोड़ों आदमियों को खेतों और कारखानों में मिहनत करते देखते हैं, जिनको मिहनत करने पर भी भूखों मरना पड़ता है। किस तरह हम इन करोड़ों लोगों का घोर दरिद्रता और दुर्दशा से उद्धार कर सकते हैं और उनको आने वाली स्वतंत्रता में भागीदार बना सकते हैं? हम ग़रीबों

की सेवा की बातें बहुत सुनते रहते हैं और कभी कभी ग़रीबों की महिमा की बातें भी सुनने में आती हैं, और ज़रा सी उदारता या सेवा का कार्य करके हम समझ लेते हैं कि हमने अपना कर्तव्य पालन कर दिया। हम लोग स्वर्ग के सुखों को बड़ी महानुभावता के साथ ग़रीबों को दे डालते हैं, पर पृथ्वी के सुखों को पूर्ण सावधानी के साथ अपने लिये रक्षित रखते हैं। कम से कम युवकों को इस ढोंग से अलग रहना चाहिये। दरिद्रता कोई अच्छी चीज़ नहीं है, यह महिमा के लायक या प्रशंसनीय बात नहीं, वरन् यह एक ऐसी बुराई है जिसका मुकाबिला करना चाहिये और जड़ काट कर फेंक देना चाहिये। ग़रीबों को हमसे छोटी-छोटी सेवाओं या उदारता की आवश्यकता नहीं। उनके लिये आवश्यकता है कि वे ग़रीब ही न रहें। और यह तभी हो सकता है जब कि आप उस प्रथा को ही बदल दें जिससे दरिद्रता और दुर्दशा उत्पन्न होती है।

"पिछले कुछ महीनों में आपने देखा होगा कि समस्त भारत में मजदूरों के झगड़ों के कारण हलचल मची हुई थी। कारखानों की बन्दी (लॉक-आउट) हड़तालें, और गोलियों की बौछार-एक के बाद एक घटना सामने

आ रही है। क्या आप समझते हैं कि मज़दूरों को हड़-ताल करके भूखों मरने और गोली खाकर मरजाने में कुछ मज़ा आता है? सचमुच कोई ऐसा नहीं कर सकता, जब तक कि उसकी दशा असहनीय न हो जाय और दरहक़ीकत आजकल कारखानों और खेतों में काम करने वाले भारतवासियों की दशा सहन शक्ति की सीमा को पार कर गई है। आपके बङ्गाल प्रान्त की जूट की मिलों को १६२६ तक के पिछले दस सालों में नफ़ा और संरक्षित फन्ड के रूप में ४४० करोड़ रुपये की बचत हुई है? ज़रा इस विशाल संख्या पर विचार कीजिए और तब इन मिलों में काम करने वाले ग़रीब मजदूरों की दशा को देखिये। यद्यपि ये जूट के कारखानों के मजदूर ऐसी दुर्दशा भोग रहे हैं तो भी वे वहां काम करने जाते हैं, क्योंकि खेती बारी करने के लिये उनको बिल्कुल जमीन नहीं मिलती अथवा खेतीबारी के काम में उनकी दशा इससे भी बुरी रहती है। क्या आप आशा कर सकते हैं कि जब तक देश की ऐसी दुर्दशा हो रही है और धन वैभव तथा घोर दरिद्रता का ऐसा भयङ्कर अन्तर मौजूद है, तब तक किसी प्रकार शान्ति हो सकती है! आप इन समस्याओं की उपेक्षा नहीं कर सकते और

न इनको सुलझाने के लिए किसी भावी पीढ़ी के लिये छोड़ सकते हैं। भाई आप इनमें हाथ लगाने से डरते हैं और पीछे हटते हैं तो आपको पता लगेगा कि वास्तविक घटनाओं की उपेक्षा करना आपके लिये अकल्याण की ही बात है।

"हमसे कितनी ही बार कहा जाता है कि हमको जमींदारों और किसानों तथा पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच में इन्साफ़ से काम लेना चाहिये। इस 'इन्साफ़' का मतलब वर्तमान दशा को जैसे का तैसा क़ायम रखना है। वह उसी प्रकार का इन्साफ़ है जैसा कि 'लीग आफ़ नेशन्स, उन साम्राज्यवादी शक्तियों की वर्तमान दशा को क़ायम रखने के सम्बन्ध में करती है, जो इससमय आधी पृथ्वी की मालिक बनी हुई हैं और उसको लूट खसोट रही हैं। जब कि वर्तमान दशा स्वयम् घोर अन्याय है, तो जो लोग उसको क़ायम रखने की इच्छा करते हैं वे उस अन्याय के समर्थक समझे जाने चाहियें।

"अगर आपका आदर्श सामाजिक समानता और संसार-व्यापी राष्ट्र संघ का है तो आपको विवश होकर साम्यवादी-राज्य के लिये कार्य करना पड़ेगा। इस देश के अनेक निवासी साम्यवाद के शब्द से डरते हैं, पर यह

बड़ी बात नहीं क्योंकि डर तो इन लोगों का सदैव का ही साथी है। इन लोगों के स्कूल की किताबों को छोड़ने के पश्चात् विचार-संसार में जितनी महत्वपूर्ण घटनायें हुई हैं, वे उन सबसे अनजान हैं, और उन सब बातों से जिनको वे नहीं समझ सकते भयभीत होते हैं और होते रहेंगे। यह काम देश के नवयुवकों का ही है कि उन नवीन शक्तियों और विचारों की, जो कि संसार में हल-चल मचा रहे हैं, खूबियों को समझें और उनको अपने देश के लिये उपयोग में लावें। क्योंकि वर्तमान समय की रास्ते से भटकी हुई दुनियां के लिये अगर कोई आशा है तो वह साम्यवाद ही है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि महायुद्ध के समय जब कि एक भयङ्कर सङ्कट पश्चिमी राष्ट्रों को निगल जाने के लिये मुँह फाड़ रहा था उस समय यूरोप के धन सत्तावादी देशों ने भी लाचार होकर बड़े पैमाने में साम्यवादी उपायों से काम लिया था। यह उपाय प्रत्येक देश में केवल घर के भीतर ही काम में नहीं लाये गये थे, वरन् घटनाओं के दबाव का मुकाबला न कर सकने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी इनका उपयोग किया गया था। उस समय कितने ही मामलों में सहयोग से काम लिया गया था और राष्ट्रीय

सीमायें अदृश्य रूप से नष्ट सी हो गईं थी। उस समय आर्थिक सहयोगिता बहुत ही घनिष्ट हो गई थी और अन्त में कितने ही राष्ट्रों की सेनायें भी एक सेना बनकर एक ही अधिकारी की आधीनता में कर दी गई थीं। पर अब युद्ध का वह सबक भुला दिया गया है और हम फिर उससे भी अधिक भीषण आपत्ति की तरफ़ बढ़े चले जा रहे हैं।

"साम्यवाद का नाम हमारे कुछ मित्रों के मन में भय पैदा करता है। ऐसी दशा में कम्यूनिज्म का क्या कहना! अपने कौंसिल-भवनों में बैठे हुये हमारे बुजुर्ग लोग इस शब्द का उच्चारण होते ही अपने सफेद सिरों को हिलाने और दाढ़ियों पर जल्दी जल्दी हाथ फेरने लगते हैं। पर मुझे सन्देह है कि उनमें से किसी को इस बात का तनिक भी पता नहीं है कि कम्यूनिज्म क्या है। आपने दो नये बिलों का हाल पढ़ा होगा जो बड़ी व्यवस्थापिका सभा के सामने मौजूद हैं। उनमें से एक ट्रेड-यूनियन-आन्दोलन का गला घोंटने के वास्ते है और दूसरा उन लोगों को दूर रखने के लिये जिनपर गवर्नमेण्ट कम्यूनिज्म फैलाने का सन्देह करती हो। क्या आपको वह बात अजीब नहीं लगती कि शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य अपने समस्त टैंक

(लड़ाऊ मोटरों), हवाई जहाजों और युद्ध पोतों के होते हुये भी थोड़े से ऐसे व्यक्तियों से डरती है जो एक नया सिद्धान्त फैलाने को जाते हैं ? इस सिद्धान्त में कौन सी बात ऐसी है जिससे ब्रिटिश साम्राज्य इस हवा के समान न कुछ चीज़ से ताश से बने घर के समान तहस-नहस हो जायगा। निश्चय ही आपको इस महाकाय साम्राज्य की, जोकि पृथ्वी के एक बहुत बड़े भाग में फैला हुआ है, कमजोरी का इससे अच्छा प्रमाण दूसरा नहीं मिल सकता। यह साम्राज्य एक ऐसा दैत्य है जिसके पैर मिट्टी के हैं। पर यदि यह विचार खतरनाक चीज़ है तो साथ ही वह अत्यन्त मायाचारी या अदृश्यगामी भी है। वह सीमाओं और चुङ्गी की चौकी को बिना किसी प्रकार का महसूल दिये पार कर जाता है, और संगीनें तथा युद्ध-कुशल सैनिक उसको रोक नहीं सकते। अगर भारतवर्ष की सरकार यह कल्पना करती है कि वह किसी विचार या सिद्धान्त को क़ानून बनाकर रोक सकेगी तो उसकी अक्ल पर अवश्य ही पत्थर पड़ गए हैं।

"यह कम्यूनिज्म का सिद्धांत क्या है। जिसके सामने ब्रिटिश साम्राज्य कांपता है। मैं यहां पर इस का विशेष

रूप से निरूपण करना नहीं चाहता। पर मैं आपको बत-
लाना चाहता हूँ कि यद्यपि मैं व्यक्तिगत रूप से कम्यूनि-
स्टों के बहुत से तरीकों को पसन्द नहीं करता, और मुझे
किसी प्रकार इस बात का भी निश्चय नहीं हो पाता कि
भारत की वर्तमान दशा में यह कहां तक उपयोगी सिद्ध
हो सकेगा, तो भी मैं कम्यूनिज्म में एक सामाजिक
आदर्श की हैसियत से विश्वास रखता हूँ। क्योंकि यथार्थ
में यह साम्यवाद ही मेरी सम्मति में, एक ऐसा रास्ता है
जिससे दुनियां घोर विपत्ति से रक्षा पा सकती है।

"अब रूस के बारे में कुछ सुनिये। वह हमारे ही
सामान राष्ट्रों की पंक्ति से अछूत हो रहा है, उसके ऊपर
बहुत अधिक कलङ्क लगाये जाते हैं उसके सम्बन्ध में
कितनी ही भ्रमजनक बातें फैली हुई हैं। यद्यपि भूत-
काल में उससे बहुत सी ग़लतियां और अन्याय-पूर्ण कृत्य
हुए हैं, पर आजकल वह साम्राज्यवाद का सब से बड़ा
विरोधी है और पूर्वीय देशों के साथ उसका व्यवहार
न्याय और उदारता युक्त है। चीन, टर्की और ईरान में
उसने अपनी मर्जी से अपने बहु-मूल्य स्वत्वों और
विशेष अधिकारों को त्याग दिया है। जब कि अंगरेज़ों
ने चीन के बड़े बड़े शहरों पर गोले बरसा कर सैकड़ों

चीनियों को मार डाला क्योंकि उन लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करने का साहस किया था।

"ईरान के तबरेज़ शहर में जब कि रूस का राजदूत सर्व प्रथम पहुंचा तो उसने सर्वसाधारण को एकत्रित किया और रूस के ज़ार के किये हुए पापों के लिये रूसी-जाति की तरफ़ से बाक़ायदा क्षमा-प्रार्थना की। रूस पूर्वीय देशों के साथ समानता का बर्ताव करता है, न कि एक विजेता अथवा अपनी श्रेष्ठता का अभिमान करने वाली जाति को तरह। ऐसी दशा में यदि लोग उसका ख़्याल करें तो क्या यह अश्चर्य की बात है।

"तुम में से शायद कुछ युवक थोड़े वर्षों बाद विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने को जायगें अगर तुम इंग्लैंड जाओगे तो तुम पूर्ण रूप में देखोगे कि जातीय-पक्षपात वास्तव में कितना बरता जाता है अगर तुम योरोप महाद्वीप के दूसरे देशों में जाओगे तो वहां तुम्हारा अधिक अच्छी तरह स्वागत किया जायगा, चाहे तुम फ्रांस, जर्मनी, इटली आदि किसी देश में क्यों न जाओ। अगर तुम में से कोई रूस को जाय तो वह देख सकता है कि जातीय पक्षपात का वहां नाम निशान भी नहीं है। मास्को को यूनीवर्सिटियों में बेशुमार चीनी विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं

उनके साथ सब तरह से दूसरे लड़कों के समान ही बर्ताव किया जाता है।

"मैंने आपके सामने अन्तर्राष्ट्रीयता और साम्यवाद के विचार रख दिये हैं, और केवल यही विचार युवकों की श्रेष्ठ वृत्ति के योग्य हैं। पर इसमें सन्देह नहीं कि अन्तर्राष्ट्रीयता को हम राष्ट्रीय स्वाधीनता द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। यह चीज़ ब्रिटिश साम्राज्य अथवा विभिन्न राष्ट्रों द्वारा निर्मित ब्रिटिशकामनवैल्थ से—चाहे आप इसे किसी नाम से पुकारिये—प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीयता का सब से प्रधान शत्रु साम्राज्य ही है। अगर भविष्य में इङ्गलैण्ड संसार व्यापी राष्ट्र—संघ में सम्मिलित होना चाहे तो हम से बढ़ कर उसका स्वागत दूसरा कोई नहीं कर सकता। पर सम्मिलित होने के पेश्तर उसको साम्राज्यवाद को अलग रख देना होगा। हमारा झगड़ा इंग्लैंएड के लोगों के साथ नहीं है, वरन् इंग्लैण्ड के साम्राज्यवाद के साथ है।

"मैंने अन्तर्राष्ट्रीयता पर विशेष ज़ोर दिया है। यद्यपि हमारे लिये यह एक दूरवर्ती आदर्श है तो भी संसार अब भी एक बड़ी हद तक अन्तर्राष्ट्रीय बन चुका है, चाहे कोई

इस बात को अनुभव न कर सके। पर हम लोगों की जैसी दशा है और विदेशी शासन के विरुद्ध हमारे भीतर जो प्रतिक्रिया हो रही है उसके फल से हमारा सङ्कीर्णता-पूर्ण राष्ट्रवादी हो जाना बहुत सम्भव है। हम लोग भारतवर्ष की महानता और संसार के लिये उसके विशेष मिशन या सन्देश की बातें करते हैं और उसके भूतकाल का विचार करते रहना पसन्द करते हैं, पर अच्छी बात है कि हम अपने भूतकाल की याद करते हैं। क्योंकि महान था और स्मरण करने के योग्य भी है। पर पीछे की तरफ़ देखना बड़ी उम्र वालों का काम है युवकों की आँखें तो भविष्य पर ही लगी रहनी चाहिये, मैं अक्सर आश्चर्य किया करता हूँ कि क्या संसार में ऐसा कोई देश है अथवा कोई ऐसी जाति है, जो यह कल्पना नहीं करते कि उन्हें संसार को एक विशेष सन्देश देना है। इंगलैण्ड वाले 'श्वेत जातियों के भार' की बात कहा करते हैं, जिसे वे हर हालत में पूरा करने का दावा करते हैं, चाहे अकृतज्ञ लोग उसके विरुद्ध कैसा भी एतराज़ या विद्रोह क्यों न करें। फ्रांस 'सभ्यता' का विशेष सन्देश देने की बात कहता है। अमरीका स्वयं 'भगवान का देश' कहा जाता है। जर्मनी अपनी शिक्षा

प्रणाली, इटली अपने फासिज्म के नवीन सिद्धान्त और रूस कम्यूनिजम का सन्देश देने को कहते हैं। यह प्रवृत्ति सदा से इसी भांति चली आई है। यहूदी लोग अपने को भगवान के चुने हुये लोग समझते थे और यही हाल अरब वालों का था। क्या आपको यह आश्चर्य-जनक मालूम नहीं होता कि हर एक देश समान रूप से इस बात की कल्पना करता है कि उसके पास संसार के सुधार के लिए एक विशेष सन्देश है? पर मैं कहना चाहता हूँ कि प्रत्येक देश को संसार की संस्कृति की वृद्धि करने के लिये कोई न कोई सन्देश देना या कार्य करना आवश्यक है, और किसी को इस बात का दावा करने की ज़रूरत नहीं कि उसी को भगवान ने ख़ास तौर पर इस कार्य के लिये उत्पन्न किया है।

"किसी भी व्यक्ति के लिये आत्म-प्रशंसा एक ख़तरनाक चीज़ है। इसी प्रकार किसी जाति के लिये भी यह ख़तरे की बात है क्योंकि यह उसको आत्म-सन्तुष्ट और आलसी बना देती है और संसार उसको पीछे पड़ा छोड़ कर आगे बढ़ जाता है। अपनी वर्तमान दशा में, अपनी प्रथाओं, अपनी स्त्रियों की हालत, और जन-साधारण की भयङ्कर अवस्था को देखते हुये हम लोगों के

सन्तुष्ट होने का कोई भी कारण नहीं जान पड़ता। मृत भूतकाल की प्रशंसा के गीत गाने में अपनी शक्ति और समय बर्बाद करने से हमारी कौनसी भलाई हो सकती है जब कि वर्तमान-काल के ऊपर ध्यान देना परम आवश्यक हो रहा है और कार्य हमारी बाट जोह रहा है? संसार सदा बदलता रहता है और आज कल तेज़ी के साथ बदल रहा है, और अगर हम अपनी समाज को नवीन परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना सकते तो हमारा नाश अवश्यम्भावी है। हम देख चुके हैं कि कुछ ही वर्षों या महीनों के समय में कमाल पाशा और अमानुल्ला क्या कर चुके हैं क्योंकि वे लोग प्राचीन प्रथाओं या पुराने ख़्यालात को तोड़ने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाये। जो कुछ टर्की या पिछड़े हुये अफ़गानिस्तान में किया जा चुका है वह हिन्दुस्तान में भी किया जा सकता है।* पर यह कमाल पाशा और अमानुल्ला के ढंग से ही किया जा सकता है। इसके लिये आवश्यकता है निडर होकर बाधाओं का मुकाबला करने और उनको

* नोट—यह व्याख्यान अफ़गानिस्तान की वर्तमान गड़बड़ी और अमानउल्ला के पतन के पहिले दिया गया था।

हटाने की, न कि धीरे धीरे सुधार करने के लिये उस समय तक राह देखने की जब कि नाश का समय पास आ पहुंचे। ऐसे अवसर पर आप धीरे-धीरे या जल्दी सुधार करने के सम्बन्ध में अपनी पसन्द से काम नहीं ले सकते जैसे कि टर्की और अफ़गानिस्तान को इस विषय में अपनी पसन्द को छोड़ देना पड़ा। इस कार्य में आपको निश्चय करना होगा किआप अपना सर्वनाश होना पसन्द करतेहैं या तुरन्त कार्य करना। टर्की और अफ़गानिस्तान ने पिछले मार्ग को पसन्द किया और आज वे महान जातियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। आप किस बात को पसन्द करते हैं।

"आज कल समस्त संसार की हालत ख़राब हो रही है और भारत की दशा, यहां के बड़े बड़े शहरों की चमक दमक और ऊपरी शोभा के होते हुए भी, और भी भयङ्कर हो रही है। आज कल सर्वत्र युद्ध की अफ़वाहें फैल रही हैं और भयजनक भविष्य-वाणियाँ की जा रही हैं कि सम्भवतः अगले महायुद्ध के फल स्वरूप माननीय सभ्यता की ऐसी हानि होगी, जिसकी पूर्ति हो सकना असम्भव होगा। पर पाप के अत्यन्त बढ़ जाने पर उसका प्रतिकार भी शीघ्र ही होता है क्या हमारी भगवतगीता में नहीं कहा गया है:—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृज्याम्यहम्।
परित्राणाय साधूनाम विनाशायच दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इस देश में और दूसरे देशों में महापुरुष समय समय पर उत्पन्न होकर मनुष्य जाति की सहायता करते रहे हैं। पर उन सब आदमियों से बड़ा वह विचार है जिसे वे प्रत्यक्ष रूप देते हैं। धर्म का स्वरूप समय समय पर बदलता रहता है, और इस परिवर्तन-शील संसार में एक प्रथा जो कि भूतकाल में कल्याणकारी थी वर्तमान समय में समाज के लिये हानिकारक हो सकती है। तुम आज कल बैलगाड़ी द्वारा बम्बई नहीं जाते और न तीर कमान ले कर लड़ाई करते हो तब तुम उन प्रथाओं से क्यों चिपटे हुये हो जो सिर्फ़ बैलगाड़ी और तीर कमान के ज़माने में अच्छी थीं।

"इतना ही नहीं जितने महापुरुष अब तक हुये हैं सब प्रचलित सामाजिक नियमों के विरुद्ध विद्रोह करने वाले हुए हैं। ढाई हजार वर्ष पहले महात्मा बुद्ध ने सामाजिक समानता के सिद्धान्त की घोषणा की थी और वह पुरोहितों के और दूसरे तमाम लोगों के विशेष अधिकारों

के खिलाफ़ लड़ा था। वह जन साधारण का हिमायती था और उन सब लोगों का विरोध करता था जो कि उनको लूटते-खसोटते थे। उसके बाद दूसरे महान बड़े विद्रोही ईसा मसीह का आविर्भाव हुआ, और तत्पश्चात् अरब के पैगम्बर का, जिसने अपने समय में प्रचलित किसी भी बात के तोड़ने या बदलने में ज़रा भी आगा पीछा नहीं किया वे लोग व्यवहार-वादी थे और उन्होंने समझ लिया था कि संसार प्राचीन नियमों और प्रथाओं से बहुत आगे बढ़ गया है, और इसलिये उन्होंने उसको वास्तविकता की तरफ़ लाने की चेष्टा की। वर्तमान काल के अवतार अथवा महापुरुष के महान विचार हैं जो संसार का सुधार करने को उत्पन्न हुये हैं। वर्तमान समय का प्रधान विचार सामाजिक समानता का है। हम को उनकी आवाज सुननी चाहिये और अपने को उसके हाथ में यंत्र स्वरूप बना देना चाहिये जिससे इस संसार की काया पलट हो सके और यह रहने के लिये अधिक अच्छा स्थान बन सके।

"सम्भव है कि यद्यपि मेरे भीतर बहुत कुछ करने की उत्कट इच्छा रहने पर भी मैं एक कमज़ोर यंत्र सिद्ध हूँ। यह भी सम्भव है कि आप लोग भी व्यक्तिगत रूप से

थोड़ा सा ही काम कर सकने में समर्थ हों। पर मैं और आप मिल कर बहुत कुछ कर सकते हैं, और इस देश के जागृत युवकों के साथ मिल कर काम करते हुये हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। नवयुवक ही इस देश की और संसार की रक्षा कर सकते हैं। मैं फासिस्ट आन्दोलन की प्रशंसा नहीं करता पर मैं उनकी इसलिये अवश्य प्रशंसा करता हूँ कि उनका युद्धगीत नवयुवकों से सम्बन्ध रखता है जिसका शीर्षक 'गिओ-वीनेज़ी' है साथ ही मैं यह भी चाहता हूँ कि हम उनके आदर्श वाक्य—'खतरनाक तरीके से जिन्दा रहो'—को भी ग्रहण करलें। अपने बुज़ुर्ग लोगों को सुरक्षा और स्थापित्व की तलाश करते रहने दो। पर हम लोगों को साहस-पूर्ण कृत्यों की तरफ ही दृष्टि रखनी चाहिये। यह साहस श्रेष्ठ कार्यों के लिये होना चाहिये जिससे भटकती हुई दुनियां में सुख शान्ति की स्थापना हो और उन करोड़ों लोगों को सुरक्षा और स्थापित्व प्राप्त हो जो अभी तक इनसे वञ्चित हैं।

"मैं और आप भारतीय हैं और भारतवर्ष के प्रति हमारा बहुत कुछ कर्तव्य है, पर साथही हम मनुष्य भी हैं और मनुष्य जाति का भी हमारे ऊपर ऋण है। हमको

युवकों के साम्राज्य या कामनवेल्थ का नागरिक बनना चाहिये। वही एक मात्र ऐसा साम्राज्य है जिसके प्रति हम निष्ठा रख सकते हैं क्योंकि वह भविष्य के संसार-व्यापी राष्ट्र-संघ का अग्रवर्ती है।"

यू. पी. प्रांतीय कान्फ्रेन्स

पं० जवाहर लाल नेहरू ने जो सभापति का भाषण यू. पी. प्रान्तीय कॉंफ्रेंस, झांसी में २७ अक्टूबर १९२८ को दिया था उस का सार निम्न लिखित है।

"आपने इस प्रान्तीय सम्मेलन का दूसरी बार मुझे सभापति चुन कर सम्मानित किया है। मैं आपका कृतज्ञ हूँ परन्तु यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मैं आज यहां दूसरे महानुभाव के आसन पर बैठा हुआ हूँ जिन को आपने बड़ी समझदारी से मनोनीत किया था और जिनसे बढ़ कर आप की इस सभा और आगामी वर्ष का कार्य संचालन करने के लिये, दूसरा पथप्रदर्शक नहीं मिल सकता था। किन्तु हमारे दुर्भाग्य से घरेलू कष्टों ने आप के निर्वाचित सभापति को इस सभा मंडप में आज अपना उचित आसन लेने से रोक लिया है और उनके कार्य का भार मुझ पर आ पड़ा है। उस भार को मैं इस सम्मेलन में उठाने का यत्न करूँगा किन्तु आप अवश्य ही इस आशा में

मेरा साथ देंगे कि वर्ष के आरम्भ में ही हमारे बीर और उदार साथी इस सूबे की कांग्रेस संस्था के सभापति बन कर कार्यभार उठा लेंगे।

पांच वर्ष पूर्व आपने मुझे सभापति चुना था और उस समय मैंने आप से यह कहने का साहस किया था कि हमारे काम करने का एक मात्र आदर्श पूर्ण-स्वतंत्रता का ही आदर्श हो सकता है। हमारी कान्फ्रेन्स ने इस आदर्श को मान लिया था और यही सिफ़ारिश राष्ट्रीय महासभा से भी कर दी थी। इस घटना का स्मरण आज, स्वतंत्रता और औपनिवेशिक स्वराज्य के बहस मुबाहिसा के दिनों में, करना भला जान पड़ता है। स्वतंत्रता की आवाज़ भारत में कोई नयी आवाज़ नहीं है। उसी दिन से जब से कि हमारे देश पर विदेशी झंडा फहराने लगा ऐसे लोग होते रहे हैं जिन्हों ने स्वतंत्रता के स्वप्न देखे, उस के पाने का प्रयत्न किया और अपना सब कुछ उसके चरणों पर निछावर कर दिया। १८५७ की भारी लड़ाई स्वतंत्रता की लड़ाई के अतिरिक्त क्या थी जिस पर बहुत से बहादुरी के कामों और बीरताओं ने पवित्रता का तिलक लगा दिया था और साथ ही जिसे कुछ दुष्कर्मों द्वारा कलंकित भी किया गया था

जिनके कारण अन्त में असफलता ही हाथ लगी। इस झाँसी नगर में उस बालिका की पवित्र मूर्ति का प्रेममय स्मरण हो आता है जिसने, भय को भूल कर भारत के गौरव और नारी जाति के सम्मान के लिये धधकती हुई युद्ध की आग में कूदना स्वीकार किया और लड़ते लड़ते वीर गति प्राप्त की।

"पीढ़ियों पर पीढ़ियाँ बीतती गयी हैं परन्तु ऐसे स्त्री और पुरुषों का टाटा नहीं रहा है जिन्होंने अपने सिर विदेशी शासकों के सम्मुख नीचे करने अथवा घुटने टेकने को मना न कर दिया हो। इस अवज्ञा के लिये उन्हें बड़ा भारी मूल्य चुकाना पड़ा किन्तु वीर सरिता रुक न सकी और वेग में बढ़ती ही गयी। स्मरण शक्ति कमज़ोर है और अतीत के महान कार्य भूले जा सकते हैं। किन्तु हमारी इस पीढ़ी में भी, जिसमें हम रह रहे हैं बहादुरी और जोश दिलाने वाले सुनहरे कामों की कमी नहीं रही है। क्या वे नवयुवक और बूढ़े जिन्होंने कि मृत्यु और आजीवन क़ैद से सामना किया औपनिवेशिक स्वतंत्रता का मृग मरीचिका की खोज में भटक रहे थे या पूर्ण—स्वतंत्रता ही का स्वप्न देख रहे थे?

"कोई भी जीवित जाति विदेशी शासन में रह कर अपने विजेता को सुख से सोने नहीं दे सकती। क्योंकि शान्ति का अर्थ आत्म-समर्पण है और आत्म-समर्पण राष्ट्र के हृदय की मृत्यु है। भारत ने अपनी जीवित अवस्था का परिचय अपने असंख्य बलिदानों द्वारा दिया है जो उसके पुत्र और पुत्रियों ने विदेशी बन्धन से उसे मुक्त करने के लिये दिये हैं। भारत इङ्गलैंड को शान्ति नहीं लेने दे सकता जब तक कि वह स्वतंत्रत नहीं हो जाता। हमारी स्वतंत्रता प्राप्ति की इच्छा और उद्योग का यही मानसिक और वास्तविक कारण है। इस स्वतंत्रता की प्राप्ति हमें उस साम्राज्यवादी गुट का साझीदार बनने से नहीं हो सकती जिसे हम ब्रिटिश साम्राज्य अथवा साम्राज्यवाद के नाम से पुकारते हैं। हमने यह समझ लिया है—समझना तो चाहिये ही कि साम्राज्यवाद और स्वतंत्रता कोसों दूर है।

"जिस रोज इङ्गलैंड साम्राज्यवाद का पाप धो डालेगा हम प्रसन्नता से उससे सहयोग करेंगे। किन्तु क्या इस के कुछ आसार आपको नज़र आते हैं ? अथवा आप इतने भोले हैं कि आपका विश्वास हो गया है कि

आप साम्राज्य अथवा संयुक्तराज्य के सदस्य हो कर उसका हृदय बदल सकते हैं? इङ्गलैंड आज साम्राज्यवाद का सब से बड़ा पुजारी है और उसके सबसे अधम कोटि के पंडे मजदूर दल के वे लोग हैं जो स्वतंत्रता और आत्म-निर्णय की लम्बी चौड़ी बातें करने पर भी साम्राज्यवाद के कट्टर पक्षपाती हैं।

"हमारा शत्रु इङ्गलैंड नहीं है। हमें तो साम्राज्यवाद से बैर है और जहाँ साम्राज्यवाद है वहाँ हम इच्छा पूर्वक न रह सकेंगे।

"स्वतंत्रता के पक्ष की दलीलें आप को सुनाना व्यर्थ है। कांग्रेस में आप ही ने इस आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया है और यह वास्तव में आप के लिये गर्व की बात है कि आप का नेतृत्व स्वयं महासभा कांग्रेस ने मान लिया है।

"अब तक हमने केवल राजनैतिक स्वतंत्रता पर ज़ोर दिया है। यह अब आपका काम है कि आप यह दुबारा घोषित करें और स्वतंत्रता का अर्थ स्पष्ट करें। कुछ लोग हम से यह कहते हैं कि राजनैतिक मामलों के अतिरिक्त कांग्रेस को कुछ विचार ही न करना चाहिये। किन्तु जीवन के टुकड़े नहीं किये जा सकते और न

राजनीति ही समाज के अन्य अंगों की अवहेलना कर सकती है। हमारे सामने प्रश्न एक स्वतंत्र समाज स्थापित करने का है और यह करने के लिये आप को सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के करने और उन पर विचार करने की आवश्यकता पड़ेगी। वह स्वतंत्रता ही किस काम की है जिसके रहते हज़ारों भूखों मरें और लाखों लूटे जावें? स्वतंत्रता से लूट खसोट अवश्य ही रुकना चाहिये और यह तभी सम्भव है जब कि आप समाज की हरएक ऐसी बात का विरोध करें जिस से लूट खसोट में सहायता मिलती है। औपनिवेशिक स्वराज्य से सन्तुष्ट न होने का यह एक प्रबल कारण है क्योंकि इससे विदेशी पूंजी-पतियों के हाथ में अवश्य ही सारी शक्ति चली जावेगी और विदेशी पूँजी का अर्थ विदेशी शासन है।

"इस कारण हमारे सामने समस्या दो प्रकार की है पहिली तो यह कि एक ऐसा आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम बनावें जिस से कि जनता को सच्ची स्वतं-त्रता मिले और दूसरी यह कि अपने कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये अपनी शक्ति का अंदाज़ा कर लें।

"परन्तु प्रोग्राम पर विचार करने के पूर्व हमें अपने ध्येय और साधारण दृष्टिभाव के विषय में स्पष्ट होना

चाहिये। हम लोगों में बहुत से जनता की सेवा और दरिद्रता दूर करने की चर्चा करते हैं किन्तु उनके विचार इस विषय में बड़े धुंधले हैं। हमारा विश्वास हो गया है कि स्वराज्य आते ही जनता सुखी हो जायगी। यह कुछ अंशों तक ठीक है किन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि ऐसा ही हो। हमारा जनता के प्रति यह भाव ही इस बात का द्योतक है कि हम अपने और जनता के बीच में एक दीवार खड़ी देखते हैं। अपनी कुशाग्रता और अपनी सम्पत्ति के गर्व में हम अपने को जनता के स्वाभाविक नेता मानने लगे हैं। जब कभी 'हम' और 'जनता' में झगड़ा उठता है तो हम अपने हितों की ओर ही अधिक ध्यान देते हैं। हम यही समझ बैठे हैं कि देश में जो कुछ हैं हम ही हैं और भारत के स्वतंत्र करने का भार हमारे ही विशाल कन्धों पर आ पड़ा है और साथ ही में अपनी भी अवस्था सुधार करने का।

"हम इसी भांति जानकारी अथवा अनजानकारी में सोचा करते हैं। यह कोरा दम्भ है। हमारी जन सेवा की चर्चा व्यर्थ है जब हमारा मुख्य उद्देश्य अपने ही समुदाय के हितों की रक्षा करना है। अतएव प्रोग्राम बनाने में जनता के हितों का सर्वोपरि ध्यान रखना उचित है और

उनके लिये हमें सब कुछ छोड़ने के लिये उद्यत होना चाहिये। क्योंकि जनता ही सच्चा राष्ट्र है। उनकी समृद्धि ही पर देश की समृद्धि निर्भर है। जनता के हितों को सर्वोपरि रखना केवल न्याययुक्त ही नहीं है वरन् यह अत्यावश्यक और कई कारणों से समयोचित भी है कि कार्यक्रम में उनको ही प्रथम स्थान दिया जावे। केवल इसी प्रकार हम उनकी सहायता की आशा कर सकते हैं जो राष्ट्र की इच्छा पूर्ति के लिए आवश्यक है। किन्तु इस प्रोग्राम के पालन के लिये हमको उनकी आधीनता स्वीकार करनी होगी और जनता ही के प्रतिनिधियों को आन्दोलन का मुखिया बनना होगा। केवल इसी प्रकार हम जनता का सच्चा आन्दोलन बना सकते हैं। बस वे ही लोग जो आर्थिक परिवर्तन में दिलचस्पी लेते रहे हैं यह परिवर्तन करने में सफल हो सकते हैं। आन्दोलन का नेतृत्व और उसका निग्रह भार, अतएव, फिर उन्हीं को सौंपना ज़रूरी है जो आज सब से अधिक लूटे जा रहे हैं। वे लड़खड़ायेंगे, गिरेंगे और अनेक भूलें भी करेंगे किन्तु आर्थिक दारिद्रता का चाबुक उन्हें आगे बढ़ाता जायगा और इसी से उनकी अन्त में विजय होगी। इस प्रतारण शक्ति के अभाव में, हमारी राजनीति केवल कागज़ी

प्रस्ताव पास करना, जलूस निकालना, और क्रियाहीन चिल्लाना भर रह जायगी, जैसी कि वह वास्तव में रह गयी है। वकालती दलीलों की भरमार अथवा ज़ोरदार भाषणों से स्वराज्य न मिलेगा।

"मैंने बार बार कहा है कि मेरे विचार से तो हमारे सारे रोगों की औषधि साम्यवाद ही है। साम्यवाद ही इस कारण हमारा उद्देश्य होना चाहिये। आप में से कुछ यह ज़रूर सोचते होंगे, और इसका कारण भी है, कि हम एक छलांग में वहाँ तक नहीं पहुंच सकते और हमारा हाल का प्रोग्राम इसीलिये कुछ हलका होना चाहिये। यह प्रोग्राम किसी एक कान्फ्रेंस में बनाना कठिन है और मैं अनुरोधपूर्वक यह सिफारिश करूँगा कि यह काम करने के लिये एक कमेटी बनादी जाय। मैं केवल कुछ महत्वपूर्ण मामलों की ओर आपको इशारा कर दूँगा जिनको शामिल करने का कान्फ्रेंस को विचार करना चाहिये।

"हमारे सामाजिक प्रोग्राम में यह साफ़ साफ़ लिखा होना चाहिये कि हमारे लिये यह असह्य है कि हमारे अछूत कहे जाने वाले भाइयों को अनेक असुविधायें उठानी पड़ें। इस भेद-भाव को हमें मिटाना होगा और हरएक को अपनी अपनी उन्नति का पूरा अवसर देने का

प्रयत्न करना होगा। हमारी देवियाँ जिन क़ानूनी तथा अन्य बेड़ियों से जकड़ी हुई हैं उनसे उन्हें मुक्त करना होगा। उनके भी अधिकार मनुष्यों की भाँति होने चाहिये। पर्दा जैसे जङ्गलीपन के चिन्ह अवश्य ही जड़ से मेटने होंगे।

"हमारे आर्थिक प्रोग्राम में समस्त आर्थिक असमानताओं के दूर करने और धन के उचित बाँट का उद्देश्य सामने रहना चाहिये। फ़िलहाल हमें मज़दूरों के गुज़ारे योग्य तनख्वाह, बुढ़ापे की दशा में आर्थिक सहायता तथा चिकित्सा प्रबन्ध करने की व्यवस्था करना चाहिये। जैसी कि नेहरू रिपोर्ट के मौलिक अधिकारों में योजना की गयी है। यह व्यवस्था कैसे होगी? आज कल की समाज व्यवस्था में तो यह अवश्य ही असम्भव है। अछूतों और दीनों के देने के लिये आप को रईसों से और धनिकों से धन लेना होगा। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि ग़रीबी और अमीरी यथा साध्य भेद मिटाने की चेष्टा करें और यह देखें कि कर ऐसे लगाये जावें कि न किसी पर बहुत धनही जुड़े और न भारी दरिद्रता फट पड़े। कहने का तात्पर्य यह है कि अमीरों पर टैक्स बढ़ाया जाय और ग़रीबों पर घटाया जाय और कहीं कहीं बिलकुल ही उड़ा दिया जाय।

"हमें इस प्रान्त में विशेष कर ज़मीदारों और कृषकों की समस्या का सामना करना है। हमारे दुर्भाग्य से ज़मीदार सब ही ओर भरे हैं और वे नवीन शक्तियों के विकास को रोकने ही में आनन्द लेते रहे हैं। अपने प्रान्त की पञ्जाब गुजरात जैसे प्रान्तों से तुलना तो कीजिये जहाँ कृषक भूमि के मालिक हैं। यह सत्य है कि हमने भूतकाल में बड़ी बड़ी आत्माओं को जन्म दिया था और इस प्रांत में आज भी ऐसे महापुरुष विद्यमान हैं जो देश के गौरव स्तम्भ हैं। किन्तु हमारे यहां मध्यम श्रेणी है ही नहीं, हमारी विशेषता केवल यह है कि कहीं भारी अमीरी है तो कहीं हद दरजे की ग़रीबी है। इस कारण ज़मींदारी की समस्या हल करनी होगी और यदि हम उसे हल करना चाहते हैं तो उसे मिटाने के अतिरिक्त हम और कर ही क्या सकते हैं। बीच में ठहरने का यहां और कोई स्थान है ही नहीं। ज़मीदारी प्राचीन काल की जागीरदारी का अन्तिम चिन्ह है जिसका वर्त्तमान दशा से कोई जोड़ नहीं है।

"इस कारण ज़मीदारी प्रथा का नाश हमारे कार्यक्रम का एक प्रधान अंग होना चाहिये और उसके स्थान में ऐसे छोटे छोटे भूमि विभाग होने चाहिये जो साधारण

तौर पर एक कुटुम्ब के जोतने भर को पर्याप्त हो। किन्तु इसके बढ़ने की रोक के लिये ज़मीन छोड़ने अथवा कर्ज़ा लेने के लिये दूसरों को देने का विरोध कर देना चाहिये।

"बड़ी बड़ी ज़मीदारियाँ कैसे हटायी जावें? कुछ तो उन्हें ज़ब्त करने की सलाह देते हैं और कुछ उनका पूरा हर्ज़ाना चुकाने कहते हैं। दूसरी बात तो वैसे ही देखने से असम्भव जान पड़ती है क्योंकि हर्ज़ाना चुकाने के लिये इकट्ठा धन कहाँ से आवेगा। और यदि धन मिल भी जाय तो पृथ्वी का बोझा तो हलका न होगा और वर्तमान भूमिहार को इस परिवर्तन का कोई लाभ न होगा। इसका लाभ केवल ज़मींदार को होगा जो सारे झंझटों और कष्टों से छूट जायगा और जिसे घटती बढ़ती और कठिनता से उघायी मालगुज़ारी के बजाय बंधी रक़म मिल जायगी। इसके सिवाय अगर पूरा हर्ज़ाना चुकाया भी जाय तो धन विभाग असमान का असमान ही रहेगा। अन्य देशों की मिसालों से ज्ञात होता है कि भूमि का पूरा हर्ज़ाना चुकाने से न तो जनता के कष्ट ही घट सके हैं और न यह समस्या ही हल हो सकी है। इसलिये पूरा पूरा हर्ज़ाना तो देना असम्भव है।

"दूसरी ओर भूमि छीन लेना (ज़ब्ती) न्यायानुमोदित होते हुए भी बहुत सी मुसीबतें पैदा कर सकता है। मेरे विचार से इसलिये कुछ हर्ज़ाना देना ठीक है ख़ास तौर पर उन लोगों को जिनको इससे मुसीबत उठानी पड़े। लेकिन हर्जाना इसलिये कभी न दिया जावे कि पाने वाला फिर से रईस हो जाय।

"मैं यह भी निवेदन करूँगा कि जो किसान अपने खेत से पेट भर अन्न भी नहीं पैदा कर सकता उसका लगान ही माफ़ कर दिया जाय। दूसरा सवाल किसानों को ऋण से मुक्त करने का है। ऐसे कर्ज़दारों का ज़रूरत के स्थानों पर कर्ज़ा चुका दिया जाय।

"टैक्स ज्ञात होना चाहिये और जहां तक हो सके अज्ञात टैक्स हटा देने चाहिये। इसके अलावा यह ज्ञात टैक्स अवस्थानुसार नियत किया जाना चाहिये ताकि बड़ी आमदनी ही पर उसका भार अधिक पड़े।

"एक ऐसा भी टैक्स है जो भारत में तो नहीं है परन्तु इंगलैंड आदि बहुत से देशों में है जो जायदाद कर अथवा मृत्यु कर (Death duty) कहा जाता है। यह नितान्त न्याययुक्त और सामाजिक टैक्स है और भारत

में प्रचलित किये जाने योग्य है और एक दम इस प्रकार घटाने योग्य है कि बड़ी जायदाद ही पर उसका प्रभाव अधिक पड़े।

"भारत में उद्योग धंधों की इतनी काफ़ी वृद्धि हो चुकी है कि मिलों में काम करने वाले मज़दूरों की दशा पर विशेष ध्यान देना ज़रूरी हो गया है। वास्तव में पिछले कुछ महीनों का इतिहास तो हड़तालों और गोली चलने से ऐसा महत्वपूर्ण बन गया है कि मज़दूर समस्या की अवहेलना नहीं की जा सकती। गवर्नमेंट उस की अवहेलना नहीं करती। हम लोगों के बहुत से लीडरों से कहीं अच्छी तरह वह मजदूरों की विशाल शक्ति को जानती है और इसी कारण गज़ब की जल्दी के साथ उसने ट्रेडयूनियनों (मज़दूर संस्थाओं) को चप करने और तोड़ देने की कोशिश शुरू कर दी है। हमारी इस तरह की कान्फ्रेन्सों का उस पर ज़रा भी असर नहीं होता क्योंकि वह भली भाँति जानती है कि हमारा ख़ास रोज़गार गप्प लड़ाना है और सो भी वकीलों की गप्प जो कि कुछ हानिकारक वस्तु नहीं। सरकार को सब से बड़ा भय किसानों, और मज़दूरों का लगता है और सामूहिक आन्दोलन में यह अनिवार्य है कि कारख़ानों के मज़दूर

सुसंगठित होने के कारण नेतृत्व ग्रहण करें। इस कारण सरकारी कोशिश हो रही है कि उन का संगठन नष्ट कर दिया जाय और संघशक्ति कायम न होने दी जाय। जहां कहीं औद्योगिक झगड़े उठते हैं गवर्नमेंट की सारी शक्ति मिल मालिकों की तरफ़ लगा दी जाती है और मज़दूरों को भरपेट भोजन न मिले और गन्दे मकानों के कष्ट सहने के बाद गवर्नमेंट की फ़ौज और पुलिस की गोलियों का समाना भी करना पड़ता है। लेकिन यह सख़्ती भी कम समझी गयी और हमें आज ट्रेडडिस्प्यूट बिल और पब्लिक-सेफ़टी बिल के दर्शन करने पड़ रहे हैं। ब्रिटिश सरकार अपनी शक्ति भर मजदूर संगठन रोकने का प्रयत्न करती रही है और करती रहेगी। क्या आप इस मामले में ख़याली घोड़े ही दौड़ाते रहेंगे और मजदूरों का खून होने देंगे? कानपुर जाइये और मजदूरों की दुर्दशा और उन के रहने की गन्दी कोठरियां देखिये। बंगाल के जूट प्रदेश में जाइये और ब्रिटिश पूंजीपतियों की लाखों की आमदनी और मजदूरों की कंगाली की तुलना कीजिये। अथवा बम्बई जा कर मजदूरों की दुर्दशा पर आंसू बहाइये।

"साधारण मानवधर्म आप को मजदूरों का साथ देने

का उपदेश देगा। राजनैतिक समझदारी भी यही रास्ता दिखलायेगी क्योंकि हमारे वर्तमान समाज में मजदूर ही विशेष शक्ति रखते हैं और यदि हम उन्हें भूल जावें तो हम स्वयं अपना अस्तित्व संकट में पावेंगे।

"इस कारण हमें मजदूरों की संघशक्ति बढ़ाने में हृदय प्राण से सहायता करना चाहिये और ऐसे मजदूरों में हमें केवल शरीरिक श्रम करने वालों ही को न रखना चाहिये वरन उन को भी जो शारीरिक और मानसिक दोनों काम करते हैं। सब से पहिले हमें उन सरकारी कानूनों का सामना करना है जो श्रमजीवियों की उन्नति में बाधक हैं। हमें मजदूर संघों (Trade Union) की सहायता करना चाहिये, और कारखानों के मजदूरों के हितों की रक्षा के लिये मिल कमेटियां खोलना चाहिये। हमारा तुरन्त का प्रोग्राम ८ घंटे रोज और ४४ घंटे प्रति सप्ताह काम का होना चाहिये और हर्जाना, बीमा तथा इसी प्रकार की सुविधाओं का पूरा २ प्रबन्ध करना चाहिये। स्त्रियों और बच्चों के लिये ख़ास सुविधायें होना चाहिये। उनके काम के घंटों, उनकी शारीरिक अवस्थानुसार कामों, और प्रसवकाल की सुविधाओं का विशेष ध्यान रखना चाहिये। हरएक मिल मालिक

को हर एक मजदूर की कम से कम ऐसी मजदूरी नियत कर देना चाहिये जिसमें उसकी गुज़र हो सके और साथ ही उसे साफ़ सुथरी रहने की जगह दे देनी चाहिये। ये क्रान्तिकारी सिफ़ारिशें नहीं हैं श्रमजीवियों की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने के लिये भी पूंजीपतियों ही के हित के लिये सुविधायें देना लाभदायक होगा।

"ये थोड़े से इने गिने उपाय आप के विचारार्थ रक्खे गये हैं। और बहुत से आप खुद ढूंढ़ निकालेंगे। मेरा इस समय यही एक मात्र उद्देश्य था कि आप को यह बात भली भांति समझा दूँ कि केवल स्वराज्य की पुराक काम न देगी। हमें यह स्पष्ट कर देना होगा कि हम आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों ही प्रकार का स्वराज्य चाहते हैं और इस के लिये हमें एक ख़ास आर्थिक और सामाजिक प्रोग्राम तैयार कर लेना चाहिये। बस इसी तरह से आप अपने स्वतंत्रता के आन्दोलन को वास्तविक रूप दे सकते हैं और उसे आप एक जबर्दस्त न दबने वाली शक्ति बना सकते हैं। यही साम्प्रादायिकता के नाश का सब से अच्छा तरीका है।

"साम्प्रदायिकता का नाश पवित्र प्रस्तावों अथवा एकता के अनन्तजीवों द्वारा नहीं किया जा सकता। परीक्षा करने

पर आपको पता चलेगा कि असल में उसकी जड़ पढ़े लिखे लोगों की नौकरियों के लिये छीना झपटी है। उस का जन साधारण से कोई नाता नहीं है किन्तु उन्हें धोखा दिया जा रहा है और उन्हें ग़लत रास्ता दिखला कर अपने असली कष्टों को सोचने का अवसर ही नहीं दिया जाता। यदि आप उनका ध्यान आर्थिक स्वत्वों की ओर फेर दें जो वास्तव में जरूरी हैं तो आप उनका साम्प्रदायिकता से पीछे छुड़ा सकेंगे और थोथी धार्मिक मनोवृत्ति मिटा सकेंगे।

आज कल मज़ा तो यह है कि हमारे कुछ प्रधान नेतागण स्वतंत्रता का राग बड़े प्रेम से अलापते हैं और फिर भी साम्प्रदायिकता के सभी प्रकार के अधिकारों और सुविधाओं का मोह नहीं छोड़ते। हम से निरन्तर कहा जाता है कि समाज का हृदय इस प्रश्न पर स्पष्ट है। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि हर एक साम्प्रदायिक प्रश्न स्पष्ट है किन्तु स्वतंत्रता और साम्प्रदायिकता का यह अजीब मेल मेरे मन में सन्देह ज़रूर पैदा कर देता है कि इन दोनों विचारों को एक सी हृदय में रखने वालों के कर्म भी स्पष्ट हैं या नहीं। क्योंकि इन दोनों में कोई भी मेल नहीं है और आप खिसकते हुए रेत की साम्प्र-

दायिक बुनियाद पर स्वतंत्र भारत की पवित्र इमारत खड़ी नहीं कर सकते। सर्वदल सम्मेलन ने साम्प्रदायिक समस्या के कुछ साध्य पेश किये हैं किन्तु इन से सारी साम्प्रदायिकता का नाश नहीं होता, किन्तु हां वे उस मार्ग में बहुत दूर तक जाते हैं और इस कारण हमें उनका हृदय से स्वागत करना चाहिये। वर्तमान परिस्थिति में वे इस समस्या के सर्वश्रेष्ठ हल हैं और मुझे विश्वास है कि यह कान्फ्रेन्स उन पर अपनी सम्मति की पूरी मोहर लगा देगी और उनका पालन करने में अग्रसर होगी।

अपना ध्येय निश्चय कर चुकने के बाद हमें उसके प्राप्त करने के उपाय सोचना चाहिये। यह तो सभी कहते हैं कि हमें अधिकार मिलने चाहियें। किन्तु मैं ने कुछ लोगों में यह भावना देखी है कि अगर हम एक साथ चिल्लावें और देर तक चिल्लाते रहें, फिर चाहे और कुछ करें या या न करें, हमारी सफलता ज़रूर होगी। जान पड़ता है कि वे इसी विचार में डूबे हुए हैं कि ब्रिटिश शासन यकायक जादू के महल की दीवारों की तरह ज़ोर से चिल्लाने के साथ ही बैठ जायगा। मेरे विचार से औपनिवेशिक स्वराज्य की चिल्लाहट का यही आधार है और यही

कारण है कि मैं औपनिवेशिक स्वराज्य के आदर्श को सच्चे पथ से दूर ले जाने वाला समझता हूँ। उससे हमारी विचार धारा ऐसी बदल जाती है कि हम सोचने लगते हैं कि हमें शक्ति की आवश्यकता हो नहीं और इस विचार को मैं भय से देखता हूँ। राजनीति का बच्चा भी यह जानता है कि शक्ति-हीन मांग का कोई मूल्य नहीं है।

"अतएव हमें शक्ति के आराधना की आवश्यकता है। मैं पहिले ही इशारा कर चुका हूँ कि यह शक्ति केवल सामूहिक संगठन और सामूहिक आन्दोलन द्वारा ही आ सकती है। उस आन्दोलन का रूप तो उसी विशेष अवसर पर निश्चित करना चाहिये किन्तु सिद्धान्त रूप में वह असहयोग का कोई रूप होना चाहिये। यह ज़रूरी नहीं है कि १६२१ के असहयोग के सभी पहलू हम अपना लें किन्तु भावना वही होना चाहिये जो हमें टैक्स न देने और सामूहिक सविनय अवज्ञा (Civil disobeidience) के अनुकरण करने का मार्ग दिखलाती हो।

"यह भी सम्भव है कि हमें धन और जन से किसी साम्राज्यवादी लड़ाई में इंगलैंड की सहायता करने का निमन्त्रण दिया जावे। इसके लिये काँग्रेस ने पहिले ही

से हमें मार्ग दिखला दिया है और यह हमें सतर्क भाव से देखते रहना चाहिये कि १९१४ की तरह हमारा फिर से दुरुपयोग नहीं किया जाता।

"भारत वैसा कमज़ोर नहीं है जैसा कि बहुत लोगों का अनुमान है। हमारी कमज़ोरी वास्तव में हमारे हृदय की दुर्बलता और सामूहिक जागृति का भय है। यदि एक बार भी हम जनता के बीच में पहुँच जावें और उसके साथ काम करें तो उनकी भी हमारी सहायता से बड़ी शक्ति बढ़ जायगी। संसार की शक्ति हमारी ओर है और भारत आरत होता हुआ भी संकट के समय बहुत कुछ कर सकता है।

"मैंने अभी तक साइमन कमीशन की चर्चा नहीं की है क्योंकि जहाँ तक उससे सम्बन्ध है मैं जानता हूँ कि आप सब ही के उस के सम्बन्ध में एक ही से विचार हैं। आप उस से कोई सरोकार न रक्खेंगे। वह केवल इंग-लैंड की मनोवृत्ति की झांकी मात्र है, जो हमें दिखलाती है कि वह हमारे साथ क्या व्यवहार करना चाहता है। वह हमारा सहयोग नहीं चाहता और केवल अपना हुक्म चलाना भर जानता है। फिर हम क्यों व्यर्थ ही उसके साथ सहयोग करने की स्कीमें तय्यार करने में

समय नष्ट करें? आइये हम आप संगठन करें और अन्त में हमारी प्रबल इच्छा ही सफल होकर रहेगी।

"नेहरू कमेटी की रिपोर्ट और सर्वदल सम्मेलन के निर्णय की रत्ती रत्ती भर जाँच हो चुकी है और कुछ ही दिन पहिले एक दूसरी कान्फ्रेन्स में मुझे उन पर पूरा पूरा मत प्रकट करने का मौक़ा मिला था। मैं उसके कुछ हिस्सों, विशेष कर साम्प्रदायिक भाग पर विचार कर चुका हूँ। बस एक स्वतंत्रता का सवाल छोड़ कर और शेष में कहीं कहीं कुछ भिन्न मत रखते हुए भी मैं उसका हृदय से समर्थन करने को तय्यार हूँ। मैं उस रिपोर्ट का वास्तविक मूल्य जानता हूँ और छोटे मुँह उसकी आलोचना कर उसकी प्रतिष्ठा पर हमला नहीं करना चाहता।

"मैंने एक और भी बात छेड़ी थी–देशी राज्य सम्बन्धी, बीकानेर महाराज ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण वक्तव्य अभी हाल ही में प्रकाशित किया है। बहुत से नये नये राज़ खोलने के साथ उन्होंने सब से बड़ा भंडाफोड़ यह किया है कि भारत और इंगलैंड के बीच युद्ध छिड़ जाने पर वे अपने देश का साथ न देकर इंगलैंड का साथ देंगे।

इस विचित्र वक्तव्य पर मेरी टीका टिप्पणी की ज़रूरत नहीं जान पड़ती। आप स्वयं ही सोचिये कि इंगलैंड, जर्मनी, .फ्रान्स, संयुक्त—राज्य (अमरीका) में रह कर वे इस तरह का वक्तव्य निकालते तो उसका क्या स्वागत होता। वहां तो इस से कम कड़ी बातें कहने वालों का भारी तिरस्कार किया गया है और उन का उस देश में रहना भी कठिन बना दिया गया है। महाराजा का दिमाग़ व्यक्तिगत रूप से मध्ययुग की सैर कर रहा है और अब भी राजा के 'ईश्वरीय अधिकारों' की भ्रान्ति में भटक रहा है और शायद .फ्रान्स के पुराने राजा के उन शब्दों का स्मरण कर रहा है—"राज्य मैं ही हूँ।" लेकिन इन शब्दों के कहने वाले लुई को मरे बहुत दिन हो गये और उसी राज्य पर आजप्रजातंत्र का झंडा लहरा रहा है। इंगलैंड में भी राजा केवल नाम का है उस की शक्ति नहीं के बराबर है। हमारे राजा महाराजाओं को यह स्मरण रखना उचित होगा कि बादशाही के दिन समाप्त हो गये।

"इससे हमें एक और फल निकालना पड़ता है। अपने प्रोग्राम को बनाने में हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि कौन से समुदाय और किस श्रेणी के लोग

भारत की स्वतंत्रता का खास लाभ उठावेंगे और किनको हानि होगी। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और इस भेद का निर्णय करने के बाद लाभ उठाने वाले समुदाय के लिये एक कार्यक्रम बनाना चाहिये। द्वितीय श्रेणी के लोग हमारे किसी काम नहीं आ सकते। और यह भी सम्भव है कि किसी संकट के समय वे हमारे ही ख़िलाफ़ खड़े हो जावें और हमें घोर क्षति पहुँचावें; न्याय की दृष्टि से ही नहीं वरन् वक्त के तकाज़े के अनुसार भी, उन्हें सन्तुष्ट करने और अपने कार्यक्रम में शामिल करने की चेष्टा एक भारी भूल है।'

पूना युवक-सम्मेलन

मित्रों तथा कामरेडगण,

"मैं सम्मेलनों से ज़रा थक और ऊब सा गया हूँ और उनके लाभ में सन्देह भी करने लगा हूँ। फिर भी सम्मेलनों के लिये जोश ठंढा होने पर भी युवकों की सभा के लिये मेरा उत्साह वैसा ही बना है जैसा कि पहले था क्योंकि बड़े लोगों की सभा से वह एक दम भिन्न है। यह भी हो सकता है कि आप में भी बहुत से बड़े हो जाने पर बदकिस्मती से उन्हीं पुरानी आदतों के शिकार हो जावें और अपनी जवानी का वह जोश, जो वीरता के कामों और मृत्यु से टक्कर लेने की इच्छा जागृत कर देता है, भूल बैठें। किन्तु आज आप तरुण हैं उत्साह की तरल तरंगे आप के हृदय में उछल-कूद मचा रही हैं, और मैं भी, अवस्था की काली लकीरें एक के बाद एक खिचती देख कर, आप की अनन्त आशाओं और अदम्य उत्साह का संगी बनने की आशा में यहाँ चला आया हूँ और लौटते समय अपने नित्य जीवन के लिये आप का थोड़ा सा विश्वास और उत्साह साथ ले जाना चाहता हूँ। मैं चला आया हूँ क्यों-

कि युवकों का बुलावा मानना ही पड़ता है और उसके लिये 'ना' करने का किसी विरले ही का हृदय होता हो। और फिर यह निमन्त्रण तो बम्बई के उन नवयुवकों और नवयुवतियों की ओर से आया था जो इस देश के युवकों की नवीन जागृति के मुख्य पात्र रहे हैं और इसी से मैं ने इस आदर का और भी अधिक मूल्य समझा और कृतज्ञता पूर्वक इसे स्वीकार भी कर लिया।

"लोग सम्मेलनों में क्यों इकट्ठे होते हैं? आज आप यहाँ क्यों दिखायी दे रहे हैं? इसलिये नहीं कि स्पीचें दें, सुनें, और अपने काम और खेल के बीच में इसे विनोद का एक घंटा मात्र समझ लें। राजनीति अथवा सामाजिक क्षेत्र में नाम कमाने अथवा जनता की मृदुल हर्ष-ध्वनि सुनने की लालसा आप में नहीं है। आप यहाँ उपस्थित हैं क्योंकि आप वर्तमान परिस्थिति से सन्तुष्ट नहीं हैं और उसे परिवर्तित करने को व्यग्र हैं। आप यह मानने को तय्यार नहीं कि पृथ्वी के सर्वसुन्दर इस देश में जो कुछ होता आया है, ठीक है। कारण यह है कि आप के तरुण हृदय में, हमारी सब कुछ, इस भारत भूमि की दुर्दशा और दुःख ने जगह बना ली है और युवक हृदय के उत्साह और उदारता के भावों से भरे होने के

कारण आप समझने लगे हैं कि दुःख का यह भार आप ही को उठाना है अथवा उसे कम तो करही देना है।

"अगर इसी आन्तरिक आवाज़ ने आप को यहां ला खड़ा किया है तब तो आपका इकट्ठा होना अवश्य ही मङ्गलमय है और आप के सम्मेलन और विचार परि-वर्तन से कोई बड़ी भारी भलाई पैदा हो सकती है। किन्तु यदि आप वर्तमान अवस्था से असन्तुष्ट नहीं हैं, यदि आप में वह लगन नहीं है जो आप को बेचैन बना देती है और चाबुक लगा लगा कर आप को कर्मभूमि में पहुँचा देती है तो बूढ़े लोगों और आप की सभा में अन्तर ही क्या है जहाँ बहस मुबाहिसा दिन रात छिड़ा रहता है परन्तु काम कुछ भी नहीं होता।

"ऐसे लोगों से दुनियां का कुछ भी उपकार नहीं हुआ है जो हमेशा हाथ पैर बचाते रहे हैं और जिन्हों ने साव-धानी को परमात्मा की मूर्ति बना डाला है। मखमली गद्दों पर लेटने वाले, ऐश्वर्य की गोद में पले हुए और संसार के सुखों के एक बड़े हिस्से के मालिकों से यह आशा करना व्यर्थ है कि वे परिवर्तन के उपासक हो सकते हैं। संसार के परिवर्तन और उन्नति के कारण वास्तव में वे लोग हैं जो उद्विग्न और असन्तुष्ट हैं और जो वर्तमान

परिस्थिति के दोषों और अत्याचारों को सहन करने को तय्यार नहीं हैं।

"शान्ति और रक्षा के आधार पर समाज का निर्माण होता है। जहां शान्ति और रक्षा नहीं वहां समाज अथवा सामाजिक जीवन असम्भव है। किन्तु आज हमारे समाज में कितनों को यह शान्ति और रक्षा प्राप्त है यह तो आप जानते ही हैं कि हमारे असंख्य भाइयों को वह नसीब नहीं है, उन्हें पेट भरने के लिये अन्न तक नहीं मिलता और उनसे रक्षा की बात चलाना उनकी हंसी उड़ाना है। जब तक उस रक्षा में जन साधारण सम्मिलित नहीं होते आप समाज में शान्ति नहीं पा सकते। इसी कारण आप संसार में क्रान्ति के बाद क्रान्ति होती देखते हैं—इस कारण नहीं कि कोई समूह अथवा व्यक्ति रक्त-पात, अराजकता अथवा अशान्ति से प्रेम करता है वरन् इसलिये कि उस शान्ति और सौख्य से संसार के प्राणी मात्र लाभ उठा सकें। वास्तविक शान्ति और रक्षा की स्थापना तभी कही जा सकती है जब कि उससे समाज के अधिकाँश वर्ग को लाभ पहुँचे। यदि सबके लिये यह सम्भव न हो सके केवल उसका सुख कुछ ख़ास लोग ही उठावें यह बेजा है। यह मुमकिन है कि वह समय अभी

न आया हो लेकिन दुनियां आज बिना इधर उधर देखे अन्धी हो कर उसी ध्येय की ओर सरपट भाग रही है। इस दौड़ में जितनी ही ज़्यादा अड़चने उसको पड़ती हैं उतनी ही अधिक वह वहां तक पहुंचनें को बेताब होती जाती है और साथ साथ समाज की पुरानी कड़ियां टूटती जाती हैं और नयी जुड़ती जाती हैं। जिस समाज में इच्छा शक्ति के अभाव में उन्नति का यह पहिया चल कर रुक जाता है वह समाज शिथिल हो जाता है और अपना जीवन नष्ट कर देता है।

"जब तक संसार अपनी मंज़िल तक नहीं पहुँचता प्रत्येक जीवित जाति में क्रान्ति के बीज उगते रहेंगे। क्रान्ति और संगठन का कार्य बारी बारी होता रहना चाहिये। युवकों का काम समाज में यही जीवन शक्ति भर देना है, क्रान्ति का झंडा ले कर, जहाँ जहाँ दोष मिल सकें, जाना है, और बुझते हुए वृद्ध हृदयों की छाया से सामाजिक आन्दोलनों और सुधारों की रक्षा करना है।

"आज मेरी भावुकता भरी वक्तृता से आप में बहुत से लोग चकित हो रहे होंगे। इसके कारण दो हैं एक तो मैं भारी व्याख्यानदाता नहीं और दूसरे मैं यह समझता हूँ कि हमारे बहुत से कष्टों का कारण हमारी थोथी भावु-

कता है। विदेशी राजनैतिक और आर्थिक ग़ुलामी बुरी है परन्तु अपने शासकों के प्रति भावभक्ति और भी ज़्यादा बुरी है क्योंकि उससे सारी कार्य-शक्ति रुक जाती है और हम अँधेरी कन्दराओं में, जिनमें बाहर आने का दरवाज़ा नहीं है, भटकने को छोड़ दिये जाते हैं।

"इस कारण, मैं कोशिश कर रहा हूँ कि जहाँ तक सम्भव हो, मैं स्वयं शुद्ध भाव से विचार प्रकट कर सकूं और अपने हृदय के जालों को साफ़ कर सकूं और यही मैं आप से भी करने की प्रार्थना करूँगा आज-कल के राजनीति में प्रचलित भड़कीले शब्दों को बिना समझे बूझे उगल देने से हमारा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता और न हमें अपना ध्येय ही का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। मैं आप कैसे सम विचार रखने में सुखी होऊंगा किन्तु उससे कुछ विशेष लाभ न होगा जब तक कि आप उन विचारों का हृदय से स्वागत नहीं करते और उन पर दिली विश्वास नहीं रखते। मेरा काम तो इससे ज़्यादा पूरा होता है कि संसार की वर्तमान दशा से आप का सच्चा परिचय करा दूँ और आप में उसके सुधारने की इच्छा जागृत कर दूँ और आप में वह सच्ची लगन पैदा कर दू जिस से आप अपने चारों ओर की जानकारी के लिये व्याकुल

हो उठें और अपना कर्तव्य निश्चित करें। आप को यह पूरा अधिकार है कि मेरे कहने को बिलकुल ग़लत कर के छोड़ दें यदि आप का हृदय यही कहे। किन्तु साथ ही यदि आप का विवेक यह कह दे कि परम्परा से पूजित और लोकाचार तथा धर्म से सुरक्षित कोई भी वस्तु अगर वर्तमान अवस्था के लिये ठीक नहीं है तो आप उस को भी कतई न मानें। एक चीन के विद्वान ने कहा भी है 'धर्म बहुत से हैं किन्तु विवेक केवल एक है'।

"आज हम संसार में क्या देखते हैं? अधिकाँश लोग दरिद्रता के चंगुल में फंसे हुए हैं। थोड़े लोग वैभव के सिंहासन पर बैठे हुए हैं तो बहुतों को पेट भरने को दाना और तन ढांकने को कपड़ा भी प्राप्त नहीं होता और संसार में अपनी उन्नति का कोई अवसर नहीं मिलता संसार आज लडाई झगड़ों का युद्धक्षेत्र बन गया है और वह शक्ति जो अधिक सुन्दर समाज गढ़ने में व्यय होना चाहिये थी आपस की प्रतिद्वंदता और विनाश की तय्यारी में ख़र्च हो रही है।

"जब सारे संसार ही की यह अवस्था है तो हमारे दुःखी देश की अवस्था का अनुमान किया जा सकता है?

विदेशी शासन ने उसकी नस नस में दरिद्रता और दीनता भर दी है और परम्परा की अन्ध उपासना ने उसके जीवन का सारा रक्त चूस लिया है।

"सचमुच संसार में कोई भारी ख़राबी पैदा हो गयी है और हमें सन्देह होता है कि कहीं इस अशान्ति और दुःख के भीतर कोई ख़ास उद्देश्य न छिपा हो। दो हज़ार वर्ष पहले राजकुमार सिद्धार्थ, जो बाद में भगवान बुद्ध कहे जाने लगे, ने इस अपार वेदना का अनुभव किया था और आत्मा के कष्ट से घबड़ा कर अपने हृदय से यही प्रश्न किया था :—

"यह कैसे सम्भव है कि विधाता अपने बनाये हुए संसार को स्वयं ही दुःखी देख सकेगा। यदि वह सर्व-शक्तिमान है तो उसका संसार को इस प्रकार दुःखी छोड़ना उसे नीचे गिरा देता है—वह ईश्वर ही नहीं है।"

"किन्तु चाहे कोई ख़ास उद्देश्य हो या न हो प्रत्येक मनुष्य नामधारी का यह प्रथम कर्तव्य होना चाहिये कि वह इस वेदना के कम करने का संकल्प करले और एक अधिक अच्छे समाज के निर्माण में सहायता दे और अच्छे समाज का यह उद्देश्य होना ही चाहिये कि कोई क़ौम किसी दूसरी क़ौम पर हुकूमत न कर सके और न एक

आदमी दूसरे आदमी पर शासन कर सके। उसमें प्रति-द्व'दता का स्थान सहयोग को मिलना चाहिये।

"सम्भवतः आप ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उससे कष्ट भोगने के कारण निन्दा करते रहे हैं। किन्तु क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि वह एक विश्वभाव का, सब से ज़्यादा आपत्तिजनक तथा क्रूरतापूर्ण, स्वरूप मात्र है! आपने क्या यह भी सोचा है कि यह विश्वव्यापक साम्राज्यवाद उसी सामाजिक व्यवस्था का, जो आज संसार के अधिकांश भाग में फैली हुई है, एक आवश्यक प्रतिफल है और जिसे हम पूँजीवाद के नाम से पुकारते हैं? हमारे आपके सामने पहला सवाल अपने मुल्क को आज़ाद बनाना है लेकिन यह हमारे सवाल का केवल एक हिस्सा ही कहा जा सकता है। जब तक साम्राज्य-वाद की जड़ नहीं काट दी जाती मनुष्य जाति पर थोड़े से लोगों का अत्याचार और प्रभुत्व क़ायम रहेगा। यह भी सम्भव है कि हममें से कुछ उन्हीं प्रभुओं में जा मिलें किन्तु इससे सभी को आज़ादी न मिलेगी। इस कारण हमें सारे साम्राज्यवाद के नाश का उपाय सोचना चाहिये और समाज का एक दूसरे ही आधार पर संगठन करने का उद्योग करना चाहिये। और यह नींव सहयोग ही

की होनी चाहिये जिसे हम "साम्यवाद" कहकर दूसरे नाम से पुकारते हैं। हमारा राष्ट्रीय आदर्श, अतएव, 'सहयोगी साम्यवादी राज्य' होना चाहिये और हमारा अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श 'संसार का संयुक्त साम्यवादी राज्य' होना चाहिये।

"अपने ध्येय तक पहुँचने के पहले हमें दो प्रकारके शत्रुओं का सामना करना है—राजनैतिक और सामाजिक। हमें अपने विदेशी शासकों और भारत के सामाजिक अपरिवर्तनवादियों पर विजय पाना है। पूर्वकाल में हमने भारत में यह विचित्र बात सी देखी है कि राजनीति में एक दम क्रान्तिकारी विचार रखने वाले लोग सामाजिक जीवन में परम्परा भक्त रहे हैं और राजनीति में नरमदल के अनुयायी लोग सामाजिक मामलों में कहीं ज़्यादा नवीनता के समर्थक रहे हैं।

"किन्तु किसी देश का राजनीतिक जीवन उसके सामाजिक और आर्थिक जीवन से अलग नहीं किया जा सकता, और आप समाज का समस्त शरीर उसके एक भाग की औषधि करने से ठीक नहीं कर सकते। शरीर के एक दूषित भाग से दूसरे भाग में ज़हर फैल जाता है और रोग और भी जड़ जमा लेता है। इस कारण आप का

सामाजिक और राजनैतिक दर्शनशास्त्र सर्वांगपूर्ण होना चाहिये और आप के कार्यक्रम में राष्ट्रीय कार्य के सभी भाग होने चाहिये।

"यह आज स्पष्ट है अगर वह पहले कभी सन्देहात्मक था कि सामाजिक अपरिवर्तनवादी उन लोगों का दोस्त है जो भारत को ग़ुलाम बनाये रखना चाहते हैं यदि इस सीधी सादी वास्तविकता का आप प्रमाण चाहते हों तो वह आप को गत कई मास की घटनायें दे देंगी। आप ने देखा है और साइमन कमीशन के शानदार बायकाट में सहयोग दिया है। आप ने यह भी देखा है कि चन्द लोगों और कुछ समूह विशेष ने कमीशन के साथ किस प्रकार सहयोग किया है और राष्ट्र की इच्छा का अपमान करते हुए उसका स्वागत किया है। और वे कौन से व्यक्ति और समूह विशेष हैं? प्रायः सभी को आप या तो सामाजिक अपरिवर्तनवादी पावेंगे और या साम्प्रदायिकता के रंग में रंगा हुआ पावेंगे—वे लोग जो बड़े समुदाय के हितों के बदले विशेष सुविधायें और कृपायें चाहते हैं।

"राजनीतिक और सामाजिक अपरिवर्तनवादियों की एकता का एक दूसरा ज्वलन्त उदाहरण वर्तमान सरकार

की सुधार सम्बन्धी नीति में मिल सकता है। जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा दूषित सामाजिक प्रथाओं के दूर करने का जो कुछ परिश्रम किया जाता है उसपर सरकार ख़ाक डालती रहती है। यह सरकार के विरोध ही का परिणाम है कि आज समाज की उन्नति उतनी तेज़ नहीं होती जैसी कि होनी चाहिये और न उसमें समयोचित परिवर्तन ही हो पाते हैं। भारत सरकार आप ही आप हिन्दू तथा मुसलिम रीति रिवाज़ों की ठेकेदार बन गयी है। अभी हाल ही में गवर्नमेंट की ओर के वक्ताओं ने असेम्बली में 'पबलिक सेफ्टी बिल' के समर्थन में हिन्दू मुसलिम आदर्शों की जैसी सुन्दर पैरवी की थी वह देखते ही बनती थी। वे गला फाड़ फाड़ कर कहते थे कि साम्यवादी और बोल्शेवी विचारों के प्रवेश मात्र से भारी भूकम्प उठ खड़े होंगे! कभी कभी शुद्धि और तबलीग़ के समर्थक सरकारी कुर्सियों पर बैठे बैठे ब्रिटिश अफ़सरों को अपनी अपनी ओर मिलाने का अगाध परिश्रम करते दिखलायी देते थे परन्तु यह बतलाना असम्भव हो रहा था कि वे किसकी पीठ ठोकेंगे। यह एक ऐसा दृश्य है जिससे प्रत्येक भारतीय को शिक्षा ग्रहण करना चाहिये कि भारत के ईसाई शासक हिन्दू

मुसलिम धर्म के रक्षक बनने का कैसा स्वांग बना सकते हैं।

"अतीत में धर्म, लोगों की स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा भुलाने के लिये, अफ़ीम की गोली की तरह उपयोग में लाया गया है। राजा, महाराजाओं ने उसे अपने हित-साधन का पुरज़ा बनाया है और जनता को यह धोखा दिया है कि उन्हें शासन की ईश्वर से आज्ञा प्राप्त है। पंडे पुजारियों तथा दूसरे ग़रीबों के पेट काटने वालों ने भी अपने विशेषाधिकारों को परमात्मा-प्रदत्त कहकर अपना मतलब गांठा है। धर्म के द्वारा ही भोली भाली जनता के हृदय में यह भावना भर दी गयी है कि उनके दुःखों का कारण उनका खोटा भाग्य और पूर्वजन्म का पाप है। धर्म के उसी पवित्र नाम पर स्त्री समाज को दलित बनाया गया है और आज भी दलित रखा जा रहा है और उसी के नाम पर अनेक स्थलों पर आदिकाल के बर्बरता-पूर्ण चिन्ह—पर्दा प्रथा के पालन करने को उन्हें दबाया जा रहा है। दलित अथवा दलित रक्खी गयी जातियां संसार से पुकार पुकार कर कह रही हैं कि धर्म को उन्हें ज़बर्दस्ती ग़ुलाम रखने और उनके उठने में बाधक बनाया जाकर किस तरह कलंकित किया

गया है। धर्म ही अधिकार और दुर्बल दासत्व का प्रधान श्रोत रहा है। यह हमारे शासक जानते हैं और चूंकि उनका शासन भी अधिकारवाद के जमे हुए विश्वास पर क़ायम है वे धर्म की दुहाई बात बात में देकर हमें राजभक्ति का पाठ पढ़ाते हैं। यदि मानसिक क्रान्ति की चिनगारियां प्राचीन रीति रिवाजों पर जा गिरेंगी तो अधिकारवाद के क़िले की नींव ही हिल जायगी और उसके साथ साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी चकनाचूर हो जायगा।

"आज भारत में क्या समस्त भूमण्डल में राजनैतिक और सामाजिक मसलों पर ज़ोरों का वादविवाद चल रहा है। इस बहस से दो प्रकार के भिन्न विचारों को जन्म मिलता है। एक तो सुधारवादियों का गिरोह है जो शासकवर्ग अथवा सम्रद्धिशाली जनों की अनुमति से शनैः शनैः अपनी दशा सुधारने के पक्ष में है। वह क्रमानुसार धीरे धारे आगे बढ़ने की शिक्षा देते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में उसका, ब्रिटिश जाति की इजाज़त और उससे समझौता कर औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने में, विश्वास है; आर्थिक क्षेत्र में वह धीरे-धीरे पूँजीपतियों और ज़मीदारों के हाथ से शक्ति खींचकर उनकी कुछ न कुछ स्वीकृति

के साथ ग़रीबों को देने के पक्ष में है, सामाजिक क्षेत्र में सुधार, धीरे धीरे विशेष अधिकारों से विभूषित व्यक्तियों के हाथ से विशेष अधिकार छीन लेने से सफल हो सकते हैं। दूसरा गिरोह क्रान्तिकारी विचार रखने वालों का है जो जल्दी उन्नति की दौड़ दौड़ना चाहता है और जिस का विश्वास है कि शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों के हाथ से शक्ति राज़ी-राज़ी छीनी नहीं जासकती। उन को रजामन्दी का सवाल यहाँ भी आता है किन्तु यहाँ अनिच्छा रखते हुए भी स्वीकृति देने को वाध्य किये गये हैं।

"आज इन विपरीत विचारों में एक दूसरे पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिये युद्ध हो रहा है। यह स्पष्ट है कि अन्त में विजय किस की होगी। अधिकतर दोनों ही प्रकार की विचार शक्तियां एक साथ काम कर रही हैं। प्रत्येक क्रान्ति क्रमानुसार लम्बी तय्यारी का फल हुआ करती है। किन्तु दोनों विचार शक्तियों का अन्तर बड़ा महत्व-पूर्ण है और इसीलिये आवश्यक है कि आप अपना चुनाव कर लें और जिस ओर आप की सहानुभूति हो अपनी सारी शक्ति लगा दें।

"अगर आप में से किसी का यह विश्वास है कि आप अपने शासकों के हाथ से केवल मीठी-मीठी बातों अथवा

बहस द्वारा शक्ति छीन सकते हैं, तो मैं सिर्फ़ यही कहूँगा, कि आपने इतिहास पढ़ने से अधिक लाभ नहीं उठाया और न आपने भारत की नवीन घटनाओं पर विशेष ध्यान ही दिया है। समस्या हमारे सम्मुख शक्ति जीतने की है। हमारी कौंसिलों और असेम्बली में जहाँ बड़ी सुन्दर और उत्तेजनापूर्ण स्पीचें दी जाती हैं राजसत्ता अचल रहती है हम बाहरी बहस और विवेक का नाटक रचा देखते हैं हालां कि वहां भी सरकारी पक्ष के वक्ताओं का बर्ताव प्रायः तिरस्कार-पूर्ण और असह्य होता है। किन्तु खेतों और बाज़ारों के चौराहों के बाहर जाकर देखिये तो आप को पता चलेगा कि जहाँ कहीं सरकार और जनता की इच्छा में विरोध पड़ता है, चाहे जनता कितनी भी शान्तिपूर्ण क्यों न हो, सरकार उसे बहस करके और समझा कर शान्त नहीं करती—वह उनपर संगीनें चलवाती है, पुलिस के डंडे लगवाती है। गोलियां चलवाती है और कभी मार्शल ला लगा देती है। संगीन और बेटन ही परिस्थिति के मालिक होते हैं। आप कठोर फ़ौलाद और भरे काठ की मोठी माठी बातों और बहस से फुसलाना चाहते हैं? यदि आप उन्हें जीतना ही चाहते हैं तो दूसरे उपायों का अवलंम्बन कीजिये—आप जनता की शक्ति

साथ लेकर चलिये जो संगीन और लाठी से कहीं अधिक सामर्थवान है।

"कहा यह जाता है कि सरकार को क़ानून और शान्त की रक्षा करना अनिवार्य है। कोई हानि नहीं अगर इस के लिये भारी से भारी अशान्ति का सामना करना पड़े और कितने ही मनुष्यों के जीवन की बलि देनी पड़े अथवा आहत हो कर गिरना पड़े। आज प्रत्येक भारतीय जानता है कि क़ानून और शान्ति की रक्षा के नाम पर कैसे कैसे ज़ुल्म किये गये हैं। दुःख बस यह है कि यह सब होने पर भी शान्ति और रक्षा का नाम सुनते ही हमारा साहस छूट जाता है। कानून और शान्ति अपरि-वर्तनवादी ज़ालिम और अधिकार प्राप्त किन्तु उसे छोड़-ने को अनिच्छुक व्यक्ति के अन्तिम उपाय हैं। क़ानून और शान्ति का राज्य स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले स्थापित नहीं किया जा सकता। फ्राँस के प्रधान दार्शनिक ने ठीक ही कहा था, "स्वतंत्रता शान्ति की लड़की नहीं मां है"।

"सुधारकों का कुछ नियम सा हो गया है कि वे परि-वर्तन के लिये तड़पती हुई दलीलें और अपीलें पेश करें। एक वकील के जोश में आ कर वे अपने प्रतिद्वन्दी को क़ानूनी जिरह से हराना चाहते हैं। लेकिन उन्हें जानना

चाहिये कि उनके दुश्मनों पर इस वादन-शक्ति की बौछार का कुछ असर नहीं होता और वे अपना काम किये ही जाते हैं। अच्छी तरह जानते हुए कि ऐसे उपायों से उन की शक्ति को कोई आंच नहीं पहुंच सकती क्योंकि वह संगीन की ठोस फ़ौलाद पर स्थित है।

"और दुर्भाग्य से जन साधारण भी जिन के लिये सुधारक एड़ी चोटी का पसीना एक करते हैं उनकी इस पैरवी की क़द्र नहीं करते। वे न तो उसका अर्थ ही समझते हैं और न उन्हें समझाने की अधिक कोशिश ही की जाती है। सारी शक्ति नेताओं के परस्पर समझौते करने ही में व्यय हो जाती है राष्ट्र का शिर सारे शरीर से इतना दूर है कितने को तो उसके दर्शन ही दुर्लभ हैं।

"इस प्रकार न कभी आज़ादी पायी है और न भारी परिवर्तन ही पैदा किये गये हैं। जो आवाज़ उसके लिये उठती हो वह विद्रोह की आवाज़ होना चाहिये—मन्द किन्तु करोड़ों कंठों से निकली हुई शत्रु हृदय चीरती हुई गरजती आवाज़—न कि किसी अभ्यस्त व्याख्यान दाता के कंठ से निकला हुआ कोई कोमल गान। जिस रोज़ यह आवाज उठेगी इंगलैंड, जैसा कि उसने अतीत में किया है, अनिवार्य के सामने शिर झुका देगा। किन्तु

यदि यह आवाज नहीं सुन पड़ती तो आप इस का स्वप्न भी न देखिये कि आप खुशामद चतुराई से अंग्रेजों के हाथ से हुकूमत छीन ले गे।

"जनता की आवाज़ उठेगी परन्तु उसी दशा में जब आप उसके सामने ऐसा आदर्श और कार्यक्रम रक्खेंगे जिस से उन का सम्बन्ध है, और जो उनकी आर्थिक दशा सुधारने का उपाय करता है। और उसके उठने के साथ ही लड़ाई शुरू हो जायगी यदि हमारा ध्येय उस कष्ट और त्याग के योग्य है।

"मेरे प्रान्त के गवर्नर साहब ने अपने कुनबे की रीत्या-नुसार अवध के ताल्लुकदारों को कुछ शिक्षा दी थी। उन्हों ने अपने मित्रों के पहिचानने के लिये उन्हें बुद्धिमत्ता की शरण लेने का उपदेश दिया था वही उपदेश मैं प्रेम पूर्वक आप को देता हूँ यद्यपि यह बहुत अधिक सम्भव है कि मेरा और आपका निर्णय गवर्नर हेली साहब से बिलकुल भिन्न होगा। अपने मित्रों के चुनाव में आप ध्यान रक्खेंगे कि राष्ट्र की आत्मा किन में है और कौन आप के देश की ब्रिटिश द्वारा सम्पत्ति हरण से लाभ उठावेंगे।

"आपको चाहिये कि पहिली श्रेणी के लोगों को ही अपनावें और अपने समय और शक्ति को द्वितीय श्रेणी

के लोगों।को संतुष्ट करने वा अपने गिरोह में मिलाने में व्यर्थ नष्ट न करें। सबसे विशेषतया आवश्यक यह है कि आप देश की जनता—किसानों और कारखानों के मज़-दूरों—से सहयोग करें। स्वतंत्र भारत की कल्पना करते समय उन्हीं के हित की दृष्टि से विचार करें। यदि आप ऐसा करेंगे तो स्वाभाविकता या सुधारवाद और क्षुद्र समझौतों के गड्ढों को बच जावेंगे, वास्तविकता की नाड़ी पर आपका हाथ होगा। और आप का कार्यक्रम जनता की सहयोजना शक्ति पाकर एक जीवित कार्यक्रम होगा। जनता के स्वराज्य का अर्थ होगा, प्रत्येक प्रकार की लूट खसोट का चाहे वह ब्रिटेन की ओर से हो वा दूसरे ज़रियेसे, अन्तकर देना। इसका अर्थ होगा भारतीय पूर्ण-स्वतंत्रता और भारतीय समाज का सामाजिक और आर्थिक समानता के आधार पर पुनर्निर्माण।

"आप लोगों को भारत की आ ादी प्रिय है। किन्तु यहां आप में से बहुत से ऐसे भी होंगे कि जिन्हें जीवन की साधारण सुविधाएं सुप्राप्य हैं और जिन्हें अपनी रोटी कमाने के लिये विशेष कष्ट उठाना नहीं पड़ता। हमारे लिये स्वतंत्रता विचार की वस्तु विशेषतया है इतनी शरीर की नहीं, यद्यपि स्वतंत्रता न होने के कारण प्रायः

हमारे शरीर भी कष्ट उठाते हैं। किन्तु हमारे देश भाइयों के असंख्य जन समुदाय की दृष्टि में आधुनिक परिस्थिति का अर्थ है, भूख, अगाध ग़रीबी, ख़ाली पेट और नंगा बदन; उनके लिये स्वतंत्रता एक शारीरिक आवश्यकता है और हमें चाहिये उनको खाना कपड़ा और जीवन के मामूली सुख सुलभ बनाने के उद्देश्य को सबसे आगे कर के ही स्वतंत्रता के लिये लड़ें।

"भारत के सम्बन्ध में सब से आश्चर्यजनक और भयानक बात उसकी ग़रीबी है। यह न तो ईश्वर प्रदत्त ही है और न सामाजिक परिस्थिति के कारण आवश्यक ही। भारत माता के पास अपने सारे बच्चों को खिलाने पिलाने के लिये काफ़ी भंडार है और हो सकता है यदि विदेशी सरकार और उसीके कुछ बच्चे सारी अच्छी वस्तुओं को खींच कर और इस प्रकार जनता को उनसे वंचित बना कर न जोड़े। रस्किन ने कहा था 'ग़रीबी न तो गरीबों की प्राकृतिक हीनता के कारण है, न ईश्वर के अदृश्य नियमों के कारण और न शराब ख़ोरी के कारण; इसका कारण केवल यह है कि दूसरों ने उनकी जेब काट ली है उनका हिस्सा हड़प लिया है'। थोड़े आदमियों के हाथ में पूँजी रहने का अर्थ केवल बहुत से लोगों का दुःख

ही नहीं होता किन्तु साथ ही मनुष्य के विचारों पर इसका एक ऐसा ज़हरीला असर पड़ता है कि वे स्वतंत्रता की इच्छा ही नहीं करते। इसी मानसिक दृष्टि भाव के कारण ग़रीब दलित और निर्जीव हो जाते हैं और इसी दासता की बू के साथ तुम्हें सब से पहिले लड़ना होगा।

"आप लोगों ने भारतीय युवक आन्दोलन में नेतृत्व ग्रहण किया है और अपने संगठन को शक्तिशाली और जानदार बना लिया है किन्तु आपको ध्यान रखना चाहिए कि संगठन और संस्थाएँ केवल मनुष्य के जंगदार अस्त्र हैं उनमें जीवन और शक्ति का संचार तभी होता है जब कि उनका संचालन महान विचारों पर निर्भर रहता है। अपने सामने उच्च आदर्श रखो और तुच्छ समझौते से उसे नीचा न बनावो। जहां सैकड़ों आदमी फैक्टरियों और खेतों में परिश्रम कर रहे हैं वहां गम्भीरता से दृष्टिपात करो और जहाँ भारत की सीमा के बाहर दूसरे लोग तुम्हारी ही सी समस्याओं से भिड़ रहे हैं वहां भी दृष्टि डालो। राष्ट्रीय भाव भरलो और बूढ़ी भारत माता की स्वतंत्रता के लिये हम सब पुत्र पुत्रियां संलग्न हो जावें, साथ ही हम अंतर्राष्ट्रीय भी हों और उस महान युवक प्रजातंत्र के सदस्य बनें कि जो सीमा, घेरों और राष्ट्री-

यताओं से परिमित नहीं है और जो संसार का प्रत्येक प्रकार के अन्याय से छुटकारा करने के लिये व्यस्त है। बहुत साल हुए एक फ्राँसीसी सज्जन ने कहा था "महान कार्य करने के लिये मनुष्य को ऐसे रहना चाहिए जैसे वह कभी मरेगा ही नहीं" हम में से कोई भी मौत को नहीं टाल सकता किन्तु युवक कम से कम मृत्यु का ध्यान नहीं करता। बुड्ढे लोग केवल उन कुछ सालों के लिये काम करते हैं जो कि उनके जीवन में शेष रह गये है और युवक प्रलय-काल तक के लिये।"

अखिल-भारतीय ट्रेडयूनियन कांग्रेस

नागपुर

(३० नवम्बर १९२९)

कामरेड गण,

"पिछले युग में भारत के रंग मंच पर विचित्र घटनायें घटित हुई हैं। सदियों पुराने भारत में भी नवीन शक्तियों और भावों ने जन्म लेकर नवयुग के आगमन की सूचना दे दी है। उन्होंने न केवल वर्तमान राजव्यवस्था, जिस में भारतवासी अब तक कष्ट उठाते रहे हैं। वरन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर भी अपना आतंक जमा दिया है। राजनैतिक क्षेत्र में हम देखते हैं कि पिछली पीढ़ी की शनैः शनैः आगे बढ़ने की नीति और प्रभावहीन उपायों को छोड़ा जा रहा है और उनके स्थान पर क्रियात्मक आन्दोलन के भावादर्शों और कार्य्यों की पूजा की जा रही है। हम उस बड़े आन्दोलन का ज़ोर भी देख चुके हैं जिसने सारे देश में हलचल मचा दी थी और भारत में बृटिश शासन की बुनियाद हिला दी थी और हम ने उसे ठंडा होता हुआ और उस

की प्रतिक्रिया तथा आपस की सिर फुटौवल का दृश्य भी देखा है। आज हम उसे फिर पहले से कहीं अधिक शक्ति और निश्चय के साथ आगे बढ़ने के लिये ज़ोर पकड़ता देखते हैं।

"यह सत्य है कि पिछले युग में सब से बड़ी सफलता राजनैतिक क्षेत्र में रही है परन्तु साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि भारत में मज़दूर आन्दोलन की उन्नति भी उससे कम शानदार नहीं हुई। यह तो कोई नहीं कह सकेगा कि हमारा 'ट्रेडयूनियन' आन्दोलन आज पूर्ण शक्तिशाली है और किसी भी लड़ाई में सफल हुए बिना नहीं रह सकता। परन्तु किसी को यह भी कहने में संकोच न होगा कि हमने चन्द सालों के अन्दर ही इतनी मज़िलें पार कर ली हैं जितनी दूसरे देश पीढ़ियों तक पार न कर सके थे। श्रमजीवियों के घर में दरिद्रता घुसी हुई है, दासता ने उन्हें डरपोक बना दिया है और उसी डर के कारण वे संगठन में कठिनाइयां पाते हैं। विदेशी सरकार उनके मार्ग में नित्य नयी राजनैतिक बाधायें खड़ी करती जाती है; सारे देश की आंखें राष्ट्रीय युद्ध की ओर पहले ही से लगी हुई हैं; यह सब होते हुए भी भारतीय श्रमजीवियों में एक नवीन भावना

जागृत हो गयी है जो अपने जातीय हितों को पहचानती हैं और उनके लिये लड़ना मरना जानती हैं। इसी भावावेश में आ कर वे बहुत सी हड़तालें, नासमझी और अन्त में प्रायः असफलता उठा कर, कर चुके हैं परन्तु फिर भी साहस न छोड़कर वे आगे बढ़ते चले गये हैं। यदि कभी उन में शिथिलता देखी भी गयी है तो वह शिथिलता प्रायः उनके नेताओं ही की रही है।

"आज हमारा मुल्क दूसरे का दास है और राष्ट्रीयता का जोश उमड़ रहा है। यह स्वाभाविक है कि देश की सर्वश्रेष्ठ और सब से बहादुर आत्मायें राष्ट्रीय स्वतंत्रता के हेतु जी तोड़ कर कोशिश करें। किन्तु हमारे श्रमजीवी भाइयों के दिल पर यह चोट कब असर कर सकती है? दरिद्रता और प्रबल शक्तियों से हम पीस डाले गये हैं और उन्हें हम अजेय समझ बैठे हैं, रोटी और पैसे की खोज में हमें सुबह शाम एक कर देने पड़ते हैं फिर हम बड़ी समस्याओं का कहां से ध्यान करें? किन्तु यह असम्भव है कि हम उन्हें भूल जावें जब कि हमारा भविष्य उनके साथ एक ही तागे में बंधा है। श्रमजीवियों की दशा किसी मिल मालिक अथवा सरकार तक की दानशीलता और सदिच्छा द्वारा नहीं सुधारी जा

सकती। आप सभी जानते हैं कि रोग की जड़ कहीं अधिक गहरी है। समाज व्यवस्था ही दोष पूर्ण है—वह व्यवस्था जिसमें अनेकों की गाढ़ी कमाई पर थोड़े से व्यक्ति पलते हों और सारी मेहनत बुरी तरह काम में लाई जाती हो। इस व्यवस्था की उत्पत्ति स्वाभाविक रूप से पूँजीवाद और साम्राज्यवाद से हुई है और यदि आप इस व्यवस्था ही से किनारा करेंगे तो आपको पूँजीवाद और साम्राज्यवाद दोनों को जड़ से मिटाना होगा और उसके स्थान में एक अधिक विवेक-पूर्ण और और सुव्यवस्थित समाज का स्थापन करना होगा।

"इस कारण आप देश के राजनैतिक जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकते और न आप अपने चारों ओर छिड़े हुए राष्ट्रीय संग्राम को देख कर हाथ पर हाथ रखे बैठे रह सकते हैं। भारत में राष्ट्र धर्म आज साम्राज्यवाद से लड़ाई लड़ रहा है और चाहे उसकी विचार दृष्टि संकीर्णता भरी और सीमाबद्ध कही जावे, फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह श्रमजीवियों के सब के बड़े शत्रु को पराश्त करने में भरसक प्रयत्न कर रही है। इसीलिये श्रमजीवियों को राष्ट्रीयता का इस बड़ी लड़ाई में साथ देना चाहिये किन्तु साथ ही साथ उन्हें

यह भी स्पष्ट कर देना चाहिये कि वे चाहते क्या हैं और उन्हें राष्ट्र सेवकों से अपने उदार आदर्श के स्वीकार कराने की चेष्टा करना चाहिये।

"यह कौनसा आदर्श है जिस का आप को पालन करना है? आपका कोई विशेष लाभ न होगा यदि आप के वर्तमान स्वामी बदल जावें और आप के कष्ट वैसे ही जारी रहें। आप खुशी से न फूल उठेंगे अगर मुट्ठी भर भारतीय देश के भारी पदाधिकारी बन बैठें और बड़ी२ रकमें हज़म कर जावें। पर आप ज्यों के त्यों फ़कीर बने रहें और लगातार परिश्रम और भूख के कारण आप का शरीर टूट जावे और आपका जीवन दीपक ही शान्त हो जावे। आप जीवन कायम रखने योग्य मज़दूरी चाहते हैं न कि भूखों मरने वाली मज़दूरी। आप चाहते हैं कि मनुष्यों में आपस की लूट खसोट बन्द हो और सबको बराबर मौके और जीवन की पर्याप्त सुविधायें प्राप्त हों। यह निश्चित है कि वर्तमान समाज में ऐसा हो नहीं सकता।

"आजकल की तिजारत एक प्रकार की युद्ध भूमि है जिसमें जीते गये लोगों का सर्वनाश निश्चय है। पूंजी-पतियों की लड़ाई चाहे कोई भी जीते, श्रमजीवी पर सदैव आ बनती है। इस सबसे बड़े दानव—पूंजीपति

की तिजारत को श्रमजीवियों के खून की निरन्तर भेंट चढ़ायी जाती है, परन्तु उसकी क्षुधा कभी शान्त नहीं होती। इस दानव पर कैसे विजय पायी जाय और किस प्रकार उससे मानव जाति की सेवा करायी जाय? अतीत में और प्रायः आजकल भी मालिकों ही के हाथ में सारी शक्ति है। इसके बाद मज़दूर संस्थाओं का समय आता है और धीरे धीरे बहुत से देशों में दो ज़बर्दस्त दल पूंजीपति और श्रमजीवी क़ायम हो जाते हैं जो एक दूसरे से झगड़ते रहते हैं और एक दूसरे को नुकसान पहुंचाने की घात लगाये रहते हैं। यह होना तो अनिवार्य सा था किन्तु यह साफ़ ज़ाहिर है कि यह इस समस्या का कोई हल नहीं है। वह हल केवल उसी समय निकल सकता है जब बुराइयों की जड़ों पर ही, जो दरिद्रता और असमानता को जन्म देती है, कुठाराघात किया जाय। यह तभी हो सकता है जब कि रत्नराशि के ख़ज़ाने समाज की सम्पत्ति हो जावें न कि किन्हीं व्यक्तियों के अधिकार में रहें।

"इस कारण हमारा आदर्श साम्यवादी ढंग का समाज होना चाहिये जिसमें कि श्रमजीवियों के हितों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, जहाँ वास्तव में प्रत्येक मनुष्य श्रमजीवी है और जहाँ ठलुओं और काहिलों का नाम ही नहीं।

"आज आपके सामने एक ताजा सवाल छिड़ा हुआ है और इस मौके पर आप उस पर मेरी राय जानना चाहते होंगे। आप में से कुछ ने अपनी नीति पहिले ही के निश्चित करली है। कुछ ने अभी तक कोई कार्यक्रम नहीं चुना। इस बीच में मज़दूर कमीशन अपना काम किये जा रहा है और इस प्रकार की गवाही जो उसके सामने दी जाती है नोट करता जाता है। कमीशन से सहयोग करने अथवा न करने के पहले हमें बहुत सी बातें ध्यान में रखना पड़ेंगी। उनमें से कुछ मैं आप के सामने पेश करूँगा।

"आप यह तो हमेशा देखेंगे कि जब कभी कोई संकट आ पड़ता है तब उस समय की सरकार उसको रोकने के लिये जनता का दूसरी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये कमीशन बैठा देती है। प्रायः यही होता है कि देर तक दौड़ा करने और रुपया फूंकने के बाद जब तक कि रिपोर्ट प्रकाशित होती है संकट टल चुकता है और काम का वक्त निकल जाता है। कमीशन रिपोर्ट दे देता है, वह बाक़ायदा छप भी जाती है और एक तरफ़ फेंक दी जाती है और ज़्यादातर लोग उसे भूल जाते हैं। अक्सर ऐसा भी होता है कि कमीशन की रिपोर्ट के

आधार पर कड़े कानून भी बना दिये जाते हैं। शायद ही कभी ऐसे कमीशनों से कोई लाभ निकलता है। जब कभी भी वे मज़दूरों की भलाई के लिये कुछ सिफ़ारिशें कर देते हैं। उनके साथ युद्ध करने वाली पूँजीपतियों की सेना जिन के हाथ में सारी ताक़त है और जो सदैव सरकार की सहयता की आशा पर भरोसा कर सकते हैं, उसको निगरानी करते हैं और ऐसी सिफ़ारिशों को रद्द कराकर दम लेते हैं, आपके सामने वास्तविक समस्या इस शक्ति के जीतने की है। जब तक आप शक्ति सम्पन्न नहीं होते आप अपने को अधिक ऊंचा नहीं उठा सकेंगे। क्या आपसे यह कहने की आवश्यकता है कि आप को शिकायतें हैं और यह कि आप दुःखी और भूखे हैं? आप यह स्वयं अच्छी तरह जानते हैं और हर एक शख़्स इसे जानता है। और यदि कोई सरकार सचमुच ही इन दोषों को दूर करना चाहती है तो वह बिना कमीशनों पर समय और पैसा खर्च किये ऐसा कर सकती है। हम बहुत से कमीशनों का तजुर्बा कर चुके हैं, और कृषि कमीशन अभी हाल ही का था। बड़ी भारी रिपोर्ट निकालने पर भी उस से किसानों को कितना लाभ हुआ है?

"हम ऐसे मज़दूर गवर्मेंट की सदेच्छाओं पर विश्वास

करने को कहा जाता है और विटले कमीशन से सहयोग करने की शिक्षा दी जाती है। हमारे कुछ आदरणीय नेतागण वास्तव में उस से सहयोग कर रहे हैं और मैं स्वयं आसानी से उन्हें ग़लती करता हुआ न कहूँगा। किन्तु उन के प्रति सारी श्रद्धा रखते हुए भी मैं आप से यही निवेदन करूंगा कि हमारे लिये इस तरह का सहयोग करना नितान्त अनुचित होगा। वास्तव में समय आ गया है कि हम स्पष्ट कह दें कि हम इस प्रकार के किसी कमीशन अथवा ब्रिशिट सरकार से, जो उन्हें नियुक्त करती है, सहयोग न करेंगे।

"कुछ वर्ष पहले से आप लोगों के सालाना अधिवेशनों में 'द्वितीय' और 'तृतीय अन्तर्राष्ट्र' के परस्पर गुण अवगुण पर गरम बहस हो चुकी है और यह भी सम्भव है कि वही समस्या हमारे सामने यहाँ आज भी उपस्थित हो। प्रायः अन्य देशों में भी मज़दूर आन्दोलन को इसी समस्या का सामना करना पड़ा था और वहाँ भी प्रतिद्वंदी संस्थाएं क़ायम हो चुकी हैं जो एक दूसरे का आँखे फाड़ फाड़ कर देखती हैं और आपस के वैर में अधिकतर भूल जाती हैं कि उनका असली वैरी एक तीसरा ही दल है। यदि ऐसा होना अवश्यम्भावी

है तो मेरा अनुमान है कि भारत में भी यही होगा। किन्तु हम सब अपनी शक्ति और कमज़ोरी जानते हैं, और यदि हमारे 'ट्रेडयूनियन' आन्दोलन में अभी से दो दल हो जाते हैं तो यह बतला देना कठिन नहीं है कि हमारे आन्दोलन को इस से कितना गहरा धक्का लगेगा। मैं केवल यही आशा करूँगा कि यह दलबन्दी बचा दी जायगी और हम अपने अपने सिद्धांतों पर अटल रह कर भी यथा सम्भव एक शक्तिशाली मज़दूर आन्दोलन बनाने में सहयोग करेंगे।

"नाता जोड़ने का सवाल हमें परेशान करता है। अगर आप मेरी सलाह मानें तो मैं यही कहने का साहस करूँगा कि किसी भी अन्तर्राष्ट्र से सम्बन्ध जोड़ना ही हमें हितकर है। जहाँ तक 'द्वितीय अन्तर्राष्ट्र' से वास्ता है, भिन्न भिन्न देशों में घना नाता जुड़े होने और विशेष अधिकार पा जाने के कारण उसके नेताओं ने अपने सिद्धान्तों को छोड़ दिया है और वे एक नये ढंग के साम्राज्यवाद के समर्थक हो गये हैं जो मज़दूर साम्राज्य-वाद, कहा जा सकता है, जिसके शब्दों में "अनुदार दल वालों Tories की कठोरता न हो परन्तु वह भी उतना ही ज़बर्दस्त है जितना प्रथम साम्राज्यवाद। द्वितीय अन्त-

राष्ट्र का ख़ास काम आज पूंजीवाद से लड़ना नहीं है वरन साम्यवाद का नाश करना है। और ख़ास तौर पर भारत तथा दूसरे औपनिवेशिक देशों की उसने जानबूझ कर अवहेलना की है और प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर उसने हमारे विरुद्ध शक्तियों ही का साथ दिया है। मेरा पक्का विश्वास है कि हमें उससे सम्बन्ध स्थापित न करना चाहिये और ऐसा करना हमारे उद्देश्यों के लिये घातक होगा।

"तब क्या हम 'तृतीय अन्तर्राष्ट्र' से सम्बन्ध जोड़ें? अभी हाल ही में ऐसा करने की इच्छा करने वालों को तरह तरह की धमकियां दी गयी हैं। मैं आशा करता हूँ कि यह कांग्रेस इतनी शक्ति रखती है कि वह उनकी परवाह न करे और उनकी चिन्ता न कर अपना काम करती जाय। किन्तु यह स्पष्ट है कि 'तृतीय अन्तर्राष्ट्र' से सम्बन्ध जोड़ना प्रायः एक तरह का संकेत मात्र करना है क्योंकि वर्तमान अवस्था में, जब कि 'साम्यवादी अन्तर्राष्ट्र' से सम्बन्ध स्थापित करने में गवर्नमेंट ने अनेक रुकावटें डाल रक्खी हैं, उससे नाता जोड़ना सहज नहीं है। एक दूसरी अड़चन मैं और महसूस करता हूँ। व्यक्तिगत रूप से रूस की साधारण नीति का मैं पक्का भक्त हूँ। सोवियट रूस, भारी भूलें और बहुत से पाप करने पर भी,

साधारणतया समस्त संसार के लिये और विशेषतया श्रमजीवी जाति के लिये, किसी भी दूसरे देश से अधिक मंगलमय, आशामय प्रभात की भविष्य के लिये सूचना दे रहा है। उस महान् प्रयोग को कुछ सफलता तो इस समय भी मिल चुकी है और वह घातक होगा कि किसी कारण उसकी प्रगति में अड़चन डाली जाय अथवा किसी कारण उसे रोक दिया जाय। साम्यवाद भाव के लिये पूर्ण सहानुभूति रखते हुए भी, मुझे यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि मैं उसके बहुत से तरीक़ों को पसन्द नहीं करता। चीन और दूसरे देशों में इन तरीक़ों को सफलता नहीं मिली है और प्रायः उनका स्थान प्रतिक्रिया ने ले लिया है, यह पिछले कई वर्षों के इतिहास से दिखलायी देता है। 'तृतीय अन्तर्राष्ट्र' से सम्बन्ध जोड़ने के साथ साथ उसके तरीक़ों का भी पूरी तरह अवलम्बन करना आवश्यक होगा। मैं नहीं समझता कि यह हमारे लिये उपयुक्त होगा और इस कारण मैं आदर पूर्वक इस कांग्रेस से 'तृतीय अन्तर्राष्ट्र' में न शामिल होने की प्रार्थना करूँगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि जब कभी उससे मेल करने की आवश्यकता पड़े हम वैसा न करें।"